हुआ है आज जो कुछ सब विधाता ने दिखाया है।
न है कुछ दोष माता का न कुछ इसने बनाया है।।

कैयी—बेटा भरत ! तुम तो ज्ञानवान और नीति में सुजान हो ! होनी होकर रहती है, विधाता की गती टाली नहीं जा सकती। जो हो चुका है वह कदापि वापिस नहीं हो सकता; इस लिये मन में शान्ति धरो और प्रजा हित के लिये राज्य करो ?

भरत—राज्य करूं ! राम को बनों में भेज कर राज्य करूं ! लक्ष्मण और जानकी को संकट में फसाकर राज्य करूं ! यह तू कौन से मर्न से कह रही है ? यह तेरी कौन सी आत्मा के भाव हैं। आह अभागिन ! यदि तू माता कौशल्या के दिल से पूछती, यदि तुझे माता सुमित्रा के कलेजे की तड़प मालूम होती, तो तुझ पता चल जाता कि सब दिल तेरे जैसे नहीं होते। आह ! तूने अपनी ही सन्तान को धोखा दिया, तूने अपने ही सुहाग पर लात मारी, तूने अपनी आत्मा के साथ ही विश्वास घात किया। याद रख ! जब तूने अपना कपट व्यवहार नहीं छोड़ा है तो भरत भी अपनी राम-भक्ति को कदापि न छोड़ेगा।

हो गया होना लिखा था जो हमारे भाग्य में।
राम का सेवक चला अब राम के अनुराग में।।

[भरत का शीघ्रता से प्रस्थान, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(कौशल्या का महल)

कौशल्या— गाना

तर्ज—गम दिये मुस्तकिल

करके सूना भवन, जा बसाया है वन, हाय बेटा,
कर गये राज-दरबार सून

(१) छोड़ कर देश तुम बन सिधारे-स्वर्गवासी हुए प्राण प्यारे
किसका लें आसरा, कौन सुनले व्यथा, भाग्य फूटा;
कर गये राज……

(२) क्या कुशल आज जन-जन विकल है-सूने घर सूना महल है।
हाय संकट पड़े, लोग रोवें खड़े, सब्र छूटा, कर गये राज…

[भरत का गाते हुए प्रवेश]

भरत— गाना (तर्ज—सोहनी)

हाय किस्मत जिन्दगानी का मजा जाता रहा।
अब अयोध्या से हमारा आशरा जाता रहा॥
दोनों भाई क्या गये मानो अयोध्या लुट गई।
जानकी के साथ साधन जान का जाता रहा॥
हाय आशाओं की दुनिया लुट गई इक बार ही।
छा गया अन्धेर घर का चान्दना जाता रहा॥
मैं भी जाऊंगा वहीं जिस जा 'कुशल' मम प्राण हैं।
क्या करूंगा रह के यहां जीवन मरा जाता रहा॥

भरत—माता जी प्रणाम !

कौशल्या—(भरत को छाती से लगाकर) आओ बेटा !

गये हैं राम बन को हाय कैसा भाग्य है हेटा।
लगालूं तुझको छाती से भरत तू ही मेरा बेटा॥

भरत—माता जी !

दिखाती हो मुझे किस वास्ते ये भाव ममता के।
हूं बेटा आप का पर योग्य हूं माताजी घृणा के॥

कौशल्या—ऐसी बातें क्यों करते हो भरत ! इतने व्याकुल किस लिये हो रहे हो ?

भरत—आह माता जी !

सिर पर गिरे पहाड़ तो रोना कहां न हो।
लग जाए घर में आग तो क्योंकर धुआं न हो ?

कौशल्या—हां बेटा ! जब बुरा समय आता है, तो न होने योग्य कार्य भी हो जाता है ।

भरत—माता जी ! मैं कितना नीच हूं । मैं कितना दुष्ट हूं ! मेरे कारण ही राम को बन जाना पड़ा, मेरे कारण ही पिता जी का स्वर्ग-वास हुआ और मेरे कारण ही आपने यह सन्ताप भोगा ! हाय कैकेयी ! तू बांझ क्यों न रह गई तेरी कोख से जन्म लेते ही मेरा काल क्यों न आ गया ।

सहन करने न पड़ते इस तरह अपमान के बदले ।
यदि तू मांग लेती मौत ही वरदान के बदले ।।

कौशल्या—बेटा ! माता को क्यों दोष देते हो ? यह सब हमारे भाग्य की लीला है, हमारे कर्मों का खेल है ।

भरत—ठीक है ! माता जी ! आप को मुझ पर अवश्य सन्देह होगा और होना भी चाहिये, परन्तु मैं आपको कैसे समझाऊं, आपके मन को कैसे विश्वास दिलाऊं । बस केवल इतना कहना चाहता हूं कि । :-

जो पातक मित्र को होता है छल से विष पिलाने में ।
गऊ को कष्ट देने में गुरु का घर जलाने में ।।
जो पातक स्त्री बालक के होता खूं बहाने में ।
धर्मशाला, पिता और ब्राह्मण का धन चुराने में ।।
मुझे वे पाप लग जायें मुझे दुष्कर्म प्यारा हो ।
यदि इस काम में माता जरा मेरा इशारा हो ।।

कौशल्या—यह तुम क्या कहने लगे भरत ! मैं जानती हूं कि :—

भरत निज राम भक्ति को कभी भी खो नहीं सकता ।
मुझे सन्देह सपने में भी तुम पर हो नहीं सकता ।।

[वशिष्ठ जी का प्रवेश]

वशिष्ठ—बेटा भरत ! शोक छोड़ो, मन को शान्ति दो ! और सबसे पहले महाराज के मृतक शरीर का दाह संस्कार करो ।

भरत—आप का वचन यथार्थ है गुरुदेव ! चलिये मैं अभी चलता हूं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(अयोध्या की राजसभा)

कौशल्या—बेटा भरत ! राज्य-कार्य में बाधा पड़ रही है, दिनों-दिन शासन की व्यवस्था बिगड़ रही है, इस लिये अब मन को समझाओ और उत्तम रीति से राज्य कार्य चलाओ।

भरत—माता जी यह कैसे हो सकता है ? जिस राज्य पर भ्राता रामचन्द्र जी का अधिकार है, उस का मैं कैसे अधिकारी बन सकता हूं।

बिछड़ कर प्राण से इस देह का जीवन कहां होगा।
करूंगा राज अपना राम का दर्शन जहां होगा ।।

वशिष्ठ—भरत ! अज्ञानता को छोड़ो, भ्रम में न पड़ो ! होनी प्रबल है, परमात्मा का नियम अटल है; जो बीत गया उसे भूल जाओ और आगे जो कुछ करना है, उसमें मन लगाओ.देखो—

मणि बिन नाग, चन्द्र बिन रजनी, बिन दीपक का घर जैसे।
कमल बिना ज्यों ताल है सूना, राजा बिना नगर ऐसे ।।
जीवन-मरण, लाभ और हानि, अटल है नियम विधाता का।
तजो शोक सन्ताप भरत अब करो ध्यान कुछ जनता का ।।

भरत—गुरुदेव ! आप का उपदेश बडा उत्तम है किन्तु सुगन्धि निकल जाने पर पुष्प किस काम का रहता है, प्रकाश न रहने पर दीपक को दीपक कौन कहता है

न भूषण जिस तरह कोढ़ी की शोभा को बढ़ाते हैं।
न जैसे भोग और आनन्द रोगी को सुहाते हैं ।।
बिना जल मीन को जैसे न किंचित चैन आता है।
यों ही बिन राम-दर्शन के न मुझको राज्य भाता है।।

वशिष्ठ—तुम्हारा यह वचन नीति के अनुसार है भरत, परन्तु यह तो सोचो कि दीन प्रजा को किस का आधार है :—

उमड़ता ही रहेगा शोक का प्रवाह जनता का।
न होगा राज शासन के बिना निर्वाह जनता का॥

वशिष्ठ —

गाना

ज्ञानी हो भरत देखो दुर्भाग्य का रोना क्या ?
भावी है प्रबल बेटा सन्ताप का होना क्या॥
भगवान की लीला को सोचो तो जरा समझो।
मानव को बनाया है किस्मत का खिलाना क्या॥
जीवन न मरण अपना, संसार है इक सपना।
हर बार निराशा में फिर मन को डबोना क्या॥
आकाश से जब दुख के बादल ही नहीं छटते।
फिर शोक मनाना क्या सन्तोष का खोना क्या॥

भरत—गुरु जी ! एक तो मैं कैकेयी का पुत्र, दूसरे राम के बनवास का कारण और फिर पिता की मृत्यु का कलंकी ! इतना कुछ होते हुए भी प्रजा मेरे राज्य में क्या सुख पायेगी, यदि मैं गद्दी पर बैठा तो पृथ्वी रसातल को चली जायेगी। :—

मेरे कारण ही सब लोगों ने जब सन्ताप यह भोगा।
तो जनता को कहाँ आनन्द मेरे राज्य में होगा॥

कौशल्या—किन्तु बेटा ! राम तो अब बनों से वापस आने वाले नहीं !

सुमन्त—हां, यदि वे ऐसे होते तो हम लोग ही बहुत कुछ समझा लेते, ऊँच-नीच का मार्ग दिखा कर मना लेते, किन्तु वे ऐसा कब करते हैं ? पिता-आज्ञा को कैसे तोड सकते हैं ?

भरत—मैं हाथ जोडूंगा, मैं पैर पकड़ूंगा, मैं विनती करूंगा, चरणों में सिर धरूंगा, क्या उन्हें फिर भी दया न आयेगी !

वे दयालु हैं दुखी देख न पाएगे मुझे।
है यह विश्वास कि छाती से लगाएगे मुझे॥

वशिष्ठ—परन्तु बेटा ! राम परम दयालु और महा कृपालु होते हुए भी अपने वचनों पर अटल रहने वाले हैं, प्रत्येक दशा में पर्वत के समान निश्चल रहने वाले हैं।

यदि ऐसे न होते राम तो क्यों यह दशा होती।
न दशरथ का मरन होता न जनता को व्यथा होती ।।
मुझे विश्वास है उनका नहीं झूठा कथन होगा।
कहा इक बार जो मुख से वहीं अन्तिम वचन होगा ।।

भरत—आप सत्य कहते हैं गुरुदेव ! परन्तु जिसके केवल राम ही हों, वह उनका वियोग कैसे सह सकता है ? जिसका केवल एक ही सहारा हो वह उनके बिना कैसे रह सकता है ?

नहीं मेरे लिये जग में ठिकाना दूसरा कोई।
जा छोड़ू राम-चरणों को नहीं है आसरा कोई।।

वशिष्ठ—तो तुम राम के पास जाए बिना नहीं मानोगे !

भरत—नहीं ! जब तक प्राण हैं तब तक नहीं।

वशिष्ठ—अच्छा ! तो चलने की तैयारी करो और सारा संकोच छोड़ कर रामभक्ति के अधिकारी बनो ! आज हमें निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि तुम राम के परम भक्त हो।

कौशल्या—बेटा ! तुम्हारा राम-प्रेम संसार में विख्यात रहेगा।

सुमन्त—निःसन्देह विचार बड़ा सुन्दर है, सम्भव है अयोध्या के फिर भाग्य खुल जाएं।

भरत—मन्त्री जी ! अब इन बातों को छोड़िये और शीघ्र बन चलने की तैयारी कीजिये।

सुमन्त—बहुत अच्छा ! मैं अभी सारा प्रबन्ध कि ये देता हूं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(श्रृंगवेरपुर)

[निषादराज गूह कुछ सभासदों के साथ बैठे हैं। दूत आता है]

दूत—(आकर) महाराज की जय हो! एक आवश्यक समाचार लाया हूं।

गूह—कहो! क्या सूचना है?

दूत—महाराज अयोध्या के नये राजा भरत असंख्य सेना लिये इसी ओर आ रहे हैं?

गूह—हैं! राजा भरत आ रहे हैं! क्या किसी शत्रु पर आक्रमण करने का विचार है!

दूत—यह कुछ नहीं कहा जा सकता महाराज!

गूह—(स्वयं) कुछ समझ में नहीं आता! ईश्वर ही जानता है कि भरत का क्या निश्चय है। कहीं उसने यह न विचारा हो कि राम-लक्ष्मण को मार कर शान्ति से राज्य करूं! आखिर कैकेयी का बेटा है। विष की बेल में विषैले फल ही लग सकते हैं? अग्नि से शीतल झोंके कैसे निकल सकते हैं?

मन्त्री—महाराज वे तो अयोध्या के होने वाले सम्राट हैं।

गूह—हां हां! यही तो मैं भी सोच रहा हूं। कहीं वह अपने मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिये प्रभु रामचन्द्र के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र तो नहीं रचना चाहता।

सेनापति—हो सकता है कि उन का ऐसा ही विचार हो।

गूह—ठीक है! हमें अवश्य सावधान हो जाना चाहिये।

गाना

वीरो! हो जाओ तैयार।
सर सर सर सर चल सरोही, झनक झनक तलवार॥ वीरो०
धनुष-बाण और बरछी भाले, छुरी कटीली धार।
नेजे और कटार सम्भालो, करो मार ही मार॥ वीरो०

घाट रोक दो शीघ्र डुबा दो, नाव सहित पतवार।
राम हमारे कुशल देवता, दोनों के आधार ।। वीरो०

दूत—(आकर) महाराज ! युद्ध का विचार छोड़िये। भरत जी का इरादा लड़ाई करने का नहीं है। वे रामचन्द्र जी से भेंट करने जा रहे हैं।

गूह—सम्भव है तुम्हारा विचार ठीक हो, इसलिये पहले भरत जी से मिलकर उनका भाव ज्ञात कर लेना चाहिये।

मन्त्री—वह देखिये ! भरत जी गुरु वशिष्ठ सहित इसी ओर आ रहे हैं।

गूह—(प्रणाम करके) महामुनि वशिष्ठ और महाराज भरत के चरणों में दास का प्रणाम स्वीकार हो।

भरत—गुरु जी ! यह कौन व्यक्ति है ?

वशिष्ठ—बेटा ! यह गुह नामक निषादराज शृङ्गवीरपुर का राजा और राम का प्यारा सखा है।

भरत—(निषादराज को गले लगाकर) आइये, निषादराज ! आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

गूह—महाराज ! मैं कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूं। सब प्रकार से पतित समझा जाता हूं आप का महा अनुग्रह है जो आप ने अपने चरणों से इस भूमि को पवित्र बनाया। कहिये, इतनी सेना लेकर किस ओर को गमन है ? यदि आज्ञा हो तो सेवक भी सेवा के लिये तैयार है।

भरत— गाना तर्ज—जब छोड़ चले श्री राम अवध को

टेक—क्या पूछो हो महाराज हमारी, चिन्ता मन को भारी।

अन्तरा (१) माता ने पाप कमाया, मेरा आधार गिराया।
राजा ने प्राण गंवाया और लुट गई अयोध्या सारी ।।
क्या पूछो हो······

(२) श्री राम गये हैं बन को, संग में लेकर लक्ष्मण को।
अब धीर नहीं है मन को. सीता माता साथ सिधारी ।।
क्या पूछो हो……
(३) कैसे हो दुख का वर्णन, महाराज ने त्यागा जीवन।
सन्तोष करे अब धारण क्या कौशल्या मात विचारी ।।
क्या पूछो हो……
(४) सेवा में उनकी जाकर, चरणों में शीश नवाकर।
लाऊं वापस लौटाकर, मन में कुशल यही अब धारी ।।
क्या पूछो हो……

गुह—निस्सन्देह महाराज ! आपका विचार बड़ा पवित्र है।

भरत—अच्छा तो निषादराज जी ! अब हम लोगों के पार होने का प्रबन्ध कीजिये और यदि सम्भव हो तो आज ही गंगापार कर दीजिये।

गुह—महाराज ! आज विश्राम कीजिये प्रातःकाल सब प्रबन्ध हो जायगा और यह सेवक भी आपके साथ जायगा।

भरत—अच्छा, तो जैसी तुम्हारी इच्छा।

[परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(बाल्मीकि ऋषि का आश्रम)

राम—(आकर) योगेश्वर वाल्मीकि जी, प्रणाम !

बाल्मीकि—चिरञ्जीव रहो ! पधारिये महाराज, पधारिये ! हे रघुकुल भूषण ! आपने बनों को कैसे सुशोभित किया ?

राम—ऋषिराज ! किसी समय हमारी माता कैकेयी ने महाराज से दो वरदान पाए थे। सोई उन्होंने एक में छोटे भाई भरत के लिये राज्य और दूसरे में मेरे लिये बन-बास मांग लिया। मैंने पिता जी की आज्ञा में अपना कल्याण जानकर सहर्ष स्वीकार

किया। ये छोटे भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीता जी भी साथ ही आए हैं।

बाल्मीकि—क्यों न हो राम ! आप रघुवंश की ध्वजा और वेदों का पालन करने वाले हैं। आप की माया जानकी और बड़े वेग वाले शेषनाग आपका संग कैसे छोड़ सकते हैं ?

राम—ऋषिराज ! अपना कल्याण, पिता की आज्ञा, माता का हित और आपके दर्शन सब मुझे बन-गमन से प्राप्त हुए। फिर मुझसे अधिक भाग्यशाली और कौन होगा ?

बाल्मीकि—निस्सन्देह ! आप का बनवास, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों का देने वाला है। हे तात ! यदि आप ऐसा न करते तो संसार का कल्याण किस प्रकार होता ?

राम—महाराज ! भ्रमण करते-करते बहुत समय बीत गया, अब कृपा करके कोई ऐसा स्थान बतला दीजिये जहां मैं जानकी तथा लक्ष्मण सहित जाकर विश्राम कर सकूं।

बाल्मीकि—महाराज ! आप तो सर्वव्यापी हैं। ऐसा कौन सा स्थान है जहां आप का वास नहीं। फिर भी आप मुझ से पूछते हैं। तो सुनियें जो मनुष्य आपकी कथा सुनते-सुनते तृप्त नहीं होते आप उनके हृदय में वास कीजिये। जो अपने नेत्र रूपी चातक द्वारा आप के दर्शन रूपी मेघ की अभिलाषा करते हैं आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनकी जिह्वा आप के गुणों का बखान करती हुई नहीं थकती आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनकी नासिका आपके पवित्र प्रसाद की सुगन्धि सूंघती रहती है आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनका शीश देवता, गुरु और महात्माओं के चरणों में नम्रता से झुकता है आप उनके हृदय में वास कीजिये। जिनके चरण तीर्थों की यात्रा करते रहते हैं आप उनके हृदय में वास कीजिये। जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष और दंभ को त्याग कर आपकी शरण में जाते हैं आप उनके

हृदय में वास कीजिये, जो दूसरे के धन को पत्थर और दूसरे की स्त्री को माता समझते हैं—आप उनके हृदय में वास कीजिये।

गाना

ओ कण कण में रमने वाले, किस ठौर नहीं है वास तेरा।
तारों में जगी है जोत तेरी, फूलों की हंसी में हास तेरा।।
चलता है पवन के झोंके में, बहता है नदी के धारे में।
है आग में गर्मी तेरी ही, नभ, धरणी बीच निवास तेरा।।
रहने का ठिकाना बतलाऊं, सूरज को दीपक दिखलाऊं।
इक बूंद से सागर बन जाऊं, उपहास मेरा उपहास तेरा।।
प्राणों में कुशल आलोक जगा, सांसों में तेरा ही तार बंधा।
ससार उजागर तेरी कला, आकाश, रसातल वास तेरा।।

राम—महाराज! इन बातों को छोड़िये! केवल सांसारिक दृष्टि में कोई रहने का ठिकाना बतला दीजिये।

बाल्मीकि—अच्छा भगवन्! यदि यही इच्छा है तो आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये। वहां का बन सुन्दर है, मन्दाकिनी का निर्मल जल बहता है; हाथी, सिंह, हिरण सब स्वतन्त्रता से विहार करते हैं और अनेक ऋषिजन आत्मकल्याण की साधना में लीन रहते हैं। आपको वहां बड़ा आनन्द प्राप्त होगा।

राम—धन्य हो महाराज! अच्छा अब आज्ञा दीजिये।

बाल्मीकि—अच्छा भगवान्! आज मेरी भी साधना सफल हो गई! मैं कृतार्थ हुआ।

[राम, लक्ष्मण, सीता का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(चित्रकूट पर्वत)

[सीता जी एक कुटी में बैठी हैं। राम-लक्ष्मण एक वृक्ष के नीचे खड़े बातें कर रहे हैं]

राम— **गाना**

लक्ष्मण ! चित्रकूट मन भाया ।
सुन्दर शोभा वन उपवन की देखत मन हर्षायो ।। लक्ष्मण···
सारिता-सर प्रति ताल मनोहर कमल सहस दल छायो ।
मन्दाकिनि-जल स्वच्छ सुधामय निर्मल परम सुहायो ।। लक्ष्मण···
शीतल मन्द सुगन्धित बहता पवन हृदय पुलकाग्रो ।
पक्षीगण मृदु बोल बोलते मन विहरत ललचाग्रो ।। लक्ष्मण···
फूलत फलत विटप बहुरंगे देखत कल्प लजाग्रो ।
पर्ण कुटी में तापस त्यागी योग-जाप मन लाया ।। लक्ष्मण··
कुंज कुज की शीतल छाया स्वर्ग-मोद सरसायो ।
शोभा ग्रनुपम देख कुशल यह ग्राज ग्रवध बिसरायो ।। लक्ष्मण···

लक्ष्मण—निस्सन्देह भ्राता जी ! चित्रकूट तो बड़ा ही रमणीक स्थान है। पर्वत की हरियालो, नदी का प्रवाह ग्रौर पक्षियों की मधुर ध्वनि कहती है कि शोभा की खान है।

राम—किन्तु ये पशु-पक्षो इस स्वर्ग को छोड़ कर ग्रकस्मात क्या भागने लगे ? इन पर ऐसी क्या ग्रापत्ति ग्राई है जो ऐसे मनोहर स्थान को त्यागने लगे ! जरा देखो तो सही कि क्या बात है ?

लक्ष्मण—(एक वृक्ष पर चढ़ कर) भ्राता जी ! कुछ दूर पर बड़ी धूल छा रही है मानो घटा घिरी चली ग्रा रही है। ग्रौर वह देखो! सूर्यवंशी झण्डा वायु मण्डल में लहरा रहा है; ऐसा प्रतीत होता है कि भरत सेना सहित ग्रा रहा है।

राम—तो ग्राने दो ! ग्रवध छोड़ती बार भरत से भेंट न हो पाई थी, एक बार उनको भी देख लेंगे।

लक्ष्मण—ऐसी बात नहीं है महाराज ! प्रतीत होता है कि उसे डाह ग्री रोग सता रहा है जो इतनी विशाल सेना साथ ला रहा है।

चौपाई

सुनहु तात तुम शील सुभाऊ।
जगत-कपट-छल-छिद्र न जाऊ।।
यद्यपि भरत परम अनुरागी।
लोभ विवश भरमत जन त्यागी।।
स्वार्थ महा लम्पट जग मांही।
शत्रु मित्र कछु जानत नाहीं।।
नागिन-पुत्र नाग पुनि सोई।
कैकेयी पुत्र सरल कंह होई।।

राम—

दोहा

तात लखन भाकत कहा, वचन विषम अनुरीति।
चन्द्र न त्यागे अमिय रस—भरत न त्यागे प्रीति।।
गंगा बहे उत्तर—दिशा, पूरब डूबे भानु।
कपट न आवे भरत-हिय, यह निश्चय करि जानु।।

भरत—(अकेला दौड़ता हुआ आता है) रक्षा! हे नाथ रथा! हे स्वामी रक्षा!

दुखी मन और दुखी हृदय पे अब करुणा करो स्वामी;
शरण में आ पड़ा हूं मैं, मेरी रक्षा करो स्वामी।।

राम—(उठाकर और गले लगाकर) :—

दुखी क्यों इस तरह होते हो धीरज तो धरो भाई।
पड़ा है कष्ट क्या तुम पर जरा वर्णन करो भाई।।

गाना

बताओ शोक क्या तुमको भरत किसके सताये हो।
दुखी होकर भला किस वास्ते जंगल में आये हो?
तुम्हें चिन्ता है क्या ब्याकुल हो इतने किस लिये भाई?
बिलखते हो, सिसकते हो, दुखी हो, तलमलाये हो।।

है त्यागा किस लिये तुमने बताओ चैन महलों का।
अयोध्या को वहां किसके सहारे छोड़ आये हो ?
तसल्ली कौन माताओं को देगा और खबर लेगा ?
बुढ़ापे में कुशल का भी सहारा तोड़ आये हो।।

भरत—

गाना

टेक—आये नाथ क्यों छोड़ भरत को क्या अपराध विचारा ?
अन्तरा (१) क्या दोष है मेरा स्वामी, त्यागा क्यों अन्तर्यामी ?
मैं दिन काटूं किस भाँति भला किसका है मुझे सहारा।।
(२) नगरी का कौन सहाई, यह सुनो जरा रघुराई।
जब रूठ चले प्रभू आप अवध से सुख सन्तोष सिधारा।।
(३) बस दोष मेरे बिसराओ-अपनी करुणा दिखलाओ।
सब लौट चलो अब कुशल अवध को है आधार तुम्हारा।।

राम—भाई भरत ! इतने व्याकुल न हो ! शान्ति से काम लो क्या कर्मों की गति टाले टल सकती है ?

भरत—ठीक है, प्रभो ! किन्तु आपके बिना मेरा निर्वाह नहीं

गाना—(तेरी करना कुटिल···)

टेक—बिसारा नाथ जब तुमने, मेरा फिर क्या ठिकाना है ?
अन्तरा (१) दीन दुखी त्यागा भरत, आये नाथ सिधार।
कौन अयोध्या में मेरा तुम बिन है आधार।।
जो अपना है बेगाना है—मेरा फिर क्या······
(२) लुट गई सारी सम्पदा, सब सुख के सामान।
तुम बिन हे भ्राता! भरत हो गया आज निदान।।
सभी दुशमन जमाना है-मेरा फिर क्या······
(३) जब से मुझ को त्याग कर आये मुंह को फेर।
सकल नगर में छा गया तभी कुशल अन्धेर।।
महल उजड़ा डराना है—मेरा फिर क्या······

शत्रुघ्न—(आकर) महाराज, आप का सेवक शत्रुघ्न !

राम—(उठकर) ओहो भाई शत्रुघ्न ! तुम भी क्यों रोते हो ? तुम्हारे रक्षक भरत तो तुम्हारे साथ हैं।

शत्रुघ्न—महाराज ! आप के वियोग में अयोध्या उजड़ चुकी है; नर-नारी दुखी हो रहे हैं; पशु-पक्षी प्राण खो रहे हैं।

गाना

टेक—प्रभो बिन नगर बना शमशान।

अन्तरा (१) गली, पंथ, बाजार हैं सूने, सूनी हाट दुकान।
महल, अटारी, आंगन सूने, सूने राज दिवान॥
प्रभो बिन……

(२) बालक भूले खेल-तमाशे, नारी मंगल गान।
सकल अयोध्या, दुख की प्रतिमा, ज्यों काया बिन प्राण॥
प्रभो बिन……

(३) कमल सुखाने, ताल डराने, वन-उपवन सुनसान।
पक्षी भूले शोर मचाना, मृग भूले जलपान॥
प्रभो बिन……

(४) खेती बाड़ी, फल फुलवारी सूख भये निष्प्राण।
गौओं ने तृण चरना छोड़ा, बछड़ों ने पयपान॥
प्रभो बिन……

राम—भाई शत्रुघ्न ! इतने अधीर न बनो, मेरा एक उपदेश सुनो।

गाना (फूल रही फुलवार……)

टेक—होकर चतुर सुजान—करत काहे मन भारी।

(१) सुख, दुख, मंगल और अमंगल, आवत जात निरन्तर पल २
आता स्वप्न समान—करत काहे मन…

(२) रेख पड़ी जो भाग्य मिटे ना, विधि, हरि हर भी टाल सके ना
कर्म-भोग बलवान—करत काहे मन…

(३) नाचें ये संसारी पुतले, कर्म नचावें डोरी बांधे
जग पुतली-घर जान—करत काहे मन…

(४) ढूंडे किस का जीव सहारा, कुशल नदी का दूर किनारा।
मिलन-वियोग समान-करत काहे मन···

शत्रुघ्न—यह सब ठीक है—परन्तु नाथ ! जिस प्रकार जल के बिना मछली, मणि के बिना नाग और पति के बिना सती का जीवन निरर्थक और निस्सार होता है, उसी प्रकार आपके वियोग में सारा नगर आठ-आठ आंसू रोता है।

गुह—(आकर और प्रणाम करके) महाराज ! आपके विरह ने सब को दुखी बनाया है, इसलिये दर्शनों के लिये सारा नगर उमड़ आया है।

राम—तो क्या प्रजावासी भी आये हैं ?

भरत—हाँ प्रभो ! प्रजावासी ही नहीं, मातायें और गुरु वशिष्ठ जी भी पधारे हैं।

राम—अहोभाग्य ! चलो पहले उनके दर्शन करलें।

गुह—लीजिये महाराज ! वे सब लोग तो स्वयं ही आ पहुंचे।

राम—(प्रणाम करके) श्रद्धेय गुरु जी प्रणाम !

विशिष्ठ—चिरंजीव रहो पुत्र ! कल्याण हो !

राम—(कैकेयी के पैर छूकर) माता जी प्रणाम !

कैकेयी—(चुप)

राम—मातेश्वरी ! अपने पुत्र राम को आशीर्वाद दीजिये और बीती बातों का ध्यान न कीजिये। जो कुछ भी हुआ है सब काल और कर्म के अनुसार हुआ है, इसमें आपका क्या दोष है ?

कैकेयी—(चुप)

राम—माता जी ! बोलती भी नहीं। क्या अपने राम को इतना भुला दिया ? बोलो मां, तुम्हें राम की सौगन्द बोलो।

कैकेयी— गाना (लावनी)

क्या कहूं राम ! कुछ नहीं कहा जाता है।
चुप रहूं ! नहीं बिन कहे रहा जाता है।।

कर्मों की गति का भेद कोई क्या जाने।
होनी करती है खेल सदा मन माने।।
जिस को जग में अपयश मिलना होता है।
मिल कर रहता है, जीव वृथा रोता है।।
तुम को तजकर घर-बार यहां आना था।
मुझ को पापिन, निर्दयी नाम पाना था।।
बन गई घृणा की पात्र हाय जन-जन की।
क्या जन्म-जन्म तक आग बुझेगी मन की।।

राम— जो कुछ भी तुमने कहा सत्य है माता।
कर्मों का फल है जीव निरन्तर पाता।।
जब होनी के सब खेल तुम्हीं बतलाओ।
फिर दोष तुम्हारा रहा कौन समझाओ।।
है कर्म-चक्र में बंधा हुआ जग सारा।
इसलिये वृथा है पश्चाताप तुम्हारा।।
अब इन बातों से होता है दुख भारी।
है-वत्स तुम्हारा राम हो तुम महतारी।।

कैकेयी— हे तात! धन्य तुम, धन्य तुम्हारी वाणी।
तुमने डाला मन की ज्वाला पर पानी।।
है सत्य जीव करनी अपनी पायेगा।
पर दुनिया को विश्वास कहां आयेगा।।
थूकेगा सारा लोक मेरी करनी पर।
इक महा अधर्मिन जन्मी थी धरणी पर।
बतलाओ मुझ को चैन कहां आयेगा।
मर कर भी यह सन्ताप नहीं जायेगा।।
रघुकुल में आई ऐसी नीच अधर्मिन।
ससार कहेगा दुष्टा, अधम, कुकर्मिन।।

राम— कहने दो कोई झूठ अगर कहता है।
मेरे मन को सन्तोष सदा रहता है।।

जिसकी है जग में भरत सजीव निशानी।
वह माता क्या है देवी मात भवानी।
जिसमें जग का कल्याण छिपा होता है
उससे उत्तम बतलाओ क्या होता है॥
जब ज्ञानी जन यह तत्व जान लेवेंगे।
तुम निर्दोषी को दोष नहीं देवेंगे॥
है विनय मेरी यह कृपा मात दिखलाओ।
अब भरत सहित सब लौट अयोध्या जाओ॥
सूना है माता राज—दुखी है जनता।
बिन राजा के सुख-साधन कब है बनता॥

वशिष्ठ—धन्य है! आर्य वीरों के इन पवित्र विचारों का जोड़ ससार के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। ऐसी ही उन्नत भावनाओं के कारण भारत को देव-भूमि कहा गया है।

कौशल्या—बेटा! तुम्हारा बनवास किस प्रकार कटता होगा? हाय विधाता! मेरे कोमल किशोरों को कैसी कठिन परीक्षा में ला डाला!

राम—माता जी! आपके चिन्तित होने का कोई भी कारण नहीं। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है, इसमें भाग्य को बुरा कहना या विधाता पर दोष लगाना किसी प्रकार उचित नहीं।

कौशल्या—ठीक कहते हो बेटा? यह सब कर्मों का ही तो फल है कि एक ओर तो तुम वन को पधारे और दूसरी ओर तुम्हारे पिता परलोक सिधारे।

राम—हैं? क्या पिता जी का स्वर्गवास हो गया? निस्सन्देह अब अयोध्या बिल्कुल बेसहारे हो गई।

सीता जी—(सिर पीटकर) हाय पिता जी! आप भी हमें छोड़कर चले गये—

गाना

टेक—विधाता, कौन करम का फेर।

रैन अन्धेरी शोक घटाएं चारों ओर अन्धेर ।। विधाता०

१—आशाओं का महल बनाया सपनों का गढ़ घेर ।
पाप करम की आई आंधी छिन में माटी ढेर ।। विधाता०

२—राज-पाट, सुख सम्पति नाना धन-माया के ढेर ।
आंख खुली तो कुछ नहीं देखा खाली हाथ सवेर ।। विधाता०

३—नाम न जाने ग्राम न जानें पथ चले हैं देर ।
छोड़ चले हैं संग बटोही मारग में अन्धेर ।। विधाता०

लक्ष्मण— गाना

ओ भाग्य-चक्र ? तूने यह घर जला ही डाला ।
था एक ही सहारा वह भी मिटा ही डाला ।
रघुकुल में जल रहा था इक दीप टिमटिमाता ।
आंधी ने मौत का वह दीपक बुझा ही डाला ।।
बनवास राम को दे राजा के प्राण लेकर ।
मंगल में यह अमगल आखिर रचा ही डाला ।।
जनता अनाथ, नगरी निर्दोष, देश सूना ।
सब के गले कुशल यह खन्जर चला ही डाला ।।

[रोना]

वशिष्ठ—बेटा ? शान्ति करो । विलाप करके मृतक की आत्मा को दुख न पहुंचाओ ।

राम—गुरु जी ? आपका उपदेश कल्याणकारी है । इस लिये अब कृपा करके इन सब को लेकर अयोध्या लौट जाइये ।

वशिष्ठ—बेटा ? मैंने भरत को पहले ही बहुत समझाया परन्तु इन की राम-भक्ति के सामने हमारा कोई बस न चल पाया ।

राम—(भरत से) प्यारे तात ? अब तुम ही विचार कर ऐसा कार्य करो जिससे माताओं को शान्ति और प्रजा को सुख मिले—

सहारे उठ गये सारे तुम्हीं आधार हो इनका ।
करो वह यत्न अब भाई कि फिर उद्धार हो इनका ।।

भरत—सुनिये प्रभो ?

गाना (लावनी)

दोहा—नाथ सदा से आपने किया मेरा उपकार।
दोष किसी का कुछ नहीं पड़ी भाग्य की मार॥

हो आप प्रभो, सीता माता, गुरुदेव का सिर पर साया है।
हूं सत्य सभा में खड़ा हुआ चरणों में सीस झुकाया है॥
नगरी व्याकुल, खोटी माता और पिता ने प्राण गंवाए हैं।
सब भंग पड़ा आनन्द गया और आप बनों में आए है॥
सौगन्ध तुम्हारे चरणों की और शंकर की है आन मुझे।
आनन्द नहीं कुछ प्यारा है और राज है विष की खान मुझे॥
कुल दुनिया ताने देवेगी और निन्दा सब संसार करे।
बन में तो बास करें स्वामी और सेवक रंग-विहार करे॥

दोहा—बार-बार बिनती करूं, चरण नवाऊं माथ।
है इच्छा मन की कुशल, चलो अवध को नाथ॥

राम— गाना (लावनी)

सुनो भरत गत जीव की, है ईश्वर आधीन।
क्यों रो-रो व्याकुल हुए मन को किया मलीन॥

जो करें जरा शङ्का तुम पर वे जग में अपयश पायेंगे।
परलोक में भोगें दुःख कठिन और घोर नरक में जायेंगे॥
जो प्रेम तुम्हारे मन में है मैं उसको खूब समझता हूं।
पर पिता ने आज्ञा दी मुझको इस कारण तात झिझकता हूं॥
मैं पूरी कर दिखला देता जो तुमने बात विचारी है।
पर सत्य से अपने गिरता हूं इसलिये मुझे लाचारी है॥
तत्काल मिलूंगा तुम से मैं वापस आ तात तपोवन से।
अब लौट अयोध्या जाओ तुम, संकोच दूर करके मन से।

भरत—नाथ! अपना दुर्भाग्य, माता का पाप, विधाता की गति और समय की कुटिलता के कारण मेरा मन अत्यन्त दुखी हो रहा है। मुझे चारों ओर अन्धकार दिखाई देता है। जिस प्रकार

यदि कोई मार्ग भूल जाए तो सूय का कोई दोष नहीं उसी प्रकार आप तो मुझे सत्मार्ग दिखाते हैं, सच्चे ज्ञान का उपदेश सुनाते हैं किन्तु मेर मन का शान्ति नहीं होती :—

तुम्हीं हा आसरा मेरा तुम्हीं बन्धु सखा मेरे।
तुम्हीं स्वामी गुरु मेरे तुम्हीं माता पिता मेरे ॥
अधिक तुमसे मेरा जग में न कोई नाथ प्यारा है।
तुम्हारे बिन अयोध्या में नहीं मेरा गुजारा है ॥

राम—प्यारे भरत ! तुम तो धम और नीति के जानने वाल हो; मेरी अपनी और प्रजा को भलाई पहचानने वाले हो ? फिर यदि अयोध्या लौट कर प्रजा का पालन न करोगे तो मुझे शान्ति और जनता को सुख कैसे दोगे। इसलिए तात ! अब मन को अधिक न कलपाओ और आनन्द पूर्वक अयोध्या को लौट जाओ। देखो :—

यही आज्ञा पिता की है यही है साधना अपनी।
इसी में हित तुम्हारा है यही है धारणा अपनी ॥
वचन मेरा पिता-आज्ञा, परण अपना निभाओ तुम।
करो मत देर अब भाई अवध को लौट जाओ तुम ॥

भरत—परन्तु नाथ ! आप तो खोटों पर भी दया करने वाले हैं, बुराई के बदले भलाई चाहने वाले हैं। फिर क्या मेरे अपराध क्षमा नहीं हो सकते ?.

राम – क्या कहते हो भरत ! तुम अपराधी कैसे बन रहे हो ? तुम्हारा चरित्र तो परम पावन है। तुम्हारे नाम में तो भक्ति का वास होगा; तुम्हारे बनाए हुए मार्ग पर चलकर तो ससार का कल्याण हो जायगा। भाई ! मैं तुम्हारी बात अवश्य मान लेता परन्तु क्या करूं धर्म का मार्ग ही बड़ा कठोर है, सत्य रक्षा में ऐसी ही कठिनाइयां आया करती हैं; याद करो:—

मोरधज ने सत्य पर बलिदान बेटे को किया।
सत्य पर हरिश्चन्द्र ने परिवार को भी तज दिया ॥

सत्य पर राजा शिवी ने प्राण का सौदा किया।
सत्य के कारण हमें बनवास में आना पड़ा।।
सत्य का पालन करें हम यह ही सच्चा कर्म है।
याद रक्खो सब से ऊपर सब से ऊंचा धर्म है।।

भरत—यथार्थ है महाराज किन्तु जब मन नहीं मानता तो क्या करूं?

राम—मन को मनाना चाहिये। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे बिछोह में मुझे आनन्द मिलता है? नहीं, कदापि नहीं। भाई! मैं धर्म के विचार से ही तुम्हें छोड़ रहा हूं।

यह न समझो राम को तुम बिन यहां आनन्द है।
क्या करे पर राम अपने धर्म का पाबन्द है।।

चौपाई

सुनहु भरत मम सीख सुहाई।
बिनु धीरज सन्ताप न जाई।।
शोक हर्ष सपने सम जानो।
दुःख कबहुं मानत नहिं ज्ञानी।।
विधना भाग्य-रेख जा डारी।
होकर रहत टरत नहिं टारी।।
अस जिय जान हरहु मन पीरा।
वाद-विवाद तजेउ मति धीरा।।
निराधार पुरजन पितु-माता।
अवध अनाथ तजो नहीं भ्राता।।

दोहा—लौट जाओ मानो कहा, भरत हिय धरि धीर।
विवश विकल तुम बिनु महा वचन बद्ध रघुबीर।।

वशिष्ठ—बेटा भरत! राम अपने मार्ग से कदापि हटने वाले नहीं। धर्म-पथ पर अटल रहना ही वीर पुरुषों का लक्षण है। इस लिये अब इनकी आज्ञा का पालन करो और सावधान होकर अवध लौट चलो।

राम—हां भाई ! अब तुम्हारे लिये लौट जाना ही उचित है और फिर चौदह वर्ष का ही तो समय है अवधि बीत जाने पर फिर तुम से मिलूंगा ।

भरत—अच्छा भ्राता जी ! यदि आप की और गुरु जी की यही आज्ञा है तो मैं विवश हूं । किन्तु इतनी कृपा तो कीजिये कि मुझे अपनी खड़ाऊं प्रदान कर दीजिये । मैं इन से अयोध्या की गद्दी सजाऊंगा और स्वयं सन्यासियों का जीवन बिताऊंगा :—

राम के अनुराग में अब भरत सन्यासी बना ।
वास नगरी में करेगा किन्तु बनवासी बना ॥

वशिष्ठ—धन्य हो भरत ! तुम धन्य हो ! तुम दोनों साक्षात धर्म का अवतार हो । तुम ने दिखला दिया कि धर्म-पालन के सामने राज्य का कोई मूल्य नहीं !

एक वे हैं जो मरे जाते हैं कट-कट राज पर ।
एक ये हैं जो लगा देते हैं ठोकर ताज पर ॥

राम—अच्छा प्यारे ! लो, मेरी खड़ाऊं ले जाओ ।

भरत—(खड़ाऊं सिर पर रख कर) अच्छा प्रभो ! आज्ञा दीजिए ! किन्तु याद रखिये कि यदि आप चौदह वर्ष से अधिक एक दिन भी लगायेंगे तो भरत को जीवित न पाएंगे !

राम—तुम निश्चिन्त रहो भरत !

[भरत जी का सब के सहित जाना]

राम—भाई लक्ष्मण ! चित्रकूट को अब सारे अयोध्यावासी जान गए हैं, इसलिये वे यहां आकर माया मोह बढ़ाने वाली बातें किया करेंगे और साथ ही यात्रा का कष्ट सहा करेंगे ।

लक्ष्मण—यथार्थ है महाराज ! यह स्थान वैसे भी अयोध्या से बहुत दूर नहीं है

राम—इस लिये यही उचित जान पड़ता है कि हम लोग आगे का

भ्रमण करें और अन्य स्थानों की यात्रा करके अनुभव लाभ उठावें ।

लक्ष्मण—हां ! चलिये प्रभो ! अब यही सुन्दर है ।

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य नवां

(अत्रि ऋषि का आश्रम)

[राम, लक्ष्मण और सीता का प्रवेश]

राम—मुनिवर प्रणाम !

अत्रि—चिरंजीव रहो आर्य ! आइये पधारिये ।

राम—महाराज ! महात्माओं के दर्शन में कल्याण छिपा रहता है। सत्संगति से लोहा भी स्वर्ण हो जाता है । हम लोग आप से कुछ शिक्षा प्राप्त करने आये हैं ।

अत्रि—क्यों न हो ! रघुकुल भूषण के लिये ऐसे ही शब्द शोभा देते हैं । फूलों से तो सुगन्धि ही आया करती है ।

राम—मुनिराज ! आप जैसे सन्तों के दर्शनों का लाभ उठाने के लिये फिरते-फिरते इधर आ निकले । कृपा करके हमें कोई उपयोगी उपदेश दीजिये ।

अत्रि—विश्व के कण-कण में रमण करने वाले राम ! मैं आपको क्या उपदेश दूं ? आप तो मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं । आपका शील स्वभाव पापी और महात्मा में भी कोई अन्तर नहीं देखता । जो निःस्वार्थ भाव से आपका हो जाता है,आप उसे भवसागर से पार कर देते हैं ।

राम—ऋषिराज ! आपने अपने योगबल से ज्ञान और माया दोनों को जीत लिया है । मुक्ति आपके चरणों में लोटती है आप धन्य हैं । (सीता जी से) प्रिय ! माता अनसूया पतिव्रताओं में आदर्शरूप हैं, इन से कुछ शिक्षा ग्रहण करो ।

सीता—(अंसूया के पैर पकड़कर) माता जी ! नमस्कार करती हूं। मुझे अपना सुन्दर उपदेश दीजिये।

अंसूया—सुनो बेटी !

गाना (लावनी)

दोहा—सीता तुम तो आप हो सर्व गुणों की खान।
फिर भी मैं वर्णन करूं जो मेरा अनुमान ॥

भाई-बन्धु, सुत, मात-पिता थोड़े दिन के हितकारी हैं।
नारी का उसके पतिदेव दोनों जग में सुखकारी हैं ॥
वह नीच चरित्र है नार जो पति-सेवा से चित्त चुराती है।
इस लोक न सुख परलोक गति वह घोर नरक में जाती है ॥
बूढ़ा हो, रोगी, मूरख हो, अंधा बहरा हो, निर्धन हो।
नटखट हो चाहे क्रोधी हो, सब शोक का चाहे कारण हो॥
उसको ही ईश्वर-सम समझे उसका ही मन में ध्यान करे।
उसकी सेवा में ही अर्पण मन, वाणी, बुद्धि, प्राण करे ॥
धीरज, सेवक, भ्राता, नारी इन सबका ऐसा नाता है।
परखे जाते हैं ये चारों जब समय बिपत का आता है ॥

दोहा—सेवा स्वामी की करे तज कर कपट-विचार।
ऐसी नारी है कुशल धर्म-धुरन्धर-नार ॥

सीता—धन्य हो माता जी ! आपके इस उपदेश को मैं जन्म पर्यन्त निभाऊंगी।

राम—(अत्रि से) अच्छा ऋषिराज ! अब आज्ञा दीजिये; आगे चल कर कुछ और महात्माओं के दर्शन पाएंगे और यदि कोई उचित स्थान मिल गया तो कुछ समय के लिये वहीं डेरा लगाएंगे।

अत्रि—महाराज ! मैं जाने के लिये कैसे कह सकता हूं ? आज तो मुझे जन्म-जन्म का फल मिल गया।

राम—अच्छा मुनिराज ! प्रणाम ! यदि अवसर मिला तो फिर दर्शन करेंगे ।

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(अगस्त्य मुनि का आश्रम)

अगस्त्य—

गाना

जगदीश दीन बन्धू करुणा निधान तुम हो,
प्रतिपाल, भक्तवत्सल, सन्तों की जान तुम हो।
योगी जनों के प्यारे, निर्बल के हो सहारे,
संसार के उजारे, जीवों के प्राण तुम हो।
जल-थल में बन-नगर में, पर्वत गुफा शिखर में,
सागर में ताल-सर में, बस विद्यमान तुम हो।
वेदों के सार तुम ही, निर्गुण साकार तुम ही,
जीवन का तार तुम ही, शक्ति महान तुम हो।

[राम, लक्ष्मण सीता का प्रवेश]

राम—मुनिराज ! सादर प्रणाम !

अगस्त्य—आयुष्मान् ! पधारिये रघुवंशमणि ! पधारिये !

राम—महाराज आप तो तीनों लोकों की बात जानने वाले हैं, फिर आप से हमारा अभिप्राय कैसे छिपा रह सकता है ?

अगस्त्य—हे साक्षात् ब्रह्म रूपी राम ! जिस पर आपकी कृपा हो जाती है, उसी को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, नहीं तो सारा जगत माया के अन्धकार में भटकता रहता है, निराशा में सिर पटकता रहता है।

राम—महाराज ! हम तो सन्त-सेवक हैं। हमें कोई सेवा करने का सौभाग्य दीजिये।

अगस्त्य—भगवन् ! आपकी माया ने अनेक ब्रह्माण्ड और देवता-दानव रच डाले हैं। आपकी माया गूलर के वृक्ष के समान है। अनेक

लोग उसके अनेक फल हैं और सर्व प्रकार के चरचरा जीव उन फलों के कीड़े हैं, जो बाहर की लीला कुछ भी नहीं जानते। उन का नाश करने वाला काल भी उनको ताक में लगा रहता है परन्तु जिसको आप अपनी भक्ति दे देते हैं, वह इस माया जाल से छूट जाता है। इसलिये, हे नाथ! मुझे भी इस माया से मुक्त कर दीजिये—

गाना

निवारो माया का भ्रमजाल।
जिस माया में भ्रमते योगी, देव, दनुज दिग्पाल॥ निवारो…
मरुस्थल में भ्रमता डोले जल पीछे मृगवाल॥
तृष्णा रूपी दावानल में जल-जल हो बेहाल॥ निवारो…
यह संसार अन्धेरी नगरी पंथ बड़े विकराल।
ज्ञान-जोति बिन माया-तम को जीव सके नहिं टाल॥ निवारो…
राम-कृपा से माया-बन्धन टूट जाय तत्काल॥
हरि-पद पङ्कज पाइ कुशल का कटे जगत-जंजाल॥ निवारो…

राम—मुनिराज! योगियों और सन्तों का माया बेचारी क्या बिगाड़ सकती है? उनके लिये तो कल्याण का मार्ग सदैव खुला रहता है। अच्छा भगवान्! बनों में भ्रमण करते-करते हमें बहुत समय बीत गया अब कोई ऐसा स्थान बताइये जहां हम तीनों विश्राम कर सकें।

अगस्त्य—भगवान्! यहां से कुछ दूर दक्षिण की ओर पंचवटी नामक एक बड़ा मनोहर स्थान है। वहां पवित्र गोदावरी बहती है; अनेक प्रकार के फलदार वृक्ष हैं और पक्षियों का कोलाहल मधुर संगीत सुनाता रहता है। आप वहां जाकर विश्राम करें तो बड़ा सुख मिले।

राम—बहुत अच्छा महाराज! धन्यवाद!

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्यारहवां

(पंचवटी)

[राम लक्ष्मण और सीता जी बैठे गोदावरी की लहरों को देख रहे हैं।]

लक्ष्मण—भ्राता जी ! पंचवटी पर विधाता ने कैसी विचित्र रचना की है मानो प्रत्येक वस्तु जीवन का रस लेकर आई है।

राम—निस्सन्देह बड़ा ही रमणीक स्थान है, प्रत्येक दृश्य मानो शोभा की खान है।

सीता—प्राणनाथ ! इधर तो देखो ! ये पक्षीगण कैसी मधुर तान सुना रहे हैं और मृग प्रसन्न मुद्रा में चक्कर लगा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति ने सब को रसिक बना दिया है और प्रिय-मिलन का अलौकिक रस बहा दिया है।

राम—क्यों न हो ! संयोग की अवस्था का ऐसा ही रूप होता है प्रिय।

लक्ष्मण—भगवन् ! प्रकृति की इस अपूर्व रचना को देखकर मन में कुछ प्रश्न करने की इच्छा हो आई है। यदि आज्ञा हो तो पूछ लूं ?

राम—हां-हां ! अवश्य पूछो।

लक्ष्मण—हे नाथ ! माया का क्या रूप है ? और ज्ञान तथा वैराग्य किसे कहते हैं ?

राम—तात ! मैं और मेरा, तू और तेरा अर्थात् ये पदार्थ भी मेरे हैं, मैं भी कोई हूं, तू भी कोई है—यही माया है ! इन्द्रियों और मन से जिन पदार्थों का ज्ञान होता है वे सब माया के कहे जाते हैं। इस माया के दो रूप हैं एक अविद्या और दूसरा विद्या। अविद्या महा दुख देने वाली और संसार रूपी कुए में गिराने वाली है। दूसरी विद्या है जो ईश्वर की प्रेरणा से जगत को रचती है, केवल अपनी शक्ति से कुछ नहीं कर

सकती। जिस भावना से ज्ञान उत्पन्न होता और मनुष्य अभिमान को त्याग कर सब पदार्थों को नारायण-रूप देखता है वही पूर्ण वैराग्य है। धर्म से वैराग्य और योग से ज्ञान उत्पन्न होता है। यही मोक्ष का देने वाला है, और जिस साधन से शीघ्र ही मेरी प्राप्ति हो जाती है उसे भक्ति कहते हैं।

लक्ष्मण—महाराज ! भक्ति के क्या उपाय हैं ?

राम—वेद की रीति और धर्म के अनुकूल कार्य करना, समस्त कर्मों को भगवान के अर्पण कर देना, और उसी को आधार मानना-यही भक्ति के साधन हैं। जब विषयों से मन हटकर मेरे चरणों में लग जाता है तभी मेरी प्राप्ति होती है।

[स्वरूपनखा का गाते हुए प्रवेश]

स्वरूपनखा—

गाना

(खोल दे बटवे की डोर…)

टेक—जोवन को आ गई बहार—मैं नई नवेली !

अन्तरा—चन्दा से मुखड़े पे काली-काली अलकें।
नागन सी करत विहार—मैं नई नवेली ॥

अन्तरा—चाल चलूं जब रूप बिखरता जावे।
लचके कमर सुकुमार—मैं नई नवेली ॥

अन्तरा—जब मुस्काऊँ मन काम का रिझाऊं प्यारे !
चितवन के तीर करूं पार—मैं नई नवेली ॥

(राम के पास आकर) सुन्दर राजकुमार तुम कौन हो ? क्या तुम वास्तव में मनुष्य हो ?

राम—देवी ? हम महाराज दशरथ के पुत्र अयोध्या के रहने वाले हैं और कुछ समय के लिये बनों में रहने आए हैं। ये सीता जी हमारी धर्मपत्नी और ये लक्ष्मण जी हमारे छोटे भाई हैं। कहिये आप कौन हैं ?

स्वरूपनखा—(मटककर) मैं हूं लङ्कापति महाराज रावण की बहिन। मेरे भाई खर और दूषण का यही साम्राज्य है और मेरा नाम स्वरूपनखा है।

राम—तो आप इस प्रकार भटकती क्यों फिर रही हैं ?

स्वरूपनखा—मैं फिर रही हूं पति की खोज में। मेरे योग्य आज तक कोई वर ही नहीं मिला, इसलिये मैं अभी तक कुंवारी हूं।

राम—किन्तु देवी ! वर की खोज करना तो माता-पिता या भाई बन्धु का काम है; स्त्रियों का तो अकेली घूमना भी नहीं चाहिये।

स्वरूपनखा—श्याम किशोर ! तुम कितने भोले हो ? यदि मैं घूमती न फिरती तो तुम्हारे जैसा सुयोग्य वर कहां से मिलता ?

राम—नहीं देवी ! हमारा तो विवाह हो चुका है।

स्वरूपनखा—अजी जरा इधर तो देखो ! ये काली-काली अलकें ! ये सुन्दर-सुन्दर कपोल ! यह मस्तानी चाल ! ये मीठे-मीठे बोल।

गाना (तर्ज दो गाना)

भोले भाले बलम तेरी बलिहारी।
तेरी सूरत पे तन-मन निसारा करूं;
तेरी मन के शिवाले में पूजा करूं;
तेरे जोबन पे प्यारे मैं मन हारी—भोले भाले···

शेर— रूठो न अबकि आये हैं दिन यार प्यार के।
सय्यां गले लगाइये बाहें पसार के।
मेरे मन में हिलोरें उठें प्यार की;
मेरी आंखों में सूरत फिरे यार की;
बात तकरार की—तुमने हर बार की
देखो जोबन की बगिया की गुलकारी-भोले भाले—

राम—देवी ! धर्म पथ से न भटको ! विषयों का आनन्द नाशवान होता है।

स्वरूपनखा—तो क्या इस कुरूपा की चाल में आकर मेरी जैसी सुन्दरी को छोड़ दोगे ?

राम—देवी! मै विवश हूं। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता।

स्वरूपनखा—तो जाने दो ! तुम्हारे छोटे भाई क्या कम सुन्दर हैं ? (लक्ष्मण के पास आकर) छोटे राजकिशोर ! उन से तो मैं केवल छेड़ करती थी; वास्तव में मेरे योग्य तो तुम ही हो अच्छा मुझे स्वीकार करो।

लक्ष्मण—हे सुन्दरी, मैं तो उनका सेवक हूं। तुम्हें सेवक के पास क्या सुख मिल सकता है ? जाओ अपना रास्ता देखो !

स्वरूपनखा—ओहो ! ऐसे निठुर हो गये। देखो ! ये कटीले नैन, यह लचीली कमर, यह सुकुमार शरीर—क्या ऐसी सुन्दरी को देखकर भी तुम्हारा मन नहीं लुभाता ?

गाना

तडपा चुके हो अब तो बहुत प्यार कीजिये !
इकार कीजिये नहीं इकार कीजिये ।।
यौवन की क्या बहार है क्या रूप का निखार।
तिरछी नजर इधर को तो इक बार कीजिये ।।
आंखों में आंख डाल के दिल से मिलाओ दिल।
हसरत जवां है यार न बेकार कीजिये ।।
तेरे सिवा न कोई नजर में समा सका।
इन्कार करके अब न हमें ख्वार कीजिये ।।

लक्ष्मण—देवी ! सेवक बन कर सुख पाने की आशा ऐसी है जैसे भिखारी बन कर मान की, लोभी होकर सम्मान की। मेरे पास तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। मैं तो उनकी आज्ञा का पुजारी हूं।

स्वरूपनखा—(फिर राम के पास जाकर) प्यारे ! वह तो मेरी बात सुनता ही नहीं। तुम ही मान जाओ ! अपनी दुलहिन का मन न दुखाओ। (मटकना)

देवी ! तुम देख रही हो कि हमारी धर्मपत्नी हमारे साथ है फिर हम यह अनुचित विवाह कैसे कर सकते हैं ?

स्वरूपनखा—क्यों नहीं कर सकते ! राजाओं के यहां तो अनेक रानियां हुआ करती हैं।

राम—हां होती हैं ! किन्तु वे वेद विरुद्ध कार्य करते हैं। हम ऐसा कदापि नहीं कर सकते।

स्वरूपनखा—तो क्या तुम नहीं जानते कि तुम मेरे भाई के राज्य में बैठे हुए हो ? क्या तुमने आज तक रावण और खरदूषण का नाम नहीं सुना है। याद रखो ! यदि अब भी इकार करोगे तो बिन आई मौत मरोगे।

राम—देवी ! हमें क्षमा करो ! जाओ कहीं दूसरा वर ढूंढो।

स्वरूपनखा—(लक्ष्मण के पास जाकर) लो एक बार फिर तुम से भी पूछ लेती हूं। कहो मुझ से विवाह करना स्वीकार है ?

लक्ष्मण—सुन्दरी ! तेरे साथ तो वही विवाह कर सकता है जो अपनी लाज को तिनके समान तोड़ दे, संसार में सम्मान पाने की आशा छोड़ दे।

गाना

चल दूर हो पापिन नीच महा ! तू धर्म निभाना क्या जाने ?
जिस को कुल का कुल मान नहीं, वह मान बचाना क्या जाने ॥
निर्जन बन में शृङ्गार किये, फिरती है जगाती प्यार नये।
जो प्रीत की रीत नहीं समझे, वह प्रीत लगाना क्या जाने ?
जो देख पराये पुरुषों को, फैलाये वासना के फन्दे।
वह काम की चेरी बन बैठी, वह ला बचाना क्या जाने ?
रावण ने किया स्वाधीन तुझे, अब समझाना रसहीन तुझे।
जब मार्ग ही सच्चा छूट गया, फिर राह पै आना क्या जाने ॥

स्वरूपनखा—(स्वयं) ओहो ! अब समझी ! जब तक यह विघ्न-कारिणी रहेगी, जब तक मेरा काम नहीं बनेगा। इस लिये पहले इसे ही ठिकाने लगाऊं और फिर इसको रिझाऊं।

[सीता की ओर दौड़ना]

राम—(रोककर) ठहरो देवी ! जाओ अब की बार लक्ष्मण तुम्हारी अवश्य सुनेंगे ।

[लक्ष्मण को संकेत करना]

स्वरूपनखा—(लक्ष्मण के पास) क्यों जी ! अब आए कुछ सीधे मार्ग पर या नहीं ?

लक्ष्मण—हां आओ ! तुमने ठाकुर जी पर कठोर शब्दों के पुष्प चढ़ाये हैं, उनका प्रसाद भी लेता जाओ ।

[स्वरूपनखा का पास जाना और लक्ष्मण का उसकी नाक काटना]

स्वरूपनखा—(चिल्लाती हुई) हाय ! मैं मर गई, मेरी नाक कट गई ! हाय-हाय अन्यायी ने मुझे नकटी बना दिया ।

[स्वरूपनखा का जाना परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(खर-दूषण की मदिराशाला)

खर—अरे ! क्या आज बोतलें खाली पड़ी हैं जो दौर बिल्कुल बन्द हो रहा है ?

दूषण—क्या मदिरा का दिवाला निकल गया या साकी पड़ा सो रहा है ?

साकी—लीजिये अन्नदाता ! शराब हाजिर है ।

खर—हां-हां लाओ ! जल्दी लाओ :—

बना दे साकिया सबको पिला कर आज दीवाना ।
मजा है तब ही पीने का रहे चलता ही पैमाना ।।

दूषण—ठीक बिल्कुल ठीक :—

मजा है जिन्दगी का तब रहें हम और तुम साकी ।
बना दे बोतलें खाली उलट दे खुम के खुम साकी ।।

पहला राक्षस—अगर खुम के खुम तुम ही पी जाओगे तो हमें क्या खाक पिलाओगे ? :—

न इन से बात कर साकी बना है क्या तू दीवाना।
मेरे पहलू में रख दे आज मैखाने का मैखाना॥

दूसरा—अरे! ऐसी क्यों ठानता है? क्या सारा हिस्सा अपना ही जानता है?

चिपटता किस लिये नादान तू बोतल से सागर से।
रियायत हो नहीं सकती मिलेगी सब को नम्बर से॥

खर—कुछ परवाह नहीं! जिसको जितनी मिले उतनी हो पी जाओ! लाल परो, वाह, क्या नाम है लाल परी!

इस नाम में ही वाह! क्या तासीर भरी है।
पागल बना के छोड़े यह वह लाल परी है॥

दूषण—क्यों न हो! जिन्दगी का मजा तो इसी के साथ है:—

मर जाऊं ऐ शराब! अगर तेरी बू न हो।
खाना भी है हराम जो बोतल में तू न हो॥

स्वरूपनखा—(आकर) चूल्हे में जाएं तुम्हारी बोतलें और भाड़ में पड़े पीना-पिलाना। अरे मूर्खो! तुम्हारी बहिन का यह हाल हो और तुम्हें मदिरा पीने का ख्याल हो—धिक्कार है, तुम्हारे आनन्द पर धिक्कार है।

खर—क्यों बहिन! क्या बात है?

पहला—सुनाओ तो मौसी क्या सूचना लाई हो?

दूसरा—बताओ तो बुआ! क्यों इतनी घबराई हो?

तीसरा—अरी ताई! तुम्हारा बोल तो कुछ भारी लगता है।

चौथा—क्यों चची! क्या बोलने में कुछ जोर पड़ता है।

पांचवां—अरी नानी! बताओ-बताओ! जरा दिल की घुन्डी खोलकर तो दिखाओ।

स्वरूपनखा—हाय! तुम्हारा सत्यनाश! क्या यह मजाक करने का समय है?

दूषण—तो कहती क्यों नहीं क्या बात है?

स्वरूपनखा— गाना (लावनी)

क्या पूछो मेरी बात अरे नादानो ।
सूरत से मेरी हाल मेरा पहचानो ॥
जिसके ऐसे बलवान लड़ाका भाई ।
दुष्टों ने उसकी ऐसी दशा बनाई ॥
बजता है जग में नाम का जिसके डंका ।
बदनाम हुई है आज तुम्हारी लंका ॥
तुम यहा यह झूठी शान जमा बैठे हो ।
क्या पता नही कुलमान गवा बैठे हो ॥
आती हो अगर कुछ शर्म मान-हानि में।
जाकर डूबो चुल्लू भर ही पानी में ॥

खर—हैं क्या कहा ! लंका की बदनामी ! हमारे कुल-मान की हानि ! वह किस प्रकार ? जरा खोलकर तो सुनाओ !

स्वरूपनखा— गाना (लावनी)

बैठे बैठे दिल आज लगा उकताने ।
मैं चली गई दण्डक-वन-मन बहलाने ॥
कुछ दिनों से आकर भाई पंचवटी पर ।
ठहरे हैं दो सुकुमार मनोहर सुन्दर ॥
इक रूपवान गुणवान साथ है नारी ।
कहते हैं राम की प्रिया सिया सुकुमारी ॥
जब देखा मेरा रूप चन्द्र उजियाला ।
वह छोटा राजकुमार हुआ मतवाला ॥
उसकी चालों में मैं कैसे आ जाती ?
क्या खर-दूषण के कुल को दाग लगाती ?
जब चली न कोई चाल कपट की बांधी ।
तब अन्याई ने मेरी नाक उड़ा दी ॥

खर—ओहो, इतना अनर्थ ! मेरे ही साम्राज्य की सीमा में और मुझ पर ही अन्याय !

दूषण—आखिर वे पंचवटी पर किस तरह चले आये ?

खर—नीच ! पापी ! मृत्यु के ग्रास ! (स्वरूपनखा से) अच्छा स्वरूपनखा ! तुम निश्चिन्त रहो ! तुम्हारी नाक का बदला उनके खून से लिया जायगा।

स्वरूपनखा—हां भाई ! तब ही मुझे सन्तोष आयेगा।

दूषण—अच्छा सेनापति ! तुरन्त सेना को तैयार करो और पंचवटी की ओर कूच बोल दो।

सेनापति—जैसी आज्ञा महाराज !

[सेनापति का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(पंचवटी पर राम लक्ष्मण की बातें)

लक्ष्मण—हे तात ? पृथ्वी पर पाप का कितना प्रसार हो गया कि स्त्रियों को भी धर्म-अधर्म का ज्ञान नहीं रहा।

राम—भूल क्यों रहे हो लक्ष्मण ! इस राक्षसी दुराचार के कारण ही तो अवतार लेना पड़ा है।

लक्ष्मण—तो एक राक्षसी को साधारण सा दण्ड मिल जाने पर ही पाप का नाश कैसे हो जायगा ?

राम—यह साधारण घटना नहीं है लक्ष्मण ! वह महा प्रतापी किन्तु अभिमानी रावण की बहिन है। उसकी नाक काटने का बड़ा भयंकर परिणाम निकलेगा।

लक्ष्मण—तो क्या उसकी नाक काटना अनुचित था महाराज !

राम—नहीं नितान्त उचित ! कारण के बिना कार्य नहीं हुआ करता लक्ष्मण ! देखना, स्वरूपनखा की नाक कैसे रंग लायगी और किस प्रकार पापियों के नाश का कारण बन जायेगी ?

लक्ष्मण—किस प्रकार बन जायेगी प्रभो ?

राम—क्या इतना भी नहीं समझे ? देखो, वह दुष्टा अपने सहायकों

को लायेगी और कुछ ही समय में भयंकर युद्ध होगा जिससे पृथ्वी राक्षस विहीन हो जायगी।

लक्ष्मण—सत्य कहते हैं महाराज ! किन्तु यदि रावण ने इस घटना की ओर ध्यान नहीं दिया तो ?

राम—यह असम्भव है ! तामसी बुद्धि शीघ्र ही क्रोध में आ जाती है, और स्वयं अपने नाश का कारण बन जाती है।

लक्ष्मण—(सामने देखकर) आप की बात कितनी सत्य है। वह देखिए भगवन ! सामने आकाश में धूल छा रही है। प्रतीत होता है कि वह दुष्टा अपने किसी सहायक को ला रही है !

राम—आने दो ! बहुत समय से भुजायें शिथिल पड़ी हुई हैं। आज वाणों की परीक्षा का समय आ रहा है। वीर का तो यह प्रसाद है लक्ष्मण !

लक्ष्मण—यथार्थ है महाराज ! किन्तु क्या लड़ने की मुझे आज्ञा नहीं मिलेगी।

राम—नहीं ! तुम जानकी को लेकर अलग चले जाओ। राक्षसों के सामने सती स्त्री का आना ठीक नहीं।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा प्रभो !

[जानकी-लक्ष्मण का जाना, खर दूषण का प्रवेश]

खर—राम ! तू अभी बच्चा है; लड़ना क्या जाने। जा अपनी छिपाई हुई स्त्री को ला दे और अपने घर लौट जा।

दूषण—ठीक बिल्कुल ठीक ! इस से सहज उपाय और क्या हो सकता है ?

राम—विधर्मियों ! ऐसी बातें कहते हुए तुम्हें लाज नहीं आती ? क्या तुम किसी माता के पुत्र नहीं हो ? क्या तुम सतियों का मान भी नहीं जानते ?

दूषण—देखने में तो बालक है किन्तु बोलने में बड़ा बोलचाल मालूम होता है ? देखो तो कैसा सुन्दर उपदेश सुना रहा है।

खर—समझ रहा है कि स्वरूपनखा की नाक काट कर जीवित चला

जाऊंगा। यह नहीं जानता कि मेरा नाम खर है; मैं जीते को ही चबा जाऊंगा।

राम—मूर्ख ! हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय रूपी सिंह तुम जैसे मृगों को ढूढकर मारता है।

खर—अरे ! जा चला जा, नहीं तो फूंक से उड़ा दूंगा, हाथों में मलकर सुरमा बना दूंगा।

भुंगे की तरह पीस के पल भर में मिटा दूं।
चाहूं तो कुचल दूं अभी मिट्टी में मिला दूं॥

राम—तो फिर सोच विचार किस बात का है ? यदि ऐसा ही वीर है तो दो हाथ दिखा, नहीं तो नकटी की गोद में छिप जा !

संग्राम में तो वीर मचलते नहीं देखे।
बातों के तीर युद्ध में चलते नहीं देखे॥

खर—अरे नादान ? मैं तो बच्चा समझ कर तलवार नहीं चलाता था, नहीं तो दांतों में चबा जाता।

न चलती इस तरह फर-फर कभी मूरख जबां तेरी।
बना देता तेरे पुरजे उड़ाता धज्जियां तेरी॥

राम—अरे निर्लज्ज ?

डरपोक को हथियार सजाना नहीं आता।
वीरों को कभी बात बनाना नहीं आता॥

खर—अच्छा तो अब आगे बढ़ और मेरा वार रोक ?

[युद्ध होना-खर का मारा जाना]

दूषण—सम्भल-सम्भल ? खर को मार कर आपे से न निकल ?

राम—आ ? तू भी उसके साथ चल ?

[युद्ध होना, दूषण का मारा जाना, फिर सेना का आना और उसका भी मरना]

सीता जी—(आकर)

दोहा

धन्य धन्य ! रघुकुल-ध्वजा, धन्य-धन्य रघुबीर ।
धन्य दनुज-दानव-दलन, धन्य महा रणधीर ॥

लक्ष्मण—

दोहा

जय रविकुल-भूषण-तिलक, विपद विदारणहार ।
धरणी-भार-हरण-निमित, धरो राम अवतार ॥

[आकाश से फूल बरसाना परदा गिरना]

आरती

आठवां अंक

दृश्य पहला

(रावण का दरबार)

रावण—रावण; लंका का महाराजा रावण! देवताओं का अन्न-दाता, लोकपालों का इष्टदेव! दानव, दनुज और दैत्यों का स्वामी; यक्ष, गन्धर्व और दिक्पालों का करतार! काल अब वह काल नहीं; मेरे पैरों का गुबार है। इन्द्र, अब वह इन्द्र नहीं; मेरी ठोकर का ठुकराया हुआ आज्ञाकार है। बेमाता को मेरी आज्ञा के बिना सांसारिक कामों को छेड़ने का अधिकार नहीं; मेघ को मेरी इच्छा के विरुद्ध पानी बरसाने का अधिकार नहीं। पवन मेरे महलों में भाड़ू लगाता है; सूर्य प्रकाश और चन्द्रमा ठण्डक पहुंचाता है। छिड़काव करना वरुण का काम है; पांव दबाना यम और इन्द्र का कर्त्तव्य है—

पड़े दिन काटते हैं यम, वरुण मेरे सहारे पर।
कुबेर और अश्वनी पलते हैं मेरे ही गुजारे पर॥
खड़ा रहता है विष्णु हाथ बांधे मेरे द्वारे पर।
निरन्तर नाचता है काल भी मेरे इशारे पर॥
अगर गुस्सा घड़ी भर को मेरी आंखों में छा जाये।
मही डोले, हिलें पर्वत, सकल संसार थर्राये॥

मन्त्री—निस्सन्देह! श्रीमान के सामने कोई अभिमानी सिर नहीं उठा सकता; बड़े से बड़ा योद्धा भी लंका के वीरों से आंख नहीं मिला सकता :—

नहीं विद्रोह की शक्ति रही अब देवताओं में।
दुहाई मच गई लंका की चारों ही दिशाओं में ।।
दनुज,गन्धर्व,दानव, देव सब ने सिर झुकाया है।
हर इक जड़ पर,हर इक चैतन्य पर आतंक छाया है।।

मेघनाथ—क्यों न हो? महाराज के नाम में पर्वतों को हिला देने की शक्ति है; श्रीमान् के क्रोध में शत्रुओं को जलाने वाली ज्वाला दहकती है :—

भूल कर भी जब उठाया है किसी शत्रु ने सिर।
गिर गई मानों वहीं बिजली कड़कती सीस पर ।।

रावण—मन्त्री जी! अब अप्सराओं को बुलाओ, नाच-गाने का रंग जमाओ और शराब का दौर भी चलवाओ!

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज! द्वारपाल!

द्वारपाल—आज्ञा श्रीमान्!

मन्त्री—जाओ, नाचने गाने वाली पात्रों को बुलाकर लाओ और मदिराधीश को महाराज की आज्ञा सुनाओ!

द्वारपाल—जैसी आज्ञा श्रीमान्!

[अप्सराओं का आना और नाचना]

गाना

तेरी नजर ने दिल की दुनियां लूट लीं, लूट ली-लूट ली।
टेढ़ी चितवन गेसू काले-नैन रसीले मद मतवाले;
ओ मस्तानी चालों वाले! मेरी तमन्ना लूट ली, लूट ली लूट ली।
तेरी नजर ने……

शेर—मस्ती का साज छेड़ के मस्ताना कर दिया।
हमदम था एक दिल मगर बेगाना कर दिया।।
चलती हैं गम की तलवारें, सुन निर्मोही दिल की पुकारें,
चैन की दौलत दिल की बहारें ओ मह-पारा लूट ली, लूट ली-लूटली
तेरी नजर ने……

रावण—साकी ! जल्दी लाओ :—

लादे ऐसी कि जो मस्ताना बना कर छोड़े।
होश अपना न रहे रंग जमा कर छोड़े।।
पीने वाला है वही और है झगड़ा झूठा।
मुंह से अपने न जो मैखाना लगा कर छोड़े।।

साकी—लीजिये अन्नदाता :—

बोतल का काक उड़ते ही मस्ती है जागती।
यह लाल परी आंख के परदे में नाचती।।

मन्त्री—मदिराधीश :—

जाम पर जाम का वह दौर चला दे साकी।
सारे दरबार को दीवाना बना दे साकी।।

साकी—जैसी आज्ञा महाराज :—

पीकर शराब आदमी मस्ती में चूर है।
होठों से जब लगाई तो गम दिल से दूर है।।

मेघनाथ—अरे ला! साकी जल्दी ला! आज तो जी भर कर पिला—

आबेहयात क्या पिये पैमाना छोड़कर।
जन्नत में कौन जाए यह मैखाना छोड़कर।।

सभासद—अरे नादान ! इधर भी तो ला—

न कर अब देर ओ साकी ! पिला दे जो भी बाकी है।
पड़ा है कैसे झंझट में, मुझे तलछट ही काफी है।।

दूसरा— देर अब अच्छी नहीं जल्द पिला दे साकी।
ला अगर जाम नहीं, मटका उठा दे साकी।

तीसरा— बस न कर साकी तू बस एक ही प्याला देकर।
मेरे मुंह में तो उलट डाल दे मटका लेकर।।

[स्वरूपनखा का प्रवेश]

स्वरूपनखा—हाय ! मैं लुट गई ! मेरी नाक कट गई ! हाय हाय !

रावण—अरे यह कौन है जो इस प्रकार चिल्ला रहा है ! सारा आकाश सिर पर उठा रहा है ?

स्वरूपनखा—दुहाई है ! अरे भाई तेरी दुहाई है ।

रावण—(देखकर) कौन ? स्वरूपनखा! बता क्या फरियाद लाई है?

स्वरूपनखा—भाई तू तो मदिरा पीकर सोता रहता है और तेरे राज्य में अनर्थ होता रहता है ।

रावण—अनर्थ ! मेरे राज्य में ! यह तू कैसे कह रही है ? कहीं पागल तो नहीं हो गई :—

किस में साहस है करे जो सामने टेढ़ी नजर ।
किस की शक्ति है उठा कर आंख भी देखे इधर ।।
सिर उठाने की हिमाकत जिसने भी इक बार की।
सिर नजर आयेगा उसका नोक पर तलवार की।।

स्वरूपनखा—तो क्या तुझे अभी तक भी पता नहीं कि शत्रु सिर पर आन पहुंचा है ?

रावण—शत्रु ! कौन शत्रु ! किस का शत्रु ? मेरा शत्रु बन कर ब्रह्मांड में जीवित रहने वाला कौन है ? :—

नहीं है काल की शक्ति करे जो बाल भी बीका ।
पड़ा है सामने मेरे जगत का आज बल फीका ।।
मेरे शत्रु को दुनिया में ठिकाना मिल नहीं सकता ।
लगाकर वैर जीने का बहाना मिल नहीं सकता ।।

स्वरूपनखा—मैं तो तभी समझूंगी जब शत्रु से मेरा बदला लेकर दिखाओगे ।

रावण—तो क्या तुम मेरी शक्ति को नहीं जानती ? क्या तुम ने पृथ्वी, आकाश और रसातल में मेरे नाम की दुहाई नहीं सुनी ? मैं वह हूं कि—

चाहूं तो सितारों की जगह फूल खिला दूं ।
चाहूं तो रविदेव को पूरब में छिपा दूं ।।
विन्ध्य और हिमालय की जड़ों तक को हिलादूं।
आकाश को चाहूं तो रसताल से मिला दूं ।।

भय से मेरे न शेष के मस्तक में बल रहे।
वायु में चाल और न मेघों में जल रहे।।

स्वरूपनखा—यह तो मैं जानती हूं भाई, परन्तु समय की गति को कौन रोक सकता है? प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है? यह देखो मेरी नाक!

रावण—तो स्पष्ट क्यों नहीं कहती? बात को छिपाने का प्रयत्न क्यों कर रही है? तेरी नाक किस ने काटी है?

स्वरूपनखा—क्या कहूं भाई! कुछ समय से अयोध्या के दो राजकुमार आये हैं पंचवटी पर और अपने साथ एक परम सुन्दरी स्त्री भी लाये हैं। आज मैं घूमती-फिरती उधर जा निकली तो छोटे भाई लक्ष्मण ने कामातुर होकर मेरे ऊपर कुदृष्टि डाली और जब मैंने भागना चाहा तो क्रोधित होकर मेरी नाक काट डाली।

रावण—तो तुम ने खर दूषण से क्या नहीं कहा?

स्वरूपनखा—कहा था! परन्तु उन अन्यायियों ने खर-दूषण को भी गहरी निद्रा में सुला दिया। मेरी नाक के साथ उनका सिर भी उड़ा दिया।

रावण—(चिन्ता में पड़कर) उनका सिर भी उड़ा दिया? बड़े आश्चर्य की बात है! क्या तुम सच कह रही हो?

स्वरूपनखा—हां बिल्कुल सच कह रही हूं!

रावण—(गम्भीर मुद्रा में) तो अवश्य कोई रहस्य है। खर-दूषण को मार देना कोई साधारण बात नहीं है। किन्तु तुम चिन्ता न करो। जाओ महलों में आराम करो! इसका उचित प्रबन्ध कर दिया जायगा और तेरी नाक काटने का बदला अवश्य लिया जाएगा।

मन्त्री—महाराज! ऐसे दुष्टों को शीघ्र दण्ड मिलना चाहिये। नहीं तो राज्य में उपद्रव मच जायगा, प्रत्येक शत्रु सिर उठायेगा!

मेघनाथ—पिता जी ! आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये और अभिमानियों का सिर अपने सामने हाजिर लीजिये !

रावण—नहीं ! करने से पहले हर बात को सोच लेना जरूरी है इसलिये तुम्हें आज्ञा देने में मजबूरी है। अच्छा, दरबार बरखास्त, सब लोग चले जाएं।

[रावण के अतिरिक्त सब का जाना]

रावण—(स्वयं) देवता, राक्षस, गंधर्व और दिक्पाल—जितने ब्रह्मांड में हैं, उनमें से कोई मेरे सेवकों की बराबरी भी नहीं कर सकता, फिर मेरे समान खर-दूषण को मारने वाला साक्षात ब्रह्म के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? हां, यदि यह सत्य है ! और जगत के स्वामी ने अवतार धारण कर लिया है, तो मैं उन से अवश्य बैर करूंगा और अपने दूसरे शाप का अन्त करूंगा। मेरा शरीर तामसी है; इससे भजन और संयम तो होता नहीं, फिर उद्धार का और साधन ही क्या है ? ठीक है ! (सोचकर) परन्तु इसका उपाय ! आखिर बैर-भाव भी कैसे बढ़ाया जाय ? (फिर सोचकर) हां, यही ठीक है। कोई कपट का वेष बनाकर जाऊं और जानकी को उठाकर लाऊं। यदि वे साधारण मनुष्य हैं तो मेरे भय से लौट जाएंगे, और यदि वास्तव में अवतार हैं तो शक्तिरूपी जानकी को खोजते-खोजते यहां तक आयेंगे और मुझे इस शरीर रूपी बन्धन से छुड़ायेंगे। परन्तु अकेले से यह काम बनना बहुत कठिन है; इसमें किसी दूसरे की सहायता की भी आवश्यकता है। कौन हो सकता है, जो मेरे लिये अपनी जान पर खेल जाये और इस महान कार्य में मेरा हाथ बटाये। (कुछ सोच कर) ठीक ! याद आया ! मारीच, निस्संदेह हर एक दाव-घात में होशियार भी है और मेरा आज्ञाकार भी है। बस, उसी को तैयार करता हूं और जैसे भी हो सके जानकी को हरता हूं।:—

कसौटी पर उमीदों की मुकद्दर आजमाता हूं।
कपट से, द्रोह से, छल से उसे जाकर उड़ाता हूं ॥
[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(मारीच की कुटी)

मारीच— गाना

परलोक का मूरख ध्यान तो कर क्यों दुनिया में भरमाया है।
जिस पर तू मोहित हो बैठा वह सारी झूठी माया है ॥
भाई-बन्धु, बेटा-बेटी, नारी—भौजाई, मात-पिता।
ये सुख के सारे साथी हैं तूने जिनको अपनाया है ॥
संसार-जाल में फंस मूरख अपनी सुध-बुध सब भूल गया।
अज्ञान बना ही बैठा है सब ज्ञान-ध्यान बिसराया है ॥
इक दिन जाना होगा तुझ को संसार का सुख सब छोड़ कुशल।
इक रैन बसेरा तेरा है तू क्यों इस पर ललचाया है ?

[रावण का प्रवेश]

रावण—क्यों मारीच ! क्या हाल है ?

मारीच—(प्रणाम करके) लंकेश प्रणाम ! आइये ! पधारिये ! आज तो महाराज ने बड़ी कृपा दिखलाई जो इतने दिनों पीछे सेवक की याद आई।

रावण—हां, आज तुम से मिलने को इतना जी चाहा कि दरबार से सीधा इसी ओर चला आया।

मारीच—अहो भाग्य ! कहिये महाराज ! आनन्द में तो हैं ?

रावण—हाँ ! :—

'हम भी हैं आनन्द'—कहते हैं सभी व्यवहार में।
कौन रहता है मगर आनन्द इस ससार में ॥

मारीच—क्यों ? क्या आजकल कोई चिन्ता सता रही है जो ऐसी निराशा भरी बात कही जा रही है ?

रावण—हां भाई ! इस समय मुझ पर भी एक आपत्ति है।

मारीच—आपत्ति ? देवता और दानव के स्वामी पर आपत्ति ! स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल के विजेता पर आपत्ति ! क्या कहते हो दानवेश !

रावण—ठीक कहता हूं भाई ! कभी-कभी मंगल के सूर्य पर भी अमंगल की घटाएं छा जाती हैं। आपत्ति का नाम न जानने वालों पर भी आपत्तियां आ जाती हैं।

मारीच—तो कहिये क्या समाचार है ? यदि कोई मेरे योग्य सेवा हो, तो मारीच इसी समय तैयार है।

रावण—क्यों नहीं ! तुम जैसे वीरों पर ही तो मुझे गर्व है।

मारीच—तो फिर बतलाइये मेरे लिये क्या सेवा है ?

रावण—भाई ! कुछ दिनों से अयोध्या के दो राजकुमार इस ओर आये हैं और उन्होंने पंचवटी पर डेरे लगाये हैं। एक दिन बहिन स्वरूपनखा घूमती-घूमती उधर निकल गई, तो उसके रूप को देखकर उन दोनों की तबियत मचल गई। उन्होंने बहुत जाल फैलाये; अनेक दाव-घात चलाये, किन्तु जब स्वरूपनखा पर कोई प्रभाव न हुआ, तो नीचता करने पर उतर आये। छोटे भाई लक्ष्मण ने कटार निकाली और स्वरूपनखा की नाक काट डाली जब स्वरूपनखा ने अपनी सहायता के लिये खर-दूषण को बुलाया तो उन दुष्टों ने उन को भी यम के द्वार पहुंचाया।

मारीच—(सोच में पड़कर) हूं ! तो फिर अब आप क्या चाहते हैं ?

रावण—यही कि यदि किसी प्रकार जानकी हाथ आ जाय, तो इस अपमान का बदला उतर जाय।

मारीच—परन्तु जानकी हाथ कैसे आये ?

रावण—हां, इसका भी है एक उपाय। तुम वेष बदलने में होशियार हो और दाव-घात के भी जानकार हो, इसलिये सुनहरी मृग

का रूप धारण करो और मेरे साथ चलो। यदि हमारी चाल चल जायगी तो जानकी अवश्य हमारे हाथ आ आएगी।

मारीच—किन्तु ऐसा विचार करना तो बुद्धि के प्रतिकूल है, क्योंकि राम से बैर बांधना बड़ी भयंकर भूल है। :—

जिन्होंने बाण मारा ताड़का का दम निकाला है।
जिन्होने चाप शम्भू का सहज में तोड़ डाला है।।
जिन्होने भाई खर-दूषण को क्षण में पीस डाला है।
जिन्होने मुझको कुण्ठित बाण से लंका में डाला है।।
उन्हीं को आप ने बलहीन और नादान समझा है।
बहुत धोखा हुआ भगवान को इन्सान समझा है।।

रावण—बस, डर गए ? रावण जैसे पराक्रमी के सम्बन्धी होकर भी उन तपस्वियों से डर गए ? नहीं-नहीं ऐसा न कहो :—

मैं समझता हूं कि तुम बलवान हो रणधीर हो।
वीर की सन्तान हो और एक सच्चे वीर हो।।

मारीच—क्या बताऊं लंकेश ! जब विश्वामित्र की यज्ञ वाला बाण याद आता है तो हृदय बुरी तरह कांप जाता है :—

उठाऊं किस तरह आगे को पग उठता नहीं मेरा।
अधम साहस है मन हिम्मत जरा करता नहीं मेरा।।

रावण—तो क्या कायरता की बात करके वीरता के नाम को बट्टा लगाना चाहते हो ? लंका को अपमानित और कलंकित बनाना चाहते हो ?

कांपता है जिससे जग भयभीत सारा लोक है।
क्या उसी रावण का मामा इस कदर डरपोक है।।

मारीच— नहीं ! डरपोक नहीं बल्कि आप का हितैषी। विश्वास कीजिये दानवेश ! जिसने आपको यह सम्मति दी है वह आप का मित्र नहीं शत्रु है :—

लाके धोखे में मिटाया जा रहा है आप को।
नाश के पथ पर चलाया जा रहा है आपको।।

रावण—नाश के पथ पर ? मुझे नाश के पथ पर चलाने वाला कौन है ? विरोध की भावना लेकर मेरे सामने आने वाला कौन है?

बढ़ते हुए जमाने की रफ्तार रोक दूं ।
विकराल-काल-ज्वाला की फुंकार रोक दूं ।
आगे न बढ़ाने पाए नदी, धार रोक दूं ।
घनघोर घोर मेघ की बौछार रोक दूं ।।
आकाश को उजाड़ दूं तारों को तोड़ दूं ।
अग्नि का तेज छीन लूं, सागर निचोड़ दूं ।।

मारीच—ठीक है ! किन्तु समय की गति सब कुछ निष्फल बना देती है । होनी अच्छे अच्छों को खेल खिला देती है :—

काल का परवाह बढ़ता और फिर रुकता भी है ।
जो चढ़ा करता है ऊंचा वह ही फिर झुकता भी है ।।

रावण—बस-बस रहने दे ! अपनी इस शिक्षा को रहने दे । मैं इस प्रकार की बातें सुनना नहीं चाहता :—

आज उन दो जन्तुओं का बल दिखाने लग गया ।
शेर को डरपोक गीदड़ से डराने लग गया ।।
कोयले पर और भी रङ्गत चढ़ाने लग गया ।
जोंक पथ्थर में अरे कायर लगाने लग गया ।।
मेरा नौकर और बड़ाई फिर उसी मुर्दार की ।
मार डालूंगा अगर फिर से यही तकरार की ।।

मारीच—क्षमा कीजिए लकेश! मैं आपको अपना मित्र जानकर समझाता हूं, अच्छे और बुरे का ज्ञान कराता हूं ।

रावण—तो क्या मैं अज्ञान हूं, जो तू ज्ञान का उपदेश सुनाता है ! बच्चा हूं जो मुझे गुरु की तरह पाठ पढ़ाता है ? :—

सच कहा है नीच को सिर पर चढ़ाना है बुरा ।
तेरे जैसे मूर्खों को मुंह लगाना है बुरा ।

मारीच—मैं मूर्ख ही सही ! किन्तु ये बातें आपको मूर्खों वाली नहीं कह रहा हूं । याद रखिए :—

नहीं अच्छा मिलेगा फल तुम्हें अपनी ढिठाई का।
चले हो राह खोटी छोड़कर रस्ता भलाई का।।
हुए अज्ञान के वश और बने भगवान के शत्रु।
कहाकर वेद पण्डित बन गये कुल-मान के शत्रु।।

रावण—कायर, कुबुद्धि, नादान ! गिरह भर का आदमी और गज भर की जबान। क्या जीवन से घृणा हो आई है ? जो रावण को उपदेश करने की समाई है। क्या तू नहीं जानता ?—

जो इरादा कर चुका हूं वह बदल सकता नहीं।
बल यह रस्सी का है जलकर भी निकल सकता नहीं।
उठ खड़ा हो साथ चल, बकवास सब बेकार है।।
सिर उड़ा दूंगा अगर फिर से कहा 'इन्कार है'।।

मारीच—इन्कार तो नहीं, परन्तु पराई स्त्री को चुराना कहां का धर्म है ? यह तो महा नीच कर्म है।

रावण—और पराई स्त्री की नाक काटना परम धर्म है ?

मारीच—महाराज ! होनी से हर कोई मजबूर है। भगवान ही जानता है कि इस में राम का दोष है या स्वरूपनखा का कसूर है।

रावण—तो यह क्यों नहीं कहता कि स्वरूपनखा बदचलन है स्वरूपनखा व्यभिचारिणी है ! अरे दुर्बुद्धि, मलीनात्मा, नीच बुड्ढे! तुझे तो बात भी करनी नहीं आती ! जो मुंह में आता है वही बक देता है, देहाती !

मिटा देता अभी होता न गर तुझ से मेरा नाता।
जबां को काट देता और मुंह में आग भरवाता।।

मारीच—परन्तु सच्ची बात तो······

रावण—(बात काट कर) चुप नालायक ! इतना नहीं जानता कि राजाओं के सामने सभ्यता में रहा करते हैं; सच्ची बात भी

वही बकवास करता है जबां फर-फर चलाता है।
समझकर बोलना आता नहीं बातें बनाता है॥

मारीच—बस, एक बार फिर कहे देता हूं लंकेश ! यह अहंकार तुम्हें पतन की ओर ले जायगा; राम से बैर करने का परिणाम अच्छा नहीं हो पायगा :—

कूद कर अग्नि में बचने का बहाना ही नहीं।
राम के बैरी को दुनियां में ठिकाना ही नहीं॥

रावण—फिर वही झक-झक ! फिर वही बकवास ! न अपनी पदवी का ध्यान न मेरी इज्जत का पास। अरे मूर्ख ! यह पाठशाला नहीं है जो तू बच्चों की तरह मुझे पढ़ा रहा है। मैं साथ चलने को कहता हूं और तू दूर खड़ा बातें बना रहा है। याद रख यदि फिर इन्कार करेगा तो बिन आई मौत मरेगा। परों से कुचल कर धूल में मिला दूंगा; तेरी लाश चील और कौवों को खिला दूंगा :—

तोड़ दूंगा सख्तियों को मूर्ख ! तेरी जान पर;
चूर कर दूंगा पटक कर लाश को पाषाण पर।

मारीच—अच्छा केवल ! एक बार फिर विचार लीजिए, तब ……।

रावण—(बात काट कर) सोच चुका हूं, अच्छी तरह सोच चुका हूं। चल, मेरे साथ चल :—

कह चुका हूं तुझ से मूर्ख ! बात मेरी मान ले।
काल मण्डलाता है वरना सिर पै तेरे जान ले॥

मारीच—महाराज ! …

रावण—बस आगे शब्द न निकालना।

मारीच—अच्छा केवल एक बात और सुन लीजिए।

रावण—नहीं ! कोई जरूरत नहीं।

मारीच—मुझे क्षमा कीजिए।

रावण—कदापि नहीं।

मारीच—तो क्या चलना ही पड़ेगा ?

रावण—अवश्य ।

मारीच—और यदि इन्कार करूं ?

रावण—तो यही तलवार तेरे सीने के पार करू ।

मारीच—(एक ओर होकर स्वय) आह ! अब दोनों ओर से मौत आई है । यदि गया ता राम—बाण नहीं छोड़गा और इन्कार किया तो इसकी तलवार से सफाई है । क्या करू ? क्या न करू ? ऐसी दुविधा में पड़ा हूं कि दोनों ओर खाई है (विचार कर) खैर मौत तो आ ही गई फिर इस दुष्ट के हाथ से क्यों मरू ? भगवान का वाण खा कर ही कल्याण का साधन क्यों ना करू ? (प्रकट) अच्छा लंकेश ! मुझे आप की आज्ञा स्वीकार है; चलिये, मारीच चलने का तैयार है ।

रावण—शाबाश ! मारीच तू बड़ा दिलेर है; आखिर तो शेरों का शेर है ।

मारीच—(स्वयं) अहा ! :—

स्वार्थ में अन्धी है दुनिया, स्वार्थ का संसार है ।
स्वार्थ की ही मित्रता है, स्वार्थ का ही प्यार है ।।

रावण—क्यों ! अब क्या संकोच है ?

मारीच—कुछ नहीं ! चलिये :—

दिखाया है मेरे कर्मों ने जो कुछ वह ही अच्छा है ।
जब आई मौतही सिर पर तो सब संकोच वृथा है ।।

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(पंचवटी)

[राम लक्ष्मण और सीता जी बैठे हैं]

सीता।

गाना

दोहा—समय निकट है जाएंगे अवधपुरी के धाम।
बन भरमण में हो गये चौदह बरस तमाम ॥
तेरी ही कृपा से हे ईश्वर! सब दिवस कटे आसानी में।
पाये बहुतेरे सुख हमने बन-उपवन की जिन्दगानी में ॥
अब लौट अवध को जाएंगे देखेंगे नगरी की शोभा।
दर्शन पाकर माताओं के यह जीवन-जन्म सफल होगा ॥
होगी फिर भेंट भरत जी से, सखियों से मिल सुख पाऊंगी।
जो कुछ भी वन में बीता है सारा वृतान्त सुनाऊंगी ॥
अहा! जिस वन में आते समय प्रजावासी दुखी होते थे वह वन कितना सुखदायी है! मानो यहां की प्रत्येक वस्तु जीवन का रस लेकर आई है।:—

बड़े स्वादिष्ट मेवे हैं बड़ा ही शुद्ध पानी है।
मनोहर स्वर्ग से बढ़कर यहां की जिन्दगानी है ॥

राम—ठीक है प्रिय! मन की कल्पना सब कुछ करके दिखा देती है। इस में वह शक्ति है जो सुन्दर को असुन्दर और असुन्दर को सुन्दर बना देती है।

सीता—यही तो कारण है नाथ! कुछ लोग तो महलों में भी दुखी रहते हैं और कुछ टूटी फूटी झोंपड़ियों को भी अपना स्वर्ग कहते हैं।

राम—और इस से भी बढ़कर जब वैराग्य की भावना जाग्रत हो जाती है तो संसार के सारे वैभव और समस्त धन-सम्पत्ति निर्मूल हो जाती है:—

विषयों से हट के मन जो उदासीन हो गया।
ससार का समस्त विभव लीन हो गया ।।
झूठे ही संकटों को मनुज झेल रहे हैं।
है कल्पना के खेल जिन्हें खेल रहे हैं।।

[मृग रूपी मारीच का प्रवेश]

सीता—(मृग को देखकर) अहा! देखिये प्रभो! यह मृग वन की छटा का आनन्द किस प्रकार उठा रहा है? मानों जीवन की असारता को भूले जा रहा है।

राम—हां-हां! अपनी मस्ती में विचरता फिर रहा है।

सीता—परन्तु स्वामी! इसका रग तो बड़ा ही सुहावना है। यदि यह हाथ आ जाए तो मेरी इसे पालने की भावना है।

राम—हाँ! है तो बड़ा सुन्दर।

सीता—तो स्वामी! चले जाइये और जैसे भी हो इसे पकड़ लाइये।

राम—किन्तु यदि हाथ न आया तो?

सीता—तो फिर इसके चर्म की मृगछाला ही बना लेंगे।

राम—अच्छा, तो लो मैं अभी जाता हूं। (लक्ष्मण से) देखो लक्ष्मण! तुम सावधान रहना! जिस दिन से खर-दूषण का वध किया है राक्षसों का बहुत जोर हो गया है। मेरे पीछे यहां से एक पग भी न धरना और हर प्रकार से जानकी की रक्षा करना।

लक्ष्मण—ऐसा ही होगा प्रभो! आप निश्चिन्त रहें।

[राम का मृग के पीछे जाना, आवाज का आना]

आवाज—लक्ष्मण! लक्ष्मण! जल्दी आओ, मेरे प्राण बचाओ।

सीता—लक्ष्मण तुमने कुछ सुना?

लक्ष्मण—हां सुना, किन्तु यह धोखे की आवाज है। अवश्य कोई राक्षसी का साज है।

सीता—नहीं नहीं! तुम जल्दी जाओ। उन पर अवश्य कोई संकट आया है; इसीलिये तो तुम्हें बुलाया है।

लक्ष्मण—माता जी ! ऐसी भूल न कीजिये ! कुछ सोच समझ कर आज्ञा दीजिये ।

सीता—तो क्या तुम भाई के संकट में भी काम न आओगे !

लक्ष्मण—संकट ! त्रिलोकी के नाथ पर संकट । :—

सकल संसार के संकट जो क्षण में दूर करते हैं ।
पड़ेगा कष्ट क्या उन पर जो सबके कष्ट हरते हैं ।।

सीता—तो क्या तू जाना नहीं चाहता है ? जो इस प्रकार उल्टी सीधी बातें बनाता है ।

लक्ष्मण—माता जी ! जाने को तो तैयार हूं किन्तु भाई की आज्ञा से लाचार हूं । आप धीरज धरें,किसी प्रकार की चिन्ता न करें ।

अधर्मी राक्षस हैं जाल धोखे के बिछाते हैं ।
हजारों रूप माया के घड़ी भर में बनाते हैं।।

सीता—किन्तु लक्ष्मण ! मेरी दाहिनी आंख फड़क रही है; नेत्रों के सामने बिजली सी तड़क रही है,शगुन अच्छे नहीं हैं । जाओ । तुरन्त चले जाओ ।

लक्ष्मण—माता जी ।......

सीता—(बात काटकर) मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं कि इसी समय पंचवटी को छोड़कर मृग वाली दिशा में चले जाओ !

लक्ष्मण—और आप को अकेली छोड़ दूं ।

सीता—हां, छोड़ दो ।

लक्ष्मण—किन्तु यदि कुछ हो गया तो ?

सीता—लक्ष्मण ! अब अधिक बातें करने का समय नहीं है; वार्तालाप तो फिर भी होते रहेंगे, इस समय शीघ्र चले जाओ ।

लक्ष्मण—क्षमा कीजिये माता । आज मैं आप की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा हूं; ढीट लक्ष्मण को क्षमा कीजिये ।

सीता—अब समझी ! कपटी लक्ष्मण ! मैं तेरे कहने का भाव अब समझी ! तूने अवश्य पाप का संकल्प किया है और मुझे अपनी

बनाने के लिये ही तू अयोध्या से हमारे साथ आया है। परन्तु याद रख :—

सच्चे को झूठ करना कोई खेल नहीं है।
सतियों का धर्म हरना कोई खेल नहीं है ।।
गन्धर्व, दनुज, देव जो मिल कर भी आएंगे।
सीता को अपने धर्म पै निश्चल ही पाएंगे ।।

लक्ष्मण—हाय हाय ! मैं यह क्या सुन रहा हूं ! कैसे पाप का भागी बन रहा हूं ! आह माता ! :—

आंखें ये फूट जाएं यदि बद नजर करूं।
हो नर्क वास पाप का चिन्तन अगर करूं ।।
श्रद्धा है दिल में आप को जगदम्बे मान के।
चरणों को पूजता हूं सुमित्रा के जान के ।।

सीता—बस बस रहने दे ! क्यों बातें बनाता है। पाप का चिन्तन करते हुए तनिक भी नहीं लजाता है :—

पाप है दिल में तेरे तू सोचता है घात की।
मेरे फुसलाने को बस मीठी रसीला बात की ।।

लक्ष्मण—आह ! :—

विधाता क्या दिखाया है हुआ माता मन उलटा।
गिरे आकाश से बिजली जो हो मेरा चलन उलटा ।।
नजर उलटी, वचन उलटा, परण उलटा कथन उलटा।
हुआ सारा जगत उलटा, मही उलटी, गगन उलटा ।।
समय उलटा तो मन उलटा सकल आकार उलटे हैं।
करम की मार होती है, तः सब व्यवहार उलटे हैं ।।

सीता—(सिर पीट कर) हाय कपटी लक्ष्मण ! मुझे क्या पता था कि तू बनों में आकर इस प्रकार विश्वास-घात करेगा; भाई का सेवक बन कर भाभी के साथ दाव घात करेगा :—

भोले पन से मैं नहीं थी जानती पापों का नाम।
क्या समझती थी कि अपने भी नहीं आयेंगे काम ।।

लक्ष्मण—बस माता जी ! अब नहीं सुना जाना । अपने मन को मैं आप ही जानता हूं । लीजिये, भाई को आज्ञा तोड़ता हूं और आप की आज्ञा मानता हूं । परन्तु इतनी कृपा अवश्य कीजिये कि (रेखा खींच कर) इस रेखा से बाहर पग न दीजिये :—

मिटाई जा नहीं सकती करम गत की कभी रेखा ।
टली है आज तक किससे पड़ी जो भाग्य की रेखा ।।
हे माता ! खींचता है आज यह लक्ष्मण यती रेखा ।
वही जल कर भस्म होगा, जो लांघेगा मेरी रेखा ।।

[लक्ष्मण का जाना, रावण का साधु-वेश में गाते हुए प्रवेश]

रावण—

गाना

जग में उसका यश फैला जो सन्त जनों को देता है ।
चंचल माया है दुनियां की मूरख इस को लेता है ।।
रीति यही है नियम यही और ज्ञान यही है वेदों का ।
बोता है सो पाता है जो देता है सो लेता है ।।
धर्म कर्म का सार यही है दान दिया जिसने जग में ।
भवसागर के पार वही जन बेड़ा अपना खेता है ।।

(जोर से) अलख दाता! भण्डार भरपूर रहें! संकट दूर रहें! शत्रु चूर रहें ।

सीता—आइये महात्मन् ! कन्द मूल स्वीकार कीजिये !

रावण—आनन्द रहो सुन्दरी ! सौभाग्यवती हो । परन्तु देवी ! तुम दूर से ही भिक्षा दिखाती हो ? आगे क्यों नहीं आती हो ?

सीता—लीजिये महाराज ! थोड़ा आगे आकर ही भिक्षा ले लीजिये ।

रावण—नहीं सुन्दरी ! सन्यासी लोग बान्धी हुई भीख नहीं लिया करते । यदि कुछ देना चाहती हो, तो इस रेखा से बाहर आकर दो ।

सीता—क्षमा कीजिये महाराज! मैं बाहर नहीं आ सकती ।

रावण—हां, हम जानते हैं ! तुम्हें लक्ष्मण ने मना कर दिया है। परन्तु देवी ! साधुओं से डरना निर्मूल है। सन्त जिसके द्वार पर आ जाते हैं, ईश्वर उनके अनुकूल है।

सीता—महाराज ! आप ने सत्य कहा, परन्तु लक्ष्मण का कहा न मानना भी तो बुरा है।

रावण—अच्छा देवी ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो लो हम जाते हैं।

सीता—नहीं महाराज ! जाइये नहीं ! द्वार से साधु को खाली हाथ लौटाना महापाप है लीजिये रेखा से बाहर ही भिक्षा लीजिये ?

[सीता का बाहर आना, रावण का वेश उतारना, सीता का डर जाना]

सीता—हैं। यह क्या।

रावण—देख और पहचान।

सीता—आप कौन हैं ?

रावण—लंकेश रावण, नहीं, नहीं जगत-नरेश रावण।

सीता—रावण ! तू यहां क्यों आया है ?

रावण—अपने बदले की अग्नि बुझाने के लिये अर्थात् तुझे हर कर ले जाने के लिये।

भुलाओ राम का चिन्तन करो स्वीकार रावण का।
खड़ा है रथ तुम्हारे वास्ते तैयार रावण का॥

[उठा कर विमान में डालना]

सीता—(चिल्लाते हुए) हे जगदीश ! हे देव ! हे रघुनाथ जी ! रक्षा करो ! इस दुष्ट से मेरी रक्षा करो !

चौपाई

हा रघुवर मुद-मंगल-कारी।
विपत-विदारन, संकट-हारी॥

रावण धूर्त विपत महा दीन्ही ।
अबला जानि हरण मोहि कीन्ही।।
त्राहि-त्राहि रघुपति रघुवीरा ।
लक्ष्मण ! आन हरहु मम-पीरा ।।
क्रोध-विवश तुम दोष लगावा ।
करम कियो सोई फल पावा ।।

[रावण का सीता को ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(परदा—जंगल)

[रावण का सीता को ले जाते हुए दिखाई देना जटायु से मुठभेड़]

सीता—हे नाथ ? कहां हो ? इस दुष्ट से मेरे बन्धन छुडाओ । हाय राम ! मैं कितनी अभागिन हूं कि आप के चरणों से भी अलग हो रही हूं ।

दोष मेरा कुछ नहीं है नाथ ! अबला नार हूं ।
किस तरह आ कर मिलूं इस दुष्ट से लाचार हूं ।।

जटायु—(स्वयं) हैं ? यह रोने की आवाज कहाँ से आई ? इन दुख भरे शब्दों ने तो हृदय में अग्नि सी लगाई ।

सीता—(चिल्लाती हुई) हे गृद्धराज ! मेरी रक्षा करो ! मुझे इस अन्यायी के पंजे से छुडाओ ।

जटायु—हैं! यह तो मेरे ही नाम की पुकार आ रही है । प्रतीत होता है कि कोई स्त्री अपनी सहायता के लिये बुला रही है । सुनूं तो किस की आवाज है । (कान लगाकर सुनना)

सीता— गाना

हे भक्त राज आओ ? पापी सता रहा है ।
रक्षक करो मेरी अब सन्तोष जा रहा है ।।

सुनता नहीं है कोई कब से पुकारती हूं।
सब आर्तनाद मेरा बेकार जा रहा है।।
रावण महा अधर्मी पापों पै तुल गया है।
चरणों से जो पती के मुझ को छुड़ा रहा है।।
आशाओं का उजाला पड़ने लगा है मद्धम।
आंखों में अब कुशल इक अन्धेर छा रहा है।।

जटायु—(ध्यान से देखकर) ओह ! यह तो जनकसुता है। श्री राम की प्यारी सिया है। अरे रावण ! तू इसे क्यों सता रहा है? इस बेचारी अबला को कहां लिये जा रहा है?

रावण—क्यों ! तू मेरा रास्ता रोकने वाला कौन है? चल ! अपनी राह लग।

जटायु—अरे दुष्ट ! आखिर तेरा क्या अभिप्राय है? पराई स्त्री को उठाकर ले जाना कहां का न्याय है?

वेदपाठी होके क्यों करता है दूषित कर्म को?
भूल बैठा क्यों अरे नादान ! अपने धर्म को।।
है महा अनुचित दुखाना निर्बलों के मर्म को?
होके अन्धा क्यों गवा बैठा है कुल की शर्म को।।
तू है ज्ञानी नेक और बद की जरा पहचान कर?
देख अपने हाथ से मिटने का मत सामान कर।।

रावण—अरे मूर्ख ! अपनी शक्ति से अधिक क्यों पैर फैलाता है? जा अपना काम कर, पराई आग में कूद कर क्यों प्राण गंवाता है?

जटायु—हां ! स्वार्थी को परहित में कहां आनन्द आता है? वह तो अपने स्वार्थ में डूब कर ही मर जाता है; परन्तु परोपकारी तभी सन्तोष पाता है, जब दूसरे की भलाई में अपने प्राणों की बलि चढ़ाता है।

रावण—परोपकारी के बच्चे ! जरा अपनी औकात को तो देख ! मेरी असीम शक्ति का अनुमान तो कर—

कहां तू है कहां मैं हूं, कहां मुझ से लड़ाई है।
जरा सी चींवटी है और पर्वत की चढ़ाई है॥
तुझे अपना विरोधी देखकर भी शर्म आई है।
मलूं हाथों से भुनगे को नहीं मेरी बड़ाई है॥

जटायु—अरे अभिमानी! याद रख, जब मौत की आंधी का झोंका आयेगा तो सारा बल-बूता यहीं धरा रह जायगा। मूर्ख! वैभव पर इतना अभिमान न कर। मैं फिर कहता हूं कि सती को सता कर अपने नाश का सामान न कर :—

जब नहीं विषहर तो फिर तू सांप को छूता है क्यों।
तैरना आता नहीं सागर में फिर कूदा है क्यों॥
खेलता है किस लिये अग्नि से मूर्ख खेल तू।
आग को चाहे बुझाना और डाले तेल तू॥

रावण—अरे अज्ञानी पक्षी! तू क्या जाने कि मैंने सकल ब्रह्मांड पर अपना सिक्का जमाया है। बड़े बड़े देवता और दिक्पालों को अपना दास बनाया है। ऋद्धि-सिद्धि, ऋषि-मुनि दैत्य और दानव सबका माना हुआ महिपाल हूं। जिसको तू काल कहता है मैं उस का भी काल हूं।

मैं अगर चाहूं तो नभ-मण्डल में हल-चल डाल दूं।
पर्वतों को चीर दूं, जल-थल में हल-चल डाल दूं॥
फर दूं लोकों को, अस्ताचल में हल-चल डाल दूं।
पट पवन का फाड़ दूं, बादल में हल-चल डाल दूं॥
मार दूं ठोकर तो पल में धूल भू-मण्डल बने।
क्रोध से देखूं तो सागर सूख कर जंगल बने॥

जटायु—ओह! इतना अभिमान! अरे नादान! माना कि तू बीस भुजाधारी है, किन्तु मौत तो तेरे सिर पर भी सवार है; कर्म की गति से तो तू भी लाचार है :—

वक्त से पहले जहां तक हो सके अभिमान कर।
सिंह को गीदड़ बना, बलहीन को बलवान कर॥

आग पानी से मिला,विष को सुधा अनुमान कर।
धूल को नभ में चढ़ा, आकाश को मैदान कर।।
पर है जल का बुलबुला,कुछ देर की यह शान है।
उन्नति में अवनति है, मान में अपमान है।।

रावण—बूढ़े नादान ! रावण को शिक्षा देने का ध्यान ! याद रख ! मैं अपने इरादे से बाज नहीं आऊंगा, सीता को छोड़कर कदापि न जाऊंगा।

जटायु—अच्छा यदि छोड़कर न जायगा तो ले जाने भी न पायेगा। याद रख :—

है मन में रामभक्ति राम का अरमान है जब तक।
धर्म की आन है जबतक,करम का ध्यान है जब तक।।
लगा सकता नहीं तू हाथ, तन में जान है जब तक।
भुजाओं में है बल और आत्मा में ज्ञान है जब तक।।
करूंगा इसकी रक्षा, राह में तेरी अड़ूंगा मैं।
धरम का पक्ष लेकर पाप से कुश्ती लड़ूंगा मैं।।

रावण—अच्छा यदि इतना साहस है तो आ ! पहले तुझे ही ठिकाने लगाता हूं। राम को पीछे देखूंगा पहले तेरी ही शक्ति आजमाता हूं।

[युद्ध होना, रावण का मूर्छित हो जाना]

जटायु—आओ बेटी सीता ! अन्याई मूर्छित हो गया, भगवान ने तुम्हारी खूब रक्षा की।

सीता—धन्य है ! गृद्धराज ! परोपकार इसी का नाम है; निर्बलों के लिए मिट जाना शूरवीरों का ही काम है।

जटायु—क्या कहती हो पुत्री ! मैंने कौन सा बड़ा काम कर दिखाया है केवल अपना कर्तव्य ही तो निभाया है।

सीता—क्यों नहीं महात्मन् ! आप जैसे कर्मवीरों के ऊपर ही तो धर्म का भार है। जो अपने लिये जीते हैं, उनका जीवन तो निःसार है।

जटायु—सीते ! मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित क्यों बनाती हो ? राई को पर्वत से किस लिये मिलाती हो ? भगवान को धन्यवाद दो जिस ने तुम्हारी रक्षा की !

रावण—(होश में आकर) नहीं ! कदापि नहीं ! ठहर ! अभी आता हूं और तुझे यम के दरबार पहुंचाता हूं ।

जटायु—अरे अन्यायी ! मैं फिर कहता हूं कि तू जानकी को न सता। ऐसा पाप करके अपनी मौत न बुला ।

दया कर किस लिये अबला पं इतना जुल्म करता है ।
सता कर तू इसे क्यों पाप का भण्डार भरता है ।।
रहा अब तक न आगे को किसी का मान दुनिया में ।
मिटेगा एक दिन तेरा भी बल-अभिमान दुनिया में ।

रावण—(कटाक्ष से) लो देखो ! गीदड़ सिंह को दांत दिखा रहा है, चींटा आकाश पर चढ़ा जा रहा है—

मूरख लगा रहा है गिरह नभ की चाल में ।
बांधगीं मकड़ियां भी गजानन को जाल में ।।

जटायु—रावण अब भी मान जा नहीं तो बहुत पछताएगा ।

रावण—चल ! दूर हो निर्लज्ज ! तू मेरे सामने क्या पांव अड़ायेगा ।

[रावण का अग्नि-बाण मारना, जटायु का गिरना]

जटायु—हाय ! बेटी सीता ! अब विवश हो गया ! अन्यायी ने अग्निबाण से सारा शरीर जला दिया ! क्षमा करना ! मैं तुम्हारी कोई सहायता न कर सका, मुझे क्षमा करना ।

सीता—भक्तराज ! आप धन्य हैं । आप ने मेरी रक्षा के लिये अपने प्राणों का बलिदान कर दिया, भगवान आप को इसका फल देंगे । अब इतना उपकार और करना कि यदि राम-लक्ष्मण इधर से आ जाए तो उनसे सब वृतान्त बता देना । हाय राम !

[रावण का सीता को ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

[राम का मृतक मृग को लिये हुये लौटना, मार्ग में लक्ष्मण का मिलना।]

राम—हैं! लक्ष्मण! तुम यहां कहाँ? तुम ने जानकी को किस पर छोड़ा? क्या तुम मेरी आज्ञा भी भूल गये?

लक्ष्मण—क्या करूं भ्राता जी! आपके चले आने के बाद माता जी ने एक आवाज सुनी। कोई आप को बोली में मेरा नाम ले लेकर पुकार रहा था।

राम—क्या कहा? मेरी बोली में?

लक्ष्मण—हां महाराज!

राम—तो उसे तुम्हारा नाम कैसे ज्ञात हुआ? प्रतीत होता है वह कोई कपटी राक्षस था।

लक्ष्मण—यही मेरा भी विचार है नाथ! मैंने माता जी को बहुत समझाया कि यह धोखे की आवाज है; राक्षसों का कोई साज है परन्तु उनको सन्तोष न हुआ; मेरे कहने पर तनिक भी विश्वास न आया!

राम—किन्तु तुमने फिर भी अच्छा नहीं किया! जान बूझ कर धोखा खाया; क्या तुम नहीं जानते कि यह राक्षसों का देश है।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़ कर) क्या करता भ्राता जी!

गाना (तेरी करनी कुटिल······)

टेक—नहीं मम दोष है भाई। वचन है सत्य रघुराई।

अन्तरा १—मृग के पीछे नाथ जब आये आप सिधार;
सीता माता ने सुनी दुख की हाहाकार।
बहुत ही मन में अकुलाई-वचन है सत्य······

२—आज्ञा दी हे लक्ष्मण! जाओ तुम तत्काल;
देखो प्राणाधार का मेरे है क्या हाल।
बड़ो दुखमय पुकार आई, वचन है सत्य······

३—समझाया मैंने बहुत सुनी नहीं इक बात;
क्रोधित हो अनुचित वचन कह डाले हे तात।
'कुशल' होनी न टल पाई-वचन है सत्य……

राम—ठीक कहते हो लक्ष्मण! कर्मगति बड़ी बलवान है; खैर चलो देखें, क्या बात है?

लक्ष्मण—चलिए प्रभो!

[दोनों का जाना परदा गिरना]

दृश्य छठा

(पंचवटी)

[राम लक्ष्मण का आना और सीता को न पाकर उदास होना]

राम—(देख कर) लो देखो लक्ष्मण? जानकी आश्रम में कहीं नहीं है। तुमने उन्हें कहां छोड़ा था?

लक्ष्मण—मैं तो इसी स्थान पर छोड़ गया था प्रभो! आश्रम के बाहर इसी पाषाण-शिला पर।

राम—परन्तु यहां तो नहीं है।

लक्ष्मण—क्या बताऊं भ्राता जी, काल की गति कुछ कही नहीं जाती।

राम—मैं तो पहले ही जानता था कि राक्षस बड़े कपटी होते हैं। अवसर पाते ही कुछ न कुछ उपद्रव मचा ही देते हैं।

लक्ष्मण—आप का कहना ही हुआ महाराज!

राम—आह! प्यारी सीते! तुम कहां हो! जल्दी आओ! अभागे राम को अब अधिक न कलपाओ:—

अब सहा जाता नहीं आंखों से छिप जाना तेरा।
हाय प्यारी किस तरह देखूं यह शरमाना तेरा॥
छोड़ कर महलों के सुख बनवास में आना तेरा।
और फिर यूं रूठ कर मुझ से चले जाना तेरा॥

सच बताओ डर गई क्या संकटों के नाम से ?
या हुआ अपराध कोई इस अभागे राम से ?

लक्ष्मण—आह ! भ्राता जी ! हम इतने दुःख कैसे भरेंगे ? इस महान् आपत्ति को किस प्रकार सहन करेंगे ?

राम—हम ही नहीं लक्ष्मण ! देखो, जानकी के वियोग में पंचवटी भी कैसी उदास हो रही है। माना कली-कली निराशा में प्राण खो रही है :—

कहां वह फूल—फुलवारी कहां वह दिव्य उपवन है।
जहां फूला-फला घर था वहां उजड़ा हुआ वन है ॥

लक्ष्मण—निस्सदेह भ्राता जी ! जिस स्थान से हटने का मन नहीं चाहता था आज वही काटने को आता है। जिस पर्ण-कुटी की छाया में विश्राम किया करते थे आज उसी को देखकर हृदय कांप जाता है :—

लताएं वृक्ष बदले, ताल बन सब के ही ढब बदले।
हृदय के भाव जब बदले तो जड़-चैतन्य सब बदले॥

राम—हां देखो तो ! ये वृक्ष भूत बने हुए मुझे डरा रहे हैं; जगल के पक्षी मेरी हसी उड़ा रहे हैं। मृग और सियार मुझे पागल समझते हैं, कोयल और कबूतर मेरे रोने पर हंसते हैं।

हाय प्यारी बिन तेरे क्या दुःख उठाने हो गये।
हो गया शत्रु जगत अपने बेगाने हो गये ॥

लक्ष्मण—क्यों नहीं प्रभो ! वियोग की दशा में ऐसा ही होता है, रोने वाले के साथ कौन रोता है।

राम—और इधर भी देखो ! ये पाषाण की शिलाएं क्यों मलीन हुई जाती हैं ? ये ओस की बून्द किस के लिये आंसू बहाती हैं ? क्या इनको भी जानकी की याद सता रही है ? क्या इनको भी विरह की अग्नि जला रही है ? अरे वृक्षो ! तुम तो यहीं खड़े थे; बताओ जानकी कहां चली गई ? अरे पशुओं ! तुम तो आस-पास ही विचर रहे थे ! क्या तुम ने भी उसको नहीं

देखा ? हे आकाश में भ्रमण करने वाले सूर्य देव ! तुम तो संसार पर दृष्टि रखते हो तुम ही बताओ कि जानकी किस परदे में जा छिपो ? ओह ? कोई नहीं बोलता ? सब ने मौन साध लिया है, सब के मुंह में ताले पड़ गये हैं ? किस से पूछूं ?

भाग्य ही जब फिर गया अपना बेगाना फिर गया।
जानकी क्या फिर गई सारा जमाना फिर गया ॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ? आप तो धैर्यवान हैं; फिर इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं ?

टलता नहीं वह संकट जो भाग्य में लिखा है।
रोता है मूर्ख, ज्ञानी हंस-हंस के झलता है ॥

राम—(अपने विचारों में) तो क्या मैं पागल हो गया हूं ? क्या मैं बहकी-बहकी बातें करने लगा हूं ? नहीं, नहीं ? मैं तो होश में हूं। फिर ये दिशाएं मेरी सूरत से क्यों भागी जा रही हैं ? वृक्षों की टहनियां मुझे देख देख कर सिर क्यों हिला रही हैं ? चलो लक्ष्मण ? अब हम भी इन्हें छोड़ कर कहीं और चलें।

बनायेंगे किसी निर्जन गुफा में अब ठिकाना हम।
कहीं तो ढूंढ लेंगे मुंह छिपाने का बहाना हम ॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ? मन को शान्ति दीजिये और सावधान होकर जानकी जी का पता लगाने की चिन्ता कीजिये।

राम—हां भाई ? चलो; अब यहां जी भी काहे को लगेगा ? जानकी के बिना तो संसार ही सूना हो गया :—

गाना (कंकर कंकर से मैं पूछूं शंकर······)

जंगल-जंगल भ्रमता डोलूं प्यारी मेरी कहां है ?
कौन बताये, कौन बताये।
वृक्ष मौन पशु-गूंगे, सरिता भागी जाती;
सन् सन् पवन करे मोरी निन्दा वरण देख इठलाती;

धीरज कहता है मैं जाऊं, मन की हंसी कहां है?
कौन बताये······

विरही को दिन सूने लगते, रातें महा डरानी;
सोते तेरे होते जग की विप्ता कुछ न जानी;
जब था यह बनवास सुहाना अब वह घड़ी कहां है?
कौन बताये······

[दोनों का जाना परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(बन का मार्ग)

[जटायु घायल पड़ा है-राम लक्ष्मण आते हैं]

राम—(स्वयं) काम के बाण; वृद्धावस्था का शोक और विरह की अग्नि इतनी प्रबल होती है कि धैर्य भी मनुष्य का साथ छोड़ देता है, बड़े-बड़े साहसी वीरों की कमर तोड़ देता है। आह! प्यारी अब तुम्हें कहां देखूं? किस जगह तुम्हारी खोज करूं—

कुछ पता चलता नहीं तुम कौन से परदे में हो?
कोई बतलाता नहीं किस दुष्ट के पंजे में हो?

लक्ष्मण—देखिये भ्राता जी! धनुष के टूटे हुए टुकड़े और वाणों की झड़ी हुई नोकें जो सामने पड़ी हुई नजर आ रही हैं वे किसी भयानक दुर्घटना का पता बता रही हैं।

राम—और रक्त की इन बून्दों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहां कोई भारी उत्पात हुआ है, किसी जीव का प्राणाघात हुआ है।

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर) ओहो! ये तो गृद्धराज जटायु जो घायल पड़े हैं! सारा शरीर वाणों से छिदा हु ा है। नस-नस से रक्त बह रहा है।

राम—(पास जाकर) आह! गृद्धराज! यह क्या हो गया? आप की यह दशा किसने बनाई है? ओह! आपके शरीर में तो बहुत ही चोट आई है।

जटायु—क्या बताऊं महाराज। आज मैं इसी स्थान पर भ्रमण कर रहा था कि दुष्ट रावण जानकी को चुराये हुये इसी मार्ग से आया, मैंने उस निर्दयी को बहुत समझाया, हर प्रकार से ऊंच-नीच दिखाया, परन्तु अभिमानी की समझ में कुछ भी न आया। अन्त में जब वह किसी प्रकार जानकी को छोड़ने पर राजी न हुआ तो मैंने उसका सामना किया। परन्तु नाथ! उस अन्यायी के सामने मेरी पार न बसाई और उसने अग्नि वाण छोड़ कर मेरी यह दशा बनाई।

राम—(स्वयं) ओह! दुष्ट रावण! अब तेरे पापों का घड़ा भर आया है, जो तूने सोते हुये सिंह को जगाया है। याद रख यदि मैं राम हूं तो इस अपमान के बदले तेरा वंश मिटा दूंगा, लंका की ईंट से ईंट बजा दूंगा।

कह रहा हूं अब कसम खाकर धनुष की, वाण की।
वीरता की, धीरता की, धर्म की, सम्मान की॥
आन है रघुवंश की, सौगन्ध कुल के मान की।
जानकी ग्राहक बनेगी दुष्ट तेरी जान की॥
जो बचाने को सकल ब्रह्माण्ड चलकर आएगा।
राम के हाथों से तू फिर भी न बचने पाएगा॥

जटायु—धन्य है, रघुकुल भूषण! धन्य है!

राम—जटायु महाराज! आपने बड़ा उपकार किया जो जानकी का पक्ष लेकर इतना कष्ट सहा। अब यदि आपको प्राणों की ममता हो, तो कुछ उपचार किया जाये।

जटायु—नहीं भगवन्! मैं धर्म के लिये प्राण दे रहा हूं और अन्तिम बार मुख से आपका नाम ले रहा हूं। आप साक्षात् मेरे सामने विराजमान हैं और आपके कमल रूपी चरणों में मेरा ध्यान है; फिर इससे अच्छा अवसर कब आयगा जबकि यह अधम जीव अमरपद पायगा?

राम—अच्छा प्यारे ! यदि यही इच्छा है तो तुम देव लोक चले जाओ परन्तु वहां जाकर पिता जी को यह वृतान्त न सुनाना। यदि मैं राम हूं, तो रावण कुछ ही दिनों में वहां पहुंच जाएगा और सारा वृतान्त अपने मुंह से ही सुनायेगा :—

बढ़ चुका है बहुत कुछ मिटने को अब अन्धेर है।
पाप का विध्वन्स होने में पलों की देर है॥

जटायु—अच्छा नाथ ! अब विदा कीजिये और अपने चरणों में विश्राम दीजिये······मैं······सदैव······राम······राम······सीता······राम।

[प्राण त्याग देना]

राम—लक्ष्मण ! जटायु महाराज ने हमारे साथ पिता-तुल्य व्यवहार किया है, इनका अन्तिम संस्कार हम स्वयं अपने हाथों से करेंगे। और सरिता-किनारे चलकर इनको तिलांजलि देंगे।

लक्ष्मण—हां हाँ ! यही उचित है भ्राता जी ! चलिये !

[जटायु का मृतक शरीर उठाकर दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(शवरी की कुटी)

गाना

शवरी—

भजन कर राम का मूरख यह जग झूठा पसारा है।
वही भव-सिन्धु उतरेंगे जिन्हें यह नाम प्यारा है॥
ये माया मोह के फन्दे न टूटे हैं न टूटेंगे।
बिना धुन राम-चरणों की कहां जन का गुजारा है॥
वहीं जन हैं सुखी जग में जिन्हें आ' र है उसका।
वही परलोक में खुश हैं जिन्हें उसका सहारा है॥
वही रक्षक हुआ प्रहलाद का अग्नि की लपटों से।
उसी ने ग्राह से देखो 'कुशल' गज को उबारा है॥

गुरु मतंग मुनि ने वचन दिया है कि तुझे इसी जगह राम के दर्शन होंगे। परन्तु कब होंगे ? क्योंकर होंगे ? कैसे होंगे ?

आम गूलर में लगें ऐसा कोई साधन नहीं।
नीच को दर्शन मिलें ऐसे सुलभ दर्शन नहीं ।।
स्वर्ग के स्वामी मेरी कुटिया में कैसे आएंगे।
वे तो पावन हैं अपावन को कहां अपनाएंगे ।।

[एक साधु आता है और उससे शवरी का वस्त्र छू जाता है]

साधु—(रुष्ट होकर) अन्धी ! नीच ! चाण्डाली ! देखती नहीं कौन आ रहा है :—

लगी धुन राम-दर्शन की बड़ी आई भगत बनके।
उड़ाती फिर रही है धूल मारग में ऋषि जन के ।।

शवरी—महाराज ! धूल नहीं उड़ाती, झाड़ू लगा रही हूं :—

अपावन, धर्म हीना, नीच-कुल और नीच जाती हूं।
घृणा की पात्र हूं संसार का कूड़ा उठाती हूं ।।
न साधु-सन्त सेवा का मैं कुछ अवकाश पाती हूं।
इसी कारण से मारग में सदा झाड़ू लगाती हूं ।।
कि रस्ता चलने वालों को न कोई कष्ट हो पाये।
जो आयें सन्त उनके पांव में कांटा न लग जाये ।।

साधु—(कटाक्ष से) ओहो ! बड़ी धर्मात्मा है ! सारा धर्म तेरे ही तो हिस्से में आया है ! संसार के उपकार का बीड़ा तूने ही तो उठाया है :—

चल परे हट दूर हो बढ़-चढ़ के यूं बातें न कर।
तू करेगी सन्त-सेवा ? कोप से सन्तों के डर ।।

शवरी—महाराज! यदि मैं भगवत्-भजन में ध्यान देती हूं तो आपका क्या छीन लेती हूं ?

साधु—क्या छीन लेती है ? अरी चांडाली! तू इतना भी नहीं जानती कि भगवान को धोखा देती है :—

नीच भी भजने लगेंगे जबकि पावन राम को ।
सन्त और साधु बता फिर लेंगे किसके नाम को ।।

शवरी—परन्तु भगवन् ! राम जब पावन हैं तो नीच के नाम लेने से अपावन कैसे हो सकते हैं ?

दयालु हैं दया-दृष्टि कभी इस ओर डालेंगे ।
महा पावन हैं तो मुझ नीच को पावन बना लेंगे ।।

साधु—हां बना लेंगे ! अरी दुष्टा ! यदि भगवान तेरे घर आये तो भ्रष्ट न हो जायेंगे ?

नीच घर आना भला भगवान को कब भायेगा ।
नीच को जब छू लिया तो धर्म क्या रह जायेगा ।।

शवरी—तो क्या भगवान नीच के कुछ नहीं, केवल आप से ही उनका नाता है । महाराज ! उस पवित्र नाम से तो अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता है; पातकी भी भवसागर तर जाता है :—

पिता है वह ही सब का और हम सब उसके बालक हैं ।
नहीं करते किसी में भेद वे सबके ही पालक हैं ।।
मिले हैं सबको साधन एक से भव-सिन्धु तरने को ।
हैं चारों वर्ण केवल अपना अपना कर्म करने को ।।

साधु—अच्छा ! तू अब इतनी अकड़ने लगी है कि अपने आपको भी साधुओं के समान समझने लगी है । ठहर ! जरा ये वस्त्र धोलूं फिर तुझे अच्छी तरह समझूंगा ।

[साधु का जाना, राम लक्ष्मण का आना]

शवरी—(देख कर) आ रहे हैं ! आह वे सुख के धाम इसी ओर आ रहे हैं ।

नहीं जो ध्यान में योगी-ऋषि जन के भी आते हैं ।
समाधि वास्ते जिनके बड़े ज्ञानी लगाते हैं ।।
वही रघुवीर आये हैं मुझे दर्शन दिखाने को ।
न देखा नीच-जाति को न मेरे कुल घराने को ।।

राम—कहो ! भक्तों में श्रेष्ठ शबरी ! चित्त तो प्रसन्न है ?

शबरी—अहा ! आइये महाराज ! पधारिये ! ओहो बड़े सुकुमार हैं, कोमल किशोर, दया के भण्डार हैं। लाऊं ! पहले आसन लाऊं। नहीं, पहले चरण धुलाऊं, ओहो भूल गई पहले कुछ खिलाऊं फिर चरण दबाऊं-क्या करूं ! (पैर छूना)

राम—घबराओ नहीं देवी ! घबराओ नहीं। हम तो केवल प्रेम भूखे हैं। तुम काहे को चिन्ता करती हो ?

शबरी—(हाथ जोड़ कर) क्षमा कीजिये महाराज ! बड़ी भूल हुई जल्दी में आपके चरण छू लिये। आप को फिर नहाना पड़ेगा।

राम—क्यों ? क्या हो गया ? क्यों नहाना पड़ेगा देवी !

शबरी—महाराज ! मेरे छू जाने से तो साधुओं के वस्त्र अशुद्ध जाते हैं। यदि मेरी छाया पड़ जाय तो लोग तुरन्त नहाते हैं।

कोई मुझ नीच से पल्ला नहीं अपना मिलाता है।
मेरा तो रास्ता भी छोड़कर संसार जाता है।।

राम—यह उनकी भूल है शबरी। मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से श्रेष्ठ माना जाता है :—

बड़प्पन,धन,कुटुम्ब,वैभव,सकल गुण और चतुराई।
न कुछ भी काम आयेंगे यदि भगती नहीं पाई।।

शबरी—महाराज ! मैं नीच, कुजाति, कुबुद्धि और अज्ञान हूं ! मेरे से तो दूर रहने में ही संसार का कल्याण है।

राम—ऐसा न कहो शबरी ! जो धर्म का मूल सिद्धान्त नहीं जानते है वही जाति और वर्ण का भेद मानते हैं। जिसके मन में भक्ति और प्रेम का स्रोत बहता है, वह संसार में किसी को नीच नहीं कहता है। :—

है कोई चण्डाल या ऊंचा किसी का वंश है।
आत्मा सब की उसी परमात्मा का अंश है।।

शवरी—धन्य है भगवान ! आज आपने सारा भ्रम मिटा दिया ! ज्ञान का महा स्रोत बहा दिया । आश्चर्य है !

राम—इसमें आश्चर्य की क्या बात है देवी । धर्म तो नीच को ऊंचा बनाने वाला होता है; गिरे हुए को ऊपर उठाने वाला होता है :—

नीच है या ऊंच है या दुष्ट हत्यारा है वह ।
जिस को प्यारा धर्म है भगवान को प्यारा है वह ।।

शवरी—उपकार प्रभो ! महा उपकार !

राम—देवी ! भूख लग रही है । यदि कुछ खाने की वस्तु हो तो लाओ !

शवरी—अहो भाग्य ! क्या आप मेरे घर का कुछ खायेंगे ? नहीं महाराज इससे तो आप अवश्य ही अपवित्र हो जाएंगे ।

राम—नहीं शवरी ! तुम कुछ संकोच न करो ! लाओ ! जो कुछ भी हो तुरन्त लाओ !

शवरी—तो महाराज ! मैंने तो झाड़ी के बेर तोड़ रखें हैं ।

राम—हां-हां लाओ ! हमने ऐसे फल कहां चक्खे हैं । जल्दी लाओ !

शवरी—(लाकर) लीजिये भगवान !

गाना (जाओ २ न सताओ…)

शवरी—खाओ-खाओ स्वामी, अन्तर्यामी, मीठे मीठे बेर ।
राम—लाओ-लाओ प्यारी शवरी लाओ मीठे तेरे बेर ।।
अन्तरा शवरी—ये मेरे बेर हैं सूखे—कुछ स्वाद नहीं हैं रूखे ।
" राम—ये तेरे बेर निराले—हैं भगती-रस के प्याले ।।
शवरी—खाओ-खाओ स्वामी……

शेर—मुद्दतों से बेर ये चुन-चुन के हैं मैंने धरे ।
कब प्रभु आवें इधर भगवान भय-भंजन हरे ।।
राम—प्रेम से चुन-चुन के इनको प्रेम डलिया में धरे ।
बेर ने सूखे नहीं हैं, प्रेम के प्याले भरे ।।

शबरी—ये बेर हैं सूखे—कुछ स्वाद नहीं हैं रूखे।
राम—ये तेरे बेर निराले हैं—भगती-रस के प्याले॥

लाओ-खाओ……

शबरी—(चख कर) यह लीजिये भगवन ! यह बहुत मीठा है।
राम—अहा !:—

सूखे बेरों में जो मिला है यहां।
राज-भोगों में वह सुवाद कहां ?

शबरी—यह भी चखकर देखिये प्रभो ! इसमें और ही स्वाद है।
राम—निस्संदेह ! यह बड़ा स्वादिष्ट है :—

बेर सूखा था परन्तु स्वाद का व्यन्जन बना।
प्रेम के हाथों में आकर राज का भोजन बना॥

शबरी—(लक्ष्मण से) यह आप लीजे महाराज।
लक्ष्मण—(एक ओर फेंक कर) अहा ! (राम की ओर संकेत करके) :—

महल के भोजन जिन्हें भाते न थे सद्भाव से।
आज वे ही खा रहे हैं बेर सूखे चाव से॥

शबरी—कुछ अच्छे तो न लगे होंगे भगवान।
राम—नहीं देवी ? बड़े स्वादिष्ट हैं। लाओ ? और भी लाओ—

है पत्ती शाक की या कन्द या मिश्री के कूजे हैं।
यहां तो प्रेम से मिल जाये जो उसके ही भूखे हैं॥

शबरी—लीजिये ? और भी लीजिये ? खूब पेट भर कर खाइये।
(चख कर) यह लीजिये ? यह कुछ-कुछ खट्टा है।
राम—हां लाओ ? यह भी लाओ —

स्वर्ग के पकवान हैं, मेवों के उत्तम ढेर हैं।
कौन कहता है कि ये झाड़ी के सूखे बेर हैं॥

लक्ष्मण—(एक ओर होकर स्वयं) क्यों नहीं :—

प्रेम के भूखे को क्या अच्छे बुरे का ज्ञान है।
प्रेम से गूलर मिले तो वह ही बस पकवान है॥

शबरी—कैसे लग रहे हैं भगवन् !

राम—क्या बताऊँ भक्तराज शबरी ! तुम्हारे बेरों की समानता तो अमरफल भी नहीं करता है, इनके खाने से पेट भरता है परन्तु मन नहीं भरता है :—

खट्टा-मीठा स्वाद ही पाते रहो।
जी में आता है कि बस खाते रहो।।

लक्ष्मण—अच्छा भ्राता जी ! अब आगे की भी सुध लीजिये ! बेरों का स्वाद छोड़िये और माता जी को बन्धन से छुड़ाने की भी चिन्ता कीजिये।

राम—हां हां तुमने ठीक कहा लक्ष्मण ! (शबरी से) अच्छा देवी ! अब हमें आज्ञा दीजिये !

शबरी—किस ओर जाना है महाराज ?

राम—देवी ! लङ्का का राजा रावण पंचवटी से हमारी पत्नी को हर कर ले गया है, हमें उसी ओर जाना है और जानकी का ठीक पता लगाना है।

शबरी—महाराज ! यहां से थोड़ी दूर पर किष्कन्धा पर्वत है जो लंका के रास्ते में पड़ता है। आप उसी ओर जाइये और वहां के राजा सुग्रीव से इस घटना का पता लगाइये !

राम—अच्छा देवी ! धन्यवाद ! तुमने बड़ी कृपा की।

[राम-लक्ष्मण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य नवां

(किष्कन्धा पर्वत)

सुग्रीव—(दूर से राम-लक्ष्मण को देख कर हनुमान से)

गाना **(लावनी)**

दोहा—हनुमान मम मन्त्री सुनो लगाकर कान।
रहता है मुझको सदा बाली का ही ध्यान।।

सब ज्ञात है तुमको बाली ने जो मेरा हाल बनाया।
धन-वैभव सारा छीन लिया और घर से मार भगाया है ॥
किष्कन्धा पर है वास मेरा और कष्ट अनेकों सहता हूं।
फिर भी उस पापी के भय से भयभीत सदा ही रहता हूं ॥
है चैन कहां उसके मन को जीवित हूं जब तक दुनियां में।
दिन-रात लगा ही रहना है मेरे प्राणों की चिन्ता में ॥
वह देखो दो बलवान युवक हाथों में तीखे बाण लिये।
इस ओर बढ़े ही आते हैं लड़ने का सब समान किये ॥
अनुमान मेरा यह कहता है बाली के भेजे आये हैं।
प्राणों के मेरे ग्राहक हैं षड्यन्त्र रचाकर लाये हैं ॥
इसलिये पवनसुत जल्दी हो कुछ वेश बदलकर जाओ तुम।
मीठी बात करके उनके भावों का पता लगाओ तुम ॥

दोहा—फिर भी जो निकला कहीं सत्य मेरा अनुमान।
देना कुछ संकेत तुम, भाग बचाऊं जान ॥

हनुमान—महाराज ! आप कोई चिन्ता न कोजिये। मैं अभी ब्राह्मण का रूप बनाकर जाता हूं और उनके भावों का पता लगाता हूं।

हनुमान—(ब्राह्मण के वेश में राम के पास आकर)

गाना (डेड़ मिसरी)

हो कौन महाराज ! कहां ठौर ठिकाना—
किस ओर है जाना।
किस वास्ते जंगल का पड़ा कष्ट उठाना—
घर छोड़ के आना ॥
कोमल हैं चरण, राह कड़ी, मार्ग है निर्जन
होता है चकित मन।
सुकुमार शरीर और कहां गेरवा बाना
मुख धूल रमाना।

किस देश की आशाएं हो किस वंश के तारे
मां-बाप के प्यारे।
क्या नाम है किस ग्राम से भगवन् हुआ आना
हम को भी बताना ।।
क्या बात हुई घर से किया तुमने किनारा
आनन्द बिसारा।
है ऐसी अवस्था में कठिन योग कमाना
और धूनी रमाना ।।
तुम देव हो गन्धर्व हो या विश्व के पालक ?
हो दुष्ट के नाशक
हरने को जगत-भार पड़ा लोक में आना
धनु वाण उठाना ।।

राम— गाना (डेढ़ मिसरी)

हे विप्र ! विधाता ने हमें कष्ट दिया है;
सुख छीन लिया है।
मिट सकता नहीं भाग्य में जो कुछ कि बदा है
वह होता सदा है ।।
दशरथ के हैं सुत और अवध घर है हमारा
प्राणों से भी प्यारा।
कुछ बात हुई ऐसो की घर छोड़ दिया है
बनवास लिया है।
बनवास में आये थे हम आज्ञा से पिता की;
और संग सिया थी ।।
इस बन में किसी दुष्ट ने सीता को हरा है;
यह कष्ट दिया है ।।
फिरते हैं इसी धुन में बयाबान में मारे;
अत्यन्त दुखारे ।।

पर आज तक उसका न कुशल खोज मिला है;
सब ढूढ लिया है ॥

हनुमान— गाना (लावनी)

दोहा—महाराज ! क्या बात थी क्यों छोड़ा घर बार ?
क्या कारण ऐसा हुआ बन को आये सिधार ॥
किस लिये बने हो बनवासी ! क्यों पिता ने ऐसी आज्ञा दी ?
क्यों संग तुम्हारे आये थे भ्राता लक्ष्मण और सीता जी ?
क्यों राजवस्त्र का त्याग किया और रूप बनाया सन्तों का ?
किस लिये बनों में बास किया आनन्द बिसारा महलों का ?
जो जो भी कष्ट उठाये हैं सब कह कर नाथ सुनादो तुम ?
करुणा करके महाराज मेरी यह शंका प्रथम मिटादो तुम ?

लक्ष्मण— गाना (सुनो जी रघुराई…)

टेक—कहूं सब गाथा—सुनो धर ध्यान !

अन्तरा १—महाराज ने किसी समय माता को वचन दिया था।
उसने मांगा राज भरत को और राम बनवासा ॥
सुनो धर ध्यान……

२—आज्ञा मान पिता की आये-बन-भरमण को भ्राता।
सेवक आया साथ प्रभु के और जानकी माता ॥
सुनो धर ध्यान……

३—पंचवटी पर कुछ ही समय से आकर वास किया था।
भाग्य गये बस लौट हमारे-हो गया निठुर विधाता॥
सुनो धर ध्यान……

४—पापी, दुष्ट, नीच रावण ने हरी जानकी माता।
बन बन मारे हम फिरते हैं कुशल चैन नहीं आता॥
सुनो धर ध्यान……

राम—विप्रवर ! अब कुछ अपना भी तो वृतान्त सुनाइये !

हनुमान—(वेश उतार कर) **गाना** **(लावनी)**

दोहा—पवन-अंजनी-सुत प्रभो ! हनुमान है नाम ।
बानर जाति है मेरी, किष्कन्धा है धाम ।।

इस निर्जन पर्वत को स्वामी सब ऋष्यमूक गिरि कहते हैं ।
सुग्रीव हमारे राजा हैं जो इसी शिखर पर रहते हैं ।।
हूं मूढ़, कुटिल, माया के वश, आधीन, निठुर अज्ञान प्रभो ।
हैं आप दयासागर, पावन, स्वाधीन, सगुण भगवान प्रभो ।।
माया के अन्धे जीवों को भवसागर पार किया तुमने ।
संसार-भार हरने को ही स्वामी अवतार लिया तुमने ।।
जो मन के भाव हमारे हैं स्वामी अन्तर्यामी जानो ।
मुझ नीच अपावन को भगवन चरणों का सेवक ही जानो ।।

राम—हनुमान जी ! हमें आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई । भगवान को धन्यवाद है कि आज हमारे मन की पूछने वाला तो मिला ।

हनुमान—महाराज ! आप कोई चिन्ता न कीजिये ! किष्कन्धा पर चल कर महाराज सुग्रीव को दर्शन दीजिये ।

राम—जैसे तुम्हारी इच्छा हो !

[हनुमान का राम-लक्ष्मण को कन्धे पर बिठाकर पर्वत पर चढ़ जाना]

सुग्रीव—(खड़े होकर) अहा ! मेरे अहो भाग्य हैं ! जो आप ने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया !

हनुमान—देखिये महाराज यही हमारे स्वामी सुग्रीव किष्कन्धा नरेश हैं जो अपने दुष्ट भाई बाली के हाथों बड़ा कष्ट पा रहे हैं । और नगर को छोड़ कर इस पर्वत पर जीवन बिता रहे हैं ।

राम—सुग्रीव जी ! मुझे आपके साथ सच्ची सहानुभूति है ।

सुग्रीव—(हनुमान से) मन्त्री जी ! मुझे भी तो इनका परिचय कराइये !

हनुमान—महाराज ! ये अयोध्या नरेश श्री दशरथ महाराज के राजकुमार हैं; किन्तु आजकल समय के प्रभाव से बड़े लाचार हैं । इनका नाम राम और ये इनके छोटे भाई लक्ष्मण जी हैं ।

सुग्रीव—महाराज! ऐसी क्या बात हुई जो राजभोगों का त्याग करके बन आना पड़ा ? इतनी छोटी अवस्था में ही सन्यासियों का जीवन बिताना पड़ा।

राम—सुग्रीव जी ! हमारी सौतेली माता कैकेयी ने किसी समय पिता जी से दो वरदान पाये थे। एक दिन अच्छा अवसर जान कर उन्होंने हमारे छोटे भाई भरत को राज्य और मेरे लिये चौदह वर्ष का बनवास मांग लिया। पिता जी को अपना प्रण निभाना पड़ा और मुझे घर छोड़ कर बन आना पड़ा। हमारी धर्म पत्नी सीता जी और अनुज लक्ष्मण जी भी हमारे साथ चले आये और हमने तेरह वर्ष बड़े आनन्द में बिताये। कुछ समय से हमने पंचवटी पर डेरा लगाया और उसी समय से हमारे भाग्य ने पलटा खाया। एक दिन लंका का राजा रावण सीता जी को हर कर ले गया और हमें महान संकट दे गया।

सुग्रीव—हां महाराज ! मैं एक दिन इसी पर्वत पर बैठा हुआ अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहा रहा था कि उसी समय एक विमान आकाश में उड़ता जा रहा था। जानकी जी बड़ा विलाप करती जा रही थी और अपने वस्त्र तथा आभूषण नोच-नोच कर नीचे गिरा रही थी। उन में से कुछ को मैंने भी इकट्ठा कर लिया था और सावधानी से अपने पास धर लिया था !

राम—तो सुग्रीव जी ! वे वस्त्र और आभूषण हमें दिखलाइये।

सुग्रीव—(वस्त्र-आभूषण लाकर) ये लीजिये महाराज !

राम—(देख कर) हां-हां ये उसी साड़ी के टुकड़े हैं; ये उसी माला के मोती हैं, ये उसी हाथ का कंगन है यह उसी माथे का तिलक है। आह ! प्यारी सीते तुम कहां हो :—

है निशानी आज़ दु:खों दुखी के सामनें।
फाड़ कर परदा निकल आओ पती के सामने।।

गाना

अफसोस आज दिल की तमन्ना उजड़ गई।
बसते थे जिस में हाय वह दुनिया उजड़ गई।।
प्यारी तेरे ख्याल से आबाद था जो घर।
उस घर की आज देख ले शोभा उजड़ गई।।
मेरे लिये नहीं है कोई जग में आसरा।
जीवन कहां जो जीने की आशा उजड़ गई।।
देवी तेरे भवन की निशानी कहां है अब।
मन्दिर उजड़ गया है वह प्रतिमा उजड़ गई।।

राम—आह लक्ष्मण! देखो तो सही! ये आभूषण भी सीता के विरही होकर कैसे कान्ति-हीन हो रहे हैं। मानों उस के वियोग में आठ-आठ आंसू रो रहे हैं। आह! मैं कैसा पागल हो गया कि इन का पहचानना भी मुश्किल हो गया। लक्ष्मण! जरा तुम ही पहचानो क्या यह सीता का ही कुन्डल है।

लक्ष्मण—क्या बताऊं प्रभो!

सिर झुकाता था सदा चरणों में उनके नाथ मैं।
कुछ पता मुझको न था क्या कान में क्या हाथ में।।

गाना

तर्ज—(महा शोक में ऐसा पापन बनी हूं)

मुझे नाथ कुंडल की पहचान क्या है?
कभी उनका देखा नहीं कान क्या है।।
झुकाता था चरणों मे सिर मैं हमेशा।
किसी और भूषण का अनुमान क्या है?
जो पायल, छड़े और बिछुवे हों उनके।
तो मुश्किल मुझे उनकी पहचान क्या है?
क्षमा कीजिये नाथ मजबूर हूं मैं।
मुझे आपके सामने ज्ञान क्या है?

हनुमान—धन्य हो, धर्मावतार लक्ष्मण ! तुम धन्य हो ।

हद नहीं है मान की और ज्ञान की सीमा नहीं ;
पास भाभी के रहे पर कान तक देखा नहीं ॥

राम—अच्छा सुग्रीव जी अब अपनी भी तो कथा सुनाइये । भाई भाई को शत्रुता का कारण भी तो समझाइये ।

सुग्रीव—सुनिये प्रभो !

गाना

तर्ज—(नारी की हम कथा सुनाते हैं)

टेक—भाई-भाई के झगड़े की इक विषम कहानी है ।

अन्तरा—मायावी एक असुर था-बलवान महा निष्ठुर था ॥
अभिमानी मद में गरमाया; नगर द्वार पर आया ।
क्रोध में भरा तनिक ना डरा, दनुज की यही निशानी है ॥
इक विषम कहानी है । भाई······

सुन कर उस का आवाहन-संग्राम छिड़ा अति दारुण;
असुर हार कर भागा रण से-अधम टला निज प्रण से ॥
चले हम साथ, लगाये घात, नहीं मन में हैरानी है ।
इक विषम कहानी है ॥ भाई······

बस एक गुफा के अन्दर-घुस गया असुर घबराकर ।
मुझे बालि इतना समझा कर यहीं रहो बन्धुवर ॥
गुफा में गया, क्रोध में भरा, नहीं शंका मन मानी है ।
इक विषम कहानी है ॥ भाई···

इक मास बीत गया सारा-फिर बही रक्त की धारा ।
समझ पड़ा यह मेरे जी को, किया हनन बाली को ॥
उठाकर शिला,द्वार बन्द किया करम की गति न जानी है ।
इक विषम कहानी है ॥ भाई······

कुछ दिन में बाली आया—मुझको नगरी में पाया ।
उलट पुलट कर तोड़ी काया दया कुशल ना [illegible] ॥

नगर को तजा छोड़ कर भगा, कहूं क्या कठिन सुनानी है।
इक विषम कहानी है ।। भाई···—

हे नाथ ! एक दिन मयदानव का पुत्र मायावी रात्रि के समय नगर द्वार पर आया और हमें युद्ध के लिये बुलाया । बाली और मैं दोनों उसके पीछे दौड़े और कई योजन तक उसे भगाते फिरे । अन्त में वह दैत्य एक पर्वत की कन्दरा में घुस गया। तब बाली उससे लड़ने चला । प्रभो ! मैं उस जगह एक मास तक बैठा रहा । उस कन्दरा से रक्त की धारा बह निकली । मैंने समझा कि उस निशाचर ने बाली को मार डाला और अब आकर मुझे भी मारेगा । अतः मैंने प्राण-रक्षा के लिये एक भारी पत्थर से उस गुफा का द्वार बन्द किया और नगर पुर चला आया। मन्त्रियों ने बिना राजा के राज्य की व्यवस्था को बिगड़ते देखकर मुझे विवश किया और राजा बना दिया। परन्तु कुछ समय पश्चात् बाली उस राक्षस को मार कर घर आया तो मुझे सिंहासन पर देखकर बहुत गरमाया । हे नाथ! उसने मेरी एक न सुनी और मेरी स्त्री को छीन मुझे घर से निकाल दिया । उसी समय से मैं इस पर्वत पर रहता हूं और अनेक आपत्तियां सहता हूं । मातंग ऋषि के शाप के कारण बाली यहां नहीं आ सकता ।

राम—निस्सन्देह बाली बड़ा निर्दयी है। किन्तु तुम कोई चिन्ता न करो हम उसे उसके पापों का फल अवश्य चखाएंगे और एक ही बाण में यमपुर पहुंचाएंगे ।

सुग्रीव—किन्तु महाराज ! बाली को मारना साधारण काम नहीं है । आपके सामने दुंदुभी राक्षस का पंजर है जिसे मार कर उसने मातग ऋषि के आश्रम में फेंक दिया था और ऋषि ने क्रोधित होकर यह शाप दिया था कि यदि तू किष्कन्धा पर आयेगा तो जलकर भस्म हो जायगा ।

राम—प्यारे सुग्रीव ! तुम कोई चिन्ता न करो। हमारा बाण उसे कदापि जीवित न छोड़ेगा।

सुग्रीव—किन्तु इस का प्रमाण !

राम—जो तुम चाहो !

सुग्रीव—तो देखिये ये सामने सात ताल वृक्ष खड़े हुए हैं, बाली जब बाण चलाता था तो चार-पांच को भूमि पर गिराता था।

राम—तो देखो ! मैं एक ही बाण में इन सबको गिराये देता हूं।

[बाण मारना-वृक्षों का गिरना]

सुग्रीव—धन्य हो प्रभो ! अब मुझे विश्वास हो गया कि आप अवश्य बाली को मारेंगे और मेरा कष्ट निवारेंगे। किन्तु महाराज उसे ब्रह्मा का वरदान है कि उससे युद्ध करने के लिये जो उसके सामने आयेगा उसका आधा बल बाली में चला जायेगा।

राम—तब तो हमें छिप कर ही मारना पड़ेगा।

सुग्रीव—हां महाराज ! मैं जाता हूं और उसे युद्ध के लिये बुलाता हूं, किन्तु याद रखिये कि यदि आप थोड़ी देर भी लगाएंगे तो मेरे प्राण-पखेरू सुरपुर को ही उड़ जाएंगे।

राम—नहीं ऐसा नहीं होगा। तुम जाओ।

सुग्रीव—अच्छा प्रभो ! सावधान !

[जाना—परदा गिरना]

दृश्य दसवां

[बाली मन्त्री सहित बैठा है]

बाली—मन्त्री जी ! क्या भाई भी ऐसे नीच होते हैं जो भाई को काल के मुख में डाल कर राज भोगों का आनन्द लेते हैं।

मन्त्री—क्यों नहीं महाराज ! आप के भाई सुग्रीव ने भी तो ऐसा ही व्यवहार किया था।

बाली—यही तो मेरा भी तात्पर्य है।

सुग्रीव—(ललकार कर) अरे दुष्ट बाली! तूने मुझे बड़ा कष्ट पहुंचाया है। आज सुग्रीव अपना सारा बदला चुकाने के लिये आया है।

बाली—लो देखो! आज फिर उसे उल्टी समाई है, ज्ञात होता है कि मृत्यु उसे स्वयं ही यहां खींच लाई है।

मन्त्री—महाराज! यद्यपि अज्ञान है, किन्तु फिर भी आपका भाई है, इसलिये उसका दोष क्षमा कर देने में ही बड़ाई है।

बाली—तो क्या तुम मुझे कायर बनाना चाहते हो! सिंह को सियार से डराना चाहते हो?

मन्त्री—नहीं महाराज! मैं तो केवल इतना चाहता हूं कि……

बाली—(बात काट कर) बस चुप रहो! मुझे तुम्हारी सीख की आवश्यकता नहीं है।

सुग्रीव—अरे अन्यायी! क्या घर में छिपकर जान बचाना चाहता है, पाप का फल भोगने के लिये बाहर क्यों नहीं आता है?

बाली—ओ कायर, कुबुद्धि-कमीने! तुझे अब भी लाज नहीं आई! अनेकों बार तो मेरे सामने से भाग कर जान बचाई!

सुग्रीव—आज सब मालूम हो जायेगा कि कायर और कुबुद्धि कौन है; भाग कर जान बचाने वाला कौन है?

बाली—तो ठहर अभी आता हूं और तेरा झगड़ा सदा के वास्ते ही मिटाता हूं :—

बच निकल भागा था अब तक छल कपट से घात से।
आज बचने पायेगा हरगिज न मेरे हाथ से॥

[दोनों का युद्ध होना-सुग्रीव का भाग जाना]

बाली—चल भाग डरपोक! फिर वही कायरता दिखलाई! आखिर भाग कर ही जान बचाई।

[बाली का जाना-परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

[परदा-रास्ता, राम-लक्ष्मण, हनुमान खड़े हैं, सुग्रीव आता है।]

सुग्रीव—रक्षा ! हे नाथ, रक्षा ! आखिर वही हुआ कि उसने मेरा सारा शरीर चूर-चूर कर दिया।

राम—(सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेर कर) क्या करूं भाई ! तुम दोनों की सूरत इतनी मिलती है कि पहचानना कठिन हो गया।

सुग्रीव—यह तो ठीक है महाराज ! परन्तु यदि मैं भाग कर प्राण न बचाता तो अब तक परलोक पहुंच जाता।

राम—अच्छा लो अब यह माला पहन जाओ और एक बार फिर उसे युद्ध के लिये बुलाओ।

सुग्रीव—क्षमा कीजिये महाराज ! अब तो साहस टूट चुका है; यदि अब की बार फिर जाऊंगा तो निश्चय जानिये कि जीवित न आऊंगा ?

राम—क्या कहते हो सुग्रीव ! यदि वह ब्रह्मा और महादेव की शरण में भी जायगा तो भी राम के वाण से बचने न पायगा !:—

जाओ और उससे लड़ो बस केवल इतनी देर है।
देख लेना तुम कि फिर बाली मही का ढेर है॥

सुग्रीव—अच्छा प्रभो ! आप की आज्ञा सिर चढ़ाता हूं; और एक बार फिर काल के मुंह में जाता हूं।

[माला पहन कर जाना]

दृश्य बारहवां

(बाली का महल)

बाली—जब मनुष्य के नाश के दिन आते हैं तो उसकी बुद्धि पहले ही मलीन हो जाती ! मूर्ख ने इतना भी न सोचा कि यदि मैं

किष्कन्धा पर्वत पर जा पाता तो क्या वह आज तक जीवित रह जाता।

सुग्रीव—(आकर) अरे अन्यायी बाली ! अब को बार मैं तुझे कदापि जीवित न छोड़ूंगा, तेरे अभिमानी सिर को आज अपने हाथों से तोड़ूंगा।

बाली—लो फिर आ गया कायर ! अरे दुष्ट क्या तुझे डूब मरने के लिये चुल्लू भर पानी भी नहीं पाता है जो बार-बार मेरे सामने चला आता है ! अच्छा ठहर ! फिर देखता हूं।

[जाना चाहता है, तारा रोक लेती है]

तारा—(हाथ पकड़ कर) ठहरिये प्राणनाथ ! इतनी जल्दी न कीजिये, पहले शंका का समाधान कर दीजिये।

बाली—क्या कहती हो तारा ! क्या मैं सुग्रीव से डर जाऊं ! एक कायर की ललकार सुन कर भी घर में घुस जाऊं !

तारा—यदि ऐसा ही होता तो मैं आप को कदापि न रोकती।

बाली—तो फिर क्या बात है ?

तारा—इतना तो आप भी समझते हैं कि यदि उसे किसी का सहारा न होता तो वह आप से लड़कर अपने प्राण क्यों खोता ?

बाली—जो कुछ तुम्हें कहना हो साफ-साफ कहो !

तारा—सुना है कि अयोध्या के दो राजकुमार किष्कन्धा पर्वत पर आये हैं और उन्होने सुग्रीव से मित्रता के हाथ मिलाये है।

बाली—तो फिर इस में भय की क्या बात है !

तारा—क्यों नहीं महाराज ! वे दोनों भाई बड़े बलवान और तेजस्वी हैं। सुना है कि उन्होंने अनेक राक्षसों को मार डाला है।

बाली—तारा ! तुम बड़ी डरपोक हो ! क्या बाली को मारने वाला आज तक संसार में जन्मा है ? हट जाओ, मुझे जाने दो ! आज उस दुष्ट को अपनी करनी का फल अच्छी तरह पाने दो।

तारा—(हाथ पकड़ कर) नाथ ? एक बार फिर सोच लीजिए।

गाना (लड़ना अच्छा नहीं भाई…)

टेक—यह क्रोध बुरा होता है-कुलमान-ज्ञान खोता है।

अन्तरा—(१) भाई-भाई को मारे; निन्दा हो जग में सारे।
कर डाले बिना विचारे, फिर पीछे से रोता है॥
यह क्रोध बुरा…

(२) बनवासी दोनों भाई; हैं उसके आज सहाई॥
यह चिन्ता मुझ को छाई, धीरज मन अब खोता है॥
यह क्रोध बुरा……

(३) निज लाभ-हानि पहचानो-यह मेरा कहना मानो।
मत'कुशल'यह दिल में जानो,दुश्मन निर्बल होता है॥
यह क्रोध बुरा…

बाली—(तारा का हाथ झटक कर) बस-बस! रहने दे अपना उपदेश; बाली संसार में किसी का भय खाने वाला नहीं! (जाना)

सुग्रीव—(बाली को देखकर) ओहो, निकल आये! क्या स्त्री के आंचल में मुंह छिपाये पड़े थे।

बाली—अरे निर्लज्ज! नीच! पापी, चांडाल! आज फिर तेरा मरने का जो चाहा है जो मेरे सामने निडर होकर चला आया है। कल तो भाग कर प्राण बचाये ही थे। दुष्ट, अभिमानी!

सुग्रीव तो क्या गालियां देकर ही वीर बनना चाहता है! यदि साहस है तो दो हाथ क्यों नहीं दिखाता है:—

आज यह झगड़ा मिटाना है सदा के वास्ते।
बैर का बदला चुकाना है सदा के वास्ते॥

बाली—चल! कायर यम के द्वार चल:

काल का है ग्रास पापी नर्क का ईंधन है तू।
मौत का खाजा है कुत्ते,चील का भोजन है तू॥

[दोनों का युद्ध होना, वृक्ष की आड़ से राम का वाण मारना बाली का गिरना]

बाली—आह ! धोखा ! धोखा ! :—

हाय किस पापी ने चालाकी यह मेरे साथ की।
चोट यह आकर लगी है तीसरे के हाथ की ।।

राम—(सामने आकर) बाली ! तुम ने क्रोध के वश होकर अपना कर्तव्य नहीं विचारा है, इसीलिये हम ने तुम्हें मारा है।

बाली—ओहो राम ! धर्म और नीति के पालने वाले राम ! तुमने तो धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है फिर यह धोखे का व्यवहार किस लिये किया है ? आप तो समदर्शी कहलाते हैं फिर यह भेदभाव क्यों दिखलाया है ? मुझे शत्रु मानकर सुग्रीव को मित्र किस लिये बनाया है :—

चौपाई—धर्म हेतु अवतार तिहारा।
धर्म कर्म निज कहां विचारा।।

राम—सुन बाली ! छोटे भाई की स्त्री, पुत्र-वधु, बहिन और कन्या इन चारों को जो पाप-दृष्टि से ताकता है उसके मारने में कोई पाप नहीं लगता है !

बाली—ठीक है ! परन्तु यदि मारना ही था तो सामने आकर मारा होता। मैं तो धर्म विहीन हूं तुमने तो धर्म विचारा होता ?

राम—भाई ! जब ब्रह्मा जी ने तुम्हें वरदान दिया है तो उसका तोड़ देना भी तो बुरा है।

सामने तुम पर असर होता नहीं पाषाण का।
इसलिये छिपकर किया है वार तुम पर बाण का।।

बाली—ठीक है महाराज ! आप के सामने मेरी चतुरता नहीं चल सकती। अच्छा, मेरा प्रणाम लीजिये और इतना आशीर्वाद दीजिये :—

चौपाई—जेहि-जेहि योनि जनम लहुं जाई।
चरण-कमल-अनुराग सवाई ।।

राम—हे बाली ! इस समय तुम्हारा मन पवित्र हो रहा है और इस

में उत्पन्न होने वाली इच्छाएं भी पवित्र ही हैं। इसलिए तुम निश्चिन्त रहो तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी होगी। हां यदि कोई और इच्छा हो तो वह भी कहो ! —

बाली—हां प्रभो ! एक अभिलाषा और है। मेरा पुत्र अंगद जो बल और पराक्रम में मेरे ही समान है, इस समय नादान है। उसे अपनी शरण में लीजिये और उसकी सेवाएं स्वीकार करके अभयदान दीजिये।

राम—ऐसा ही होगा।

अंगद—(आकर) हाय पिता जी ! आपको क्या हो गया ? अब संसार में हमारा कौन है ?

बाली—कुछ नहीं बेटा ! यह तो संसार का नियम है, जो पैदा होता है, उसे मरना अवश्य है। अब मैं जा रहा हूं। याद रक्खो कि आज से तुम्हारे माता-पिता, स्वामी-सखा, मित्र और सम्बन्धी सब कुछ श्रीराम हैं इसलिये चरणों में सिर झुकाओ और आज से इनके अनुगामी बन जाओ।

राम—हां हां ! आओ बेटा अंगद ! आज से मैं तुम्हें अपने आश्रय में लेता हूं और अभयदान देता हूं :

[अंगद का राम के चरणों में सिर झुकाना और राम का उसके सिर पर हाथ रखना !]

बाली—(राम से) अच्छा नाथ ! अब बोला नहीं जाता। क्षमा कीजिये (मरना)

[प्राण-त्यागना]

तारा—(आकर) नाथ ! प्राणनाथ ! जीवन आधार !

जा रहे हो छोड़कर मुझ को कहां मंझधार में !
आपके बिन कौन है मेरा सकल संसार में ।।

राम—देवी ! शान्ति करो !

तारा—हाय हाय ! मेरे लिये संसार सूना हो गया; सारे जगत में अंधेरा छा गया। अब मैं किस के सहारे जीवित रहूंगी ?

उठता है हाय मेरा संसार से सहारा।
छोड़ा है नाथ किस पर अंगद मेरा दुलारा ॥

सुग्रीव—भाभी ! जीवन और मरण की घड़ी किसी से नहीं टल सकती। समझ लो कि तुम्हारा इतना ही जीवन साथ था।

तारा—हाय हाय मैं लुट गई !

गाना (महा शोक में ऐसी पापिन)

चले नाथ तुम नाव मंझधार में है।
जिधर देखू अन्धेर संसार में है ॥
हुई आज बरबाद निर्भाग तारा;
लुटा नाथ अंगद तुम्हारा दुलारा;
हुई नाथ मन की अनोखी अवस्था;
निराशाओं की खलबली प्यार में है-जिधर...
कुशल मन को अब कौन धीरज बंधाये;
यहां कौन आशा के दीपक जलाये;
बहे जा रहे हैं बिना आसरे ही;
अनाथों की अब नाव जलधार में है—जिधर...

राम—देवी ! शान्ति करो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांचों तत्वों से बना हुआ शरीर जो नाशवान होता है वह अब भी तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है, परन्तु वह अविनाशी आत्मा जो इस काया का साथ छोड़ गया है, जीने और मरने से स्वतन्त्र है न उसका कभी नाश हुआ है और न होगा। वह अब भी सूक्ष्म रूप से उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार इस स्थूल शरीर में थी। इसलिये यह रोना-धोना सब व्यर्थ है। संसार में ऐसा ही नियम है।

तारा—महाराज ! आपके अमृत रूपी वचनों ने मेरी वियोग रूपी अग्नि को शान्त कर दिया। अच्छा प्रभो ! अंगद को अपनी शरण में लीजिये और मेरा जीवन सार्थक कीजिये।

राम—देवी ! तुम अंङ्गद की ओर से तनिक भी शंका न करो। अंगद अब तुम्हारा नहीं मेरा पुत्र है।

तारा—धन्य हो प्रभो ! आपके समान दयावान और कौन हो सकता है जो शत्रु की सन्तान पर भी पुत्रवत् प्रेम करे।

राम—अच्छा सुग्रीव जी ! अब बाली का दाह सस्कार करो और दान पुण्य आदि कराके उस की आत्मा को शान्ति दो !

सुग्रीव—जैसी आज्ञा, प्रभो !

[सब का जाना और बाली के मृतक शरीर पर स्त्रियों का विलाप करना]

चौपाई—हा, बाली बलवान शरीरा। हाय बाली हाय रे।
धरणी पड़ा कैसा रणधीरा। हाय बाली हाय रे॥
अगद सुग्रन अनाथ बनायो। हाय बाली हाय रे।
तारा नारी कहा बिसराया। हाय बाली हाय रे॥

[परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(किष्कन्धा-वन)

[राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान आदि उपस्थित हैं]

राम—भाई लक्ष्मण ! अब किष्कन्धा नगरी का राज्य राजा के बिना सूना पड़ा हुआ है। इसलिये तुम जाकर पुरवासियों ब्राह्मणों तथा पुरोहितों को बुलाओ और सुग्रीव को विधिपूर्वक राजा बनाओ !

हनुमान—महाराज ! राज्यभिषेक का कार्य तो आपके हाथ से होना चाहिये। वानर-समाज की ऐसी ही इच्छा है।

राम—हनुमान जी! मैं पिता की आज्ञा और अपनी प्रतिज्ञा के कारण चौदह वर्ष से पहले नगरी में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिये

तुम लक्ष्मण जी को ही ले जाओ और सारा कार्य विधिपूर्वक कराओ !

सुग्रीव—महाराज ! पहिले जानकी जी का पता लगाना चाहिये, यह कार्य तो पीछे भी होता रहेगा ।

राम—नहीं सुग्रीव जी ! ऐसे शुभ कार्य में विलम्ब करना उचित नहीं है । इसके अतिरिक्त अब वर्षा ऋतु आरम्भ होने वाली है और इस काल में आवागमन की असुविधा होने के कारण जानकी की खोज होना भी कठिन है ।

हनुमान—धन्य है ! दयालु भगवान आपकी उदारता को धन्य है ।

दे दिया प्रेमी को सब कुछ पास रखा कुछ नहीं ।
भक्त की चिन्ता है केवल अपनी चिन्ता कुछ नहीं ।।

सुग्रीव—ठीक कहते हो हनुमान जी ! मैं पतित,अपावन, वानर जाति और नीच प्राणी था । किन्तु प्रभु ने मुझे भी पवित्र, पावन और लोक का भूषण बना दिया । इससे अधिक कोमल स्वभाव और क्या हो सकता है ।

राम—सुग्रीव जी ! इन बातों को छोड़िये और नगर में जाकर प्रजा का पालन कीजिए । लक्ष्मण जी ! अब तुम चले जाओ और राज्यभिषेक का सारा कार्य कराकर इसी स्थान पर लौट आओ !

लक्ष्मण—जैसे आज्ञा प्रभो !

[सब का जाना, परदा गिरना]

[दृश्य परिवतन पर सुग्रीव का राज तिलक और आरती पर ड्राप]

नवां अंक

दृश्य पहला

[किष्कन्धा की तलहटी में राम का आश्रम]

राम— गाना (तर्ज—छा रही काली घटा…)

हाय यह बरसात गम की रात लेकर आई है।
मन की नगरी में अन्धेरी ही अन्धेरी छाई है।।
आग सी भड़का रही है हाय यह ठण्डी हवा।
कह रही है दामिनी आशाओं का घर दूं जला।।
मेघ के गर्जन ने मन की कल्पना दहलाई है।
हाय यह बरसात……।।
बोलते दादुर, पपीहा, मोर, विरही चौंकता;
आओ प्यारी अब सहन होती नहीं मनकी व्यथा;
बून्द जो लगती है तन पर तीर बनकर आई है।
हाय यह बरसात……।।

राम—लक्ष्मण ! वर्षा का आगमन संसार को कितना सुन्दर और सुहावना बना देता है। परन्तु वियोगी के हृदय मे विरह की अग्नि भड़का देता है।

वन नदी नाले सरोवर सब ही हैं मनहर बने।
वृक्ष पत्ते फूल नित से नये सुन्दर बने।
मोर, सारस, मीन, दादुर मग्न हैं रस धार में।
इक वियोगी ही अकेला रो रहा संसार में।।

लक्ष्मण—ठीक है प्रभो ! जानकी का भी यही हाल होगा। न जाने

वह किस प्रकार विपदा के दिन बिता रही होंगी ? आपकी याद में आंखों से अश्रु धारें बहा रही होंगी।

राम—यथार्थ है लक्ष्मण ! विछोह रूपी वज्र जिस हृदय पर गिरता है उसी को चूर चूर कर देता है। :—

विरह की वेदना जड़ जीव सब के प्राण हरती है।
जहाँ गिरती है यह बिजली वहीं विध्वंस करती है ॥

लक्ष्मण—स्वीकार करता हूं, महाराज ! किन्तु एक प्रार्थना है यदि आज्ञा हो तो कहूं।

राम—हाँ हां अवश्य कहो।

लक्ष्मण—आप जैसे धीर वीर और गम्भीर पुरुषों के लिये विपत्ति में इस प्रकार अधीर होना कहां तक शोभा देता है ? क्या पुरुषार्थ के बिना संकट को कोई बांट लेता है ?

राम—ठीक कहते हो लक्ष्मण ! भाग्य का दूसरा नाम ही पुरुषार्थ है। इसी लिए कहता हूं कि यदि एक बार जानकी की सूचना पाऊं तो काल को भी जीतकर आपत्ति से निकाल पाऊं।

लक्ष्मण—(बाण चढ़ाकर) धन्य हो प्रभो ! परन्तु यदि आज्ञा हो तो पहले उस कपटी मित्र को ही ठिकाने लगाऊं जिसने आज तक भी मुंह नहीं दिखाया। वचन देकर भी जानकी का कोई पता नहीं लगाया।

राम—(शान्ति से) क्या तुम्हारा तात्पर्य सुग्रीव से है ? नहीं नहीं उसके साथ ऐसा व्यवहार कदापि नहीं होना चाहिये। जिसको एक बार मित्र बना लिया फिर भूल पर भी उसका सम्मान नहीं खोना चाहिये।

लक्ष्मण—परन्तु महाराज ! नीच लोग तो नर्मी को नहीं जाना करते, लातों के भूत बातों से नहीं माना करते।

राम—यह तो ठीक हैं, परन्तु वर्षा काल के लिये तो हमने ही उसे रोक दिया था, अभी तो कार्तिक मास प्रारम्भ ही हुआ है।

लक्ष्मण—तो भ्राता जी ? योजना बनाना और उसके लिये साधन जुटाना तो अभी से आवश्यक है।

राम—अच्छा तो तुम चले जाओ और कुछ भय दिखाकर सुग्रीव को अपने साथ ले आओ।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा महाराज।

दृश्य दूसरा

(सुग्रीव का मन्त्रणा गृह)

हनुमान—महाराज ! वर्षा ऋतु समाप्त हो गई; यात्री आने-जाने लगे किन्तु आपने जो वचन दिया था वह भी याद है ?

सुग्रीव—ओहो ! भूल गया, बड़ा अपराध हुआ। इस विषय-भोग ने मेरा सारा ज्ञान ही हर लिया।

अंगद—(आकर) महाराज ! अनर्थ हो गया। लक्ष्मण जी महान् क्रोधित हुए किष्किन्धापुरी पधारे हैं।

सुग्रीव—ओहो देव ! अब क्या होगा ? आज मेरी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी ?

अंगद—महाराज ! अब समय नष्ट न किया जाय और उनको शान्त करने का उपाय किया जाय।

सुग्रीव—अच्छा हनुमान जी ! तुम शीघ्र चले जाओ और विनय-याचना करके उन्हें यहां बुला लाओ।

हनुमान—जैसी आज्ञा महाराज !

[हनुमान का जाना और लक्ष्मण सहित वापस आना]

सुग्रीव—(खड़े होकर और चरण छूकर) क्षमा कीजिए, महाराज ! मुझ से अपराध हुआ।

लक्ष्मण—(क्रोध से) सुग्रीव ! तुमने मित्र बनकर हमें धोखा दिया है। जानते हो विश्वास घात का फल क्या होता है ?

गाना तर्ज—(कोई किसी ख्याल में···)

द्रोही बने हो मित्र के, धर्म का भय जरा नहीं,
अन्धे बने हो मोह में, जो कुछ कहा किया नहीं।
दुर्दिन तुम्हारे टल गये, धोखे के दाव चल गये,
मतलब सभी निकल गये,अब कोई मित्रता नहीं।
छल छिद्र द्रोह का चलन, होगा नहीं कभी सहन,
नाम हमारा लक्ष्मण, धोखा कभी सहा नहीं।
फन्दे में मोह जाल के, दो दिन में अन्धे हो गये,
अपने पराये कर दिये, भय तो'कुशल' रहा नहीं।

सुग्रीव—नाथ! विषय के समान दूसरा मद नहीं होता। यह क्षण भर में मुनियों के हृदय में मोह उत्पन्न कर देता है, बड़े बड़े ज्ञानियों का ज्ञान हर लेता है। आप तो दयावान हैं। मुझे क्षमा कीजिये और मेरे दोष पर ध्यान न दीजिए।

लक्ष्मण—अच्छा तो चलो! तुम्हें महाराज बुलाते हैं।

सुग्रीव—चलिये प्रभो!

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(राम का आश्रम)

[लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान आदि का आना]

सुग्रीव—(चरण छूकर) हे देव! क्षमा कीजिये। आपकी माया ऐसी प्रबल है कि सुर-नर-मुनि सभी को वशीभूत कर लेती है। फिर मैं अज्ञान वानर, काम का दास प्राणी उससे कैसे बच सकता था?

राम—(हंस कर) तुमने ठीक कहा सुग्रीव! माया बड़ी प्रबल होती है अच्छा अब बीती बातों को जाने दो और सीता जी की खोज का प्रबन्ध करो।

सुग्रीव—बहुत अच्छा भगवन् ! (हनुमान से) हनुमान जी। समस्त सेना को हमारे सामने उपस्थित किया जाय।

हनुमान—सेना उपस्थित है, महाराज ! (जाना)

सुग्रीव—भाईयो! प्रभो रामचन्द्र जी का कार्य और मेरा उपकार इसी में है कि तुम चारों दिशाओं में चले जाओ और जैसे भी हो सके सीता जी का पता लगाओ। याद रखना कि जो कोई एक मास से अधिक लगायेगा वह मेरे हाथ से अवश्य मारा जायेगा।

वानर—जैसी आज्ञा महाराज ! बोलो भगवान राम की जय !

[सब का जाना]

सुग्रीव—(हनुमान आदि से) हे हनुमान, अंगद, जामवन्त, नल, नील आदि पराक्रमी वीरो ! तुम सब दक्षिण दिशा को चले जाओ और मनसा-वाचा-कर्मणा से जानकी का पता लगाओ।

हनुमान—ऐसा ही होगा महाराज !

राम—(हनुमान को निकट बुलाकर) भक्तराज हनुमान जी ! इस कार्य का होना आपके द्वारा ही सम्भव जान पड़ता है (सिर पर हाथ रखकर) अतः तुम निःसंकोच होकर जाओ और लो यह मेरी अंगूठी भी ले जाओ। सीता जी का पता लगाना और सब प्रकार से समझाना तथा हमारा बल और पराक्रम प्रकट करके ढारस बंधाना। किन्तु एक मास से अधिक न लगाना और लौटती बार उनकी कोई निशानी भी लाना।

हनुमान—ऐसा ही होगा महाराज !

[चरणों में सिर नवा कर जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(समुद्र—तट)

नल--अहा ! वन, नदी, पर्वत और गुफाओं में बहुत कुछ ढूंढा परन्तु

कहीं जानकी का पता नहीं मिला। अब कौन सा मुंह लेकर लौट जाएं, इससे तो यही अच्छा है कि कहीं प्राण गवाएं।

नील—ठीक है सुग्रीव ने जो समय दिया था वह भी समाप्त होने को आया है परन्तु जानकी का कहीं पता नहीं पाया है।

अंगद—हां, सुग्रीव अब मुझे निश्चय मार डालेगा।

जामवन्त—तुम किस चिन्ता में पड़ रहे हो बेटा, राम को साधारण मनुष्य न जानो। वे साक्षात ब्रह्म हैं। उनके कार्य में बाधा कौन डाल सकता है?

[सम्पाती का आना]

सम्पाती—(वानरों को देख कर) अहा विधाता! तुम धन्य हो! आज तुम ने घर बैठे ही अहार भेज दिया! मैं बहुत दिनों से भूख के मारे बिल-बिला रहा था आज इन सबको खाकर अपनी भूख मिटाऊंगा!

हनुमान—हे मतिधीर जामवन्त जी! यह महान जीव कौन है जा हमें खाने की घात लगा रहा है।

जामवन्त—हनुमान जी सुनो! कश्यप ऋषि की वनिता नामक स्त्री के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। एक अरुण और दूसरा गरुड़। फिर अरुण के दो पुत्र हुए। एक सम्पाती और दूसरा जटायु। एक दिन वे दोनों भाई सूर्य को पकड़ने के लिये उसकी ओर उड़े। बड़ी दूर उड़ने पर सूर्य की गर्मी से घबरा कर जटायु तो लौट आया किन्तु सम्पाती उड़ता ही गया। अन्त में उसके पंख जल गये और वह मूर्छित होकर महेन्द्र पर्वत पर आ गिरा। उस पर्वत की गुफा में चन्द्र ऋषि तप करते थे सम्पाती ने उनकी सेवा की तब ऋषि ने वरदान दिया कि जानकी की खोज करते हुए वानर जब इधर आयेंगे। तो तेरे पंख निकल आएगे। उसी समय से यह बेचारा पंखहीन पक्षी यहां पड़ा हुआ अपना जीवन बिता रहा है।

हनुमान—धन्य है ! जटायु महाराज, तुम्हें धन्य है जो तुमने श्रीराम चन्द्र जी की सेवा में अपने प्राण गवा दिये।

सम्पाती—हैं ! क्या कहा! क्या जटायु ने प्राण गवा दिये! सुनाओ! हे वानरों ! मेरे भाई की मृत्यु का हाल खोल कर सुनाओ !

जामवन्त—पक्षी राज! तुम्हारा भाई जटायु पचवटी के सपीप जीवन बिता रहा था। जिस समय लंकेश रावण श्री राम की भार्या जानकी को हरकर ले जा रहा था तो उसने जानकी को छुड़ाने के लिये रावण से युद्ध किया किन्तु अन्याई रावण ने उसको मार डाला और भगवान रामचन्द्र जी ने अपने हाथ से उसका दाह सस्कार किया।

सम्पाती—निस्सन्देह ! जटायु बड़ा भाग्यशाली था जो परोपकार में मारा गया (अपने पंख टटोल कर) अहा तुम ठीक कहते हो। लो प्रभु राम चन्द्र जी कृपा से आज वर्षा के बाद मेरे पख निकल आए। अच्छा पहले मैं अपने भाई को तिलांजलि दे लूं फिर तुम्हे मार्ग बताऊंगा। तुम धन्य हो।

[समुद्र-तट पर सम्पाती का तिलांजलि देना]

हनुमान—अच्छा गृद्धराज ! अब हमें माग बतलाइये !

सम्पाती—वह देखा ! समुद्र की दूसरी ओर रावण का अशोक वाटका नामक बड़ा रमणीक उद्यान है, जानकी उसमें पालना झूल रही है तुम नहीं देख सकते किन्तु मैं अपनी तीव्र दृष्टि से सब कुछ देख रहा हूं। अब तो जो काई इस समुद्र को लांघ कर जायगा, वही सीता की सुधि लायेगा।

[सम्पाती का जाना]

हनुमान—लीजिये जामवन्त जो ! अब इतना पता तो मिल गया परन्तु ऐसा कौन है जो इस अपार समुद्र को लांघ जाए और जानकी का पता लाए ?

जामवन्त—ओह ! इस समय मैं बूढ़ा हो गया हूं। जब भगवान ने

वामन रूप धारण करके तीन पग में त्रिलोकी को नाप लिया था उस समय मेरी तरुण अवस्था थी और मैंने दो घड़ी में भगवान को सात परिक्रमा की थी किन्तु अब विवश हूं, यह महान् कार्य मुझ से न हो सकेगा।

नील—हां यह काम मेरी शक्ती से भी बाहर है।

नल—और मैं भी विवश हूं !

अंगद—मैं समुद्र लांघ कर जा तो सकता हूं ! किन्तु लौट कर आने में सन्देह है !

जामवन्त—पवनसुत वीर हनुमान जी यह कार्य आपके बिना किसी से नहीं हो सकता ! आपका बल पवन के समान है।

हनुमान—किन्तु महाराज ! मुझे तो कुछ सन्देह होता है।

जामवन्त—नहीं ! कदापि नहीं ! लो पहले अपने जन्म की कथा सुनो, उसके सुनने से तुम्हें अपना बल और पराक्रम ज्ञात हो जायेगा !

हनुमान—सुनाइये महाराज !

जामवन्त—हिमाचल पर्वत पर कश्यप ऋषि अनेक साधुओं सहित रहते थे। एक दिन वहाँ एक बड़ा हाथी आया और ऋषियों की ओर दौड़ा किन्तु तुम्हारे पिता केशरी ने उसे मार डाला। इस पर प्रसन्न होकर ऋषियों ने वरदान दिया कि तुम्हारे घर में पवन जैसे वेग वाला, बलवान और बुद्धिमान पुत्र होगा। एक दिन तुम्हारी माता अंजनी पर्वत पर बठी थी कि पवनदेव ने उनके चीर को उड़ाकर शरीर को स्पर्श कर लिया उनके आशीर्वाद से कातिक मास, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, दिन मंगलवार को मेष लगन में तुम्हारा जन्म हुआ। एक दिन तुम्हारी माता तुम्हें गोद में लिये खड़ी थी कि तुमने उदय होते हुए लाल-लाल सूर्य को पकड़ने के लिये बांह उठाई। इस पर इन्द्र ने कुपित होकर वज्र मारा जिससे तुम्हारी ठोढ़ी मे दाग बन

गया और तुम्हारा नाम हनुमान हुआ। किन्तु तुरन्त ही तुमने सूर्य को भक्षण कर लिया। अन्त में देवताओं ने तुम्हारे पिता केशरी की अनेक प्रकार से विनती की और तुम्हें अजर-अमर होने का वरदान दिया तब तुमने सूर्य को मुख से निकाला।

हनुमान—(गरज कर और शरीर बढ़ाकर) बस महाराज! अब कोई चिन्ता न कीजिये। भगवान राम के प्रताप से पवन के समान जाऊंगा और माता जानकी की सुधि लेकर शीघ्र ही वापस आऊंगा। आप लोग मेरी यहीं प्रतीक्षा करना।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(लंका का द्वार)

[लङ्कनी पहरा दे रही है, हनुमान आते हैं]

लङ्कनी—अरे ओ निडर वानर! ऐसा निर्भय होकर कहां चला जा रहा है? क्या तुझे ज्ञात नहीं कि तेरे सिर पर काल मण्डरा रहा है!

गाना

जाता है किस ठोर बता क्या मौत तेरी यहां लाई है?
खौफ नहीं तुझको मेरा क्या जी में तेरे समाई है?
नाम लङ्कनी है मेरा लङ्का का पहरा देती हूं?
आकर तूने संकट में क्यों अपनी जान फंसाई है?
पांव बढ़ाया जो आगे को तुझे अभी खा जाऊंगी!
भाग यहां से जान बचाकर क्यों मरता बिन आई है?

हनुमान— **गाना**

क्या बोली दुष्ट चण्डाली शामत तेरी आई है!
हनुमान का नहीं जानती इतनी राड़ बढ़ाई है?

राह खड़ी जो रोक रही है क्या मरना ही चाहती है!
देख गदा नादान हमारी क्यों इतनी गरमाई है !
चल-चल-चल-चल दूर परे हट यह काला मुंह मत दिखला!
जान रहा हूं मैं उसको जिसके बल पर इतराई है ।।

लङ्कनी—(गरज कर) अरे मूर्ख ! ठहर अभी आती हूं और दान्तों से चबाकर तुझे चूर्ण बनाती हूं ।

[मुंह फाड़कर बढ़ाना, हनुमान का घूंसा मारना और लङ्कनी का पृथ्वी पर गिरना]

लङ्कनी—(घबराकर और खड़ी होकर) महाराज ! तुम श्री राम चन्द्र जी के दूत तो नहीं हो ?

हनुमान—हां, मैं उन्हीं का दूत हूं । बतला ! अब रास्ता छोड़कर अपने प्राण बचाना चाहती है या सीधी परलोक यात्रा को जाती है ?

लङ्कनी—(हाथ जोड़कर) बस महाराज ! अब दूसरा घूसा न मारना नहीं तो मेरे प्राण-पखेरू स्वर्ग लोक को उड़ जाएंगे ! हा ! अब मुझे ब्रह्माजी का वचन याद आया जो उन्होंने रावण को वरदान देकर लौटती बार मुझसे कहा था कि जब तू एक वानर की मार खा खाकर विकल हो जायगी तभी राक्षसों की अन्तिम घड़ी आयेगी ।

हनुमान—अच्छा यदि यह बात है तो मार्ग से हट जा, रास्ते में रोड़ा न अटका !

लङ्कनी—(एक ओर हटकर) लीजिये महाराज ! चले जाइये ! आपके कार्य में कौन बाधा डाल सकता है ?

सूख जाते हैं जलद, पर्वत तलक भी धूल हैं।
राम जब अनुकूल हैं तो फिर सभी अनुकूल हैं।।

[हनुमान का आगे बढ़ना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(विभीषण का भवन)

[द्वार पर मन्दिर बना हुआ है जिस पर राम-नाम लिखा है। हनुमान आते हैं]

हनुमान—अहा ? बाग, बगीचे, कुए-बावली, गली बाजार, महल-दरबार सभी देख डाले; रावण का महल भी छान मारा परन्तु कहीं जानकी का पता नहीं मिला। हे विधाता ! यह भवन किस धर्मात्मा का है ? जिस में एक ओर हरि-मन्दिर बना हुआ है और उस पर राम-नाम लिखा है; दूसरी ओर तुलसी के नवीन पौधे उग रहे हैं। धूप-दीप जल रहे हैं। हे परमात्मा ! इस राक्षसी नगरी में सज्जन का निवास कैसा ? दुष्टों के मध्य में महात्मा का वास कैसा ? (राम-नाम की ध्वनि सुनकर) अहा ! वे बाले ! मधुर ध्वनि में राम-नाम उच्चारण कर रहे हैं। अच्छा अब ब्राह्मण का रूप बनाता हूं और इस रहस्य का पता लगाता हूं। (रूप बनाकर) जय ! हरिभक्त की जय ! सन्तजन की जय।

विभीषण—(बाहर आकर और प्रणाम करके) अहा! विप्रवर! प्रणाम! अहो भाग्य ! कहिये महाराज ! कौन स्थान और क्या नाम है इस कठोर नगरी में आपका क्या काम है ?

हनुमान—भक्तराज ! क्या आप मेरी बातों का उत्तर देने की कृपा कर सकते हैं ?

विभीषण—हाँ हां महाराज ! अवश्य पूछिये ! मैं बिल्कुल ठीक उत्तर दूंगा।

हनुमान—भक्तराज ! यह नगरी वास्तव में बड़ी कठोर है; चारों ओर राक्षस बसते हैं; जिधर देखो उधर ही पाखण्ड दिखाई देते हैं फिर आप जैसे हरि-भक्त यहां किस प्रकार रहते हैं ?

विभीषण—कुछ न पूछो विप्रवर ! मेरी आत्मा यहां इस प्रकार कष्ट सहती है जैसे दान्तों के बीच में जीभ रहती है। यद्यपि मैं रावण का भाई और तामसी शरीर धारी हूं किन्तु भगवान राम की कृपा का भिखारी हूं ! अच्छा अब आप अपना परिचय दीजिये।

विभीषण-हनुमान का सम्मिलित गाना—तर्ज (डल मिसरी)

विभीषण—हे विप्र कहो कैसे हुआ लंका पे आना,
निज देश बिराना
इस पाप की नगरी में यूं ही ठोकर खाना,
सन्ताप उठाना

हनुमान—हे भक्त हुआ जब से बूरे वक्त का आना,
बदला है जमाना
इक पल को नहीं चैन न ही ठोर ठिकाना,
पानी है न दाना

विभीषण—ऐसा भी यह दुर्भाग्य ने क्या रंग दिखाया,
घर बार छुड़ाया
सच हम से कहो कौन से संकट ने सताया,
क्या कष्ट है आया

हनुमान—कहने से किसी के भी कोई काम है आया,
संकट है बटाया
करनी का हर इक जीव ने फल आप ही पाया
और कष्ट उठाया

विभीषण—ऐसा न कहो विप्र तुम्हें राम दुहाई,
सच सच कहो भाई।
तन-मन से करूं दूर हरूं पीर पराई,
नीति यह बनाई।

हनुमान—(वेश उतार कर) अब जान लिया राम से लौ तुमने लगाई,
की धर्म कमाई।

संकोच हुआ दूर कहूं मन में जो आई,
तुम धर्म के भाई ।

विभीषण—हां धर्म के भाई न करो कोई भी शंका,
होगा नहीं धोखा
बतलाओ हमें खोल के सब हाल ही मनका,
मिट जायगी शंका ।

हनुमान—तुम जानते हो करके हरण मात सिया का,
रावण यहां लाया ।
बतलाओ कहाँ रहती हैं अब जानकी माता,
बस यह ही है चिन्ता ।

विभीषण—उत्तर की दिशा घोर सा जंगल है घना है,
उद्यान बना है ।
उस मध्य ही सीता को गहन वास मिला है,
इतना ही पता है ।

हनुमान—अच्छा महाराज ! धन्यवाद !

[हनुमान का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(अशोक-वाटिका)

[एक ओर सीता जी पालने में झूल रही हैं दूसरी ओर से हनुमान जी आते हैं]

हनुमान—राज मन्दिर, घर, गली-कूचे, सरोवर, ताल, वन ।
देख डाला कोना-कोना छान डाले सब भवन ।।
है ठिकाना कौनसा जिसको कि देख आया नहीं ।
जानकी का पर कहीं अब तक पता पाया नहीं ।।

(सामने देखकर) हैं सामने ! यह सुन्दरी कौन है जो पालने में बैठी हुई शोक के आंसू बहा रही हैं । सम्भव है यही जानकी

हो अच्छा अब पास वाले वृक्ष पर चढ़ जाऊं और यहां की परिस्थिति का पता लगाऊं ।

[वृक्ष पर चढ़कर बैठ जाना]

सीता— गाना (गम दिये मुस्तकिल···)

कैसी दारुण घड़ी, लग रही है झड़ी, हाय सावन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण ।

रात दिन मेरी आंखों में पानी,
बह चली नाथ घुल-घुल जवानी,
मन की ठानी गई, सब कहानी गई, सारा जीवन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण;

सूने जगल में डरती हूं स्वामी;
रात भर याद करती हूं स्वामी;
काली-काली घटा, दामिनी की छटा, घन का गरजन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण ।

पीहू-पीहू करे जब पपीहा;
कांप उठता है मेरा कलेजा;
मोर जब नाचते, स्वप्न हैं जागते, सुख का साधन;
बन गया मेरे दुःखों का कारण ।

अहा ! प्रभो ! प्राणाधार ? अब तो मेरी खबर लो। अब तो मुझे इस दुष्ट के बन्धन से छुड़ाओ :—

हो गई है कल्प से बढ़-बढ़ के इक-इक पल मुझे ।
अब घड़ी भर भी नहीं पड़ती है स्वामी कल मुझे ।।

आह ! मरना चाहती हूं पर मृत्यु नहीं आती; ऐसे समय यह पापिन भी मेरा हाथ नहीं बंटाती :—

क्या कहूं किस से कहूं सुनता है मेरी बात कौन ?
मौत भी जब भागती है फिर निभावे साथ कौन ?

[रावण का मन्दोदरी सहित प्रवेश]

रावण—सीता ! नहीं कह सकता कि तेरे रूप में क्या शक्ति है जो रात-दिन हृदय में तेरे प्रेम की ज्वाला दहकता है । :—

नहीं छिपाये छिप सके सुन्दर रूप अपार
मोती मिल कर धूल में चमकत है हर बार ।।

सीता—रंग-रूप संसार में लाखों वेश बनाए ।
जिसको जैसा ध्यान है वैसा ही दिखलाए।।

रावण—निस्सन्देह ! देखने में धोखा भी हो सकता है, परन्तु हृदय की बात कभी झूठी नहीं होती; मन की साक्षी किसी को धोखा नहीं देती :—

है तेरे ऊपर निछावर आज तन मन धन मेरा ।
तू मेरी होकर रहेगी कह रहा है मन मेरा ।।

सीता—मान ले कहना न हो तैयार अपने नाश पर ।
थूकता है किस लिये अज्ञान तू आकाश पर ।।

रावण—अच्छा सीते ! तुझे याद होगा कि मैंने तुझे एक मास का समय दिया था । अब बता ! कि तेरा क्या विचार है ? मेरा कहना स्वीकार है या फिर इनकार है ।

सीता—हां-हां इन्कार है, जो पहले था आज भी वही साफ इन्कार है । :—

आने न दूंगी आंच मैं नारी के मान पर ।
जो कुछ कि दिल में है मेरे वह ही जबान पर।।

रावण—सीता ! मैं फिर कहता हूं कि तू इस कारागार में वृथा ही कष्ट पाती है; अरी नादान ! अपनी हठ छोड़ कर जीवन का आनन्द क्यों नहीं उठाती है ।

यह जीवन, यह जवानी यह घड़ी क्या रोज आयेगी ।
चला जायेगा जब यह रूप तो फिर क्या बनायेगी ।।

सीता— जवानी और जीवन कब किसी का साथ देता है ?
है नारी-धर्म केवल जो सती का साथ देता है ।

रावण—अरी नादान ! ऐसी कल्पित बातों में न पड़; सोच समझ और मेरा कहना स्वीकार कर।

लोक और परलोक का जो छत्राधारी है बना।
आज वह रावण तेरे दर का भिखारी है बना।।

सीता—धर्म को जो छोड़ बैठा उसका जीवन कुछ नहीं।
छत्रधारी हो, भिखारी हो, अधम जन कुछ नहीं।।

रावण—सीते ! मैं तेरे अलौकिक सौन्दर्य का मान करता हूं, इसलिये कठोरता करते हुए डरता हूं।:—

कर चुका हूं प्रेम की विनती हजारों बार मैं।
प्रेम की बातों को तू खोती है क्यों तकरार में ?

सीता—मैं समझती हूं मगर तेरी समझ को क्या हुआ ?
क्यों पतन की ओर भागा जा रहा अन्धा बना ?
मोह में फंस कर न अब—अच्छे बुरे का ज्ञान है ?
वेद का पाठी है और कर्त्तव्य से अज्ञान है ?

रावण—मूर्ख ! हठेली, अज्ञान ! अब भी कहना मान।:—

झुकी है सम्पदा, माया जहां आंखें बिछाती है।
तू उस आनन्द और सुखको स्वयं ठोकर लगाती है।।

सीता—सम्पदा तेरी अरे नादान किस गिनती में है ?
धर्म जाता हो तो फिर यह जान किस गिनती में है ?

रावण—जान खोना जान कर यह काम है अनजान का।
धर्म कहती है जिसे तू खेल है नादान का।।

सीता—मान की चिन्ता न कुछ इज्जत का जिसको पास है।
धर्म को समझेगा क्या जो वासना का दास है।।

रावण—आ गले रावण के लग जा, बाज आ तकरार से।
वरना फिर होगा गले मिलना मेरी तलवार से।।

सीता—दो ही वस्तु हैं जगत में जानकी के प्यार की।
राम की बांहें हैं या है धार इस तलवार की।।

रावण—अच्छा ! तो अधिक मुंहफट न बन । रावण के सामने इतना न तन ! (तलवार उठाना)

मन्दोदरी—(रोक कर) शोक ! महा शोक, लंका का राजा और इतना डरपोक ।

आज जिसके नाम से ब्रह्मांड भी भयभीत है ।
एक अबला पर उठाये हाथ यह अनुरीत है ।।

रावण—अच्छा, तुम्हारे कहने पर अपनी तलवार रोक लेता हूं और इसे एक मास का समय और देता हूं । या तो सीधी राह पर आ जाएगी अन्यथा मेरे क्रोध की अग्नि में झोंक दी जायगी ।

[जाना]

सीता—

गाना (सोहनी)

बिन पति पत्नि जगत में देह है बिन प्राण की ।
जल बिना हो मीन जैसे राम बिन है जानकी ।।
हे विरह ! तुझ को भी मुझपर तरस आता नहीं ।
हाय क्यों बेजान मे बाजी लगाई जान की ।।
हाय ऐ दुनिया की अंधी आंख ! क्या तूने किया ।
कुछ न पापिन दोष और निर्दोष की पहचान की ।।
शीघ्र आ ऐ मौत ! तू ही काट दे बन्धन मेरे ।
जानकी को आज है इच्छा तेरे वरदान की ।।

आह ! प्यारे राम ! क्या तुम इतने निर्मोही हो गये ? क्या तुम ने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया ? सच कहो क्या दुष्टों का दलन करने वाले बाण अब कुंठित हो गये ? क्या दीन-रक्षा की मर्यादा भी छोड़ बैठे हो ? आओ ! हे स्वामी ! अब तो आओ ।

बिन तुम्हारे नाथ ! अब जीवन मुझे भाता नहीं ।
हाय क्या अबला का तुम को ध्यान भी आता नहीं ।।

हनुमान—आता है ! माता ! राम को तुम्हारा ध्यान हर समय आता है ।

सीता—हैं ! कौन बोला ? आज राम का प्यारा नाम किसने पुकारा ?

पाप नगरी में कोई इस नाम का लेवा नहीं।
हे विधाता! क्या मेरे कानों का यह धोखा नहीं॥

हनुमान—नहीं माता! धोखा नहीं, साक्षात है।

सीता—भाई! तुम कोई भी हो, साक्षात मेरे सामने आ जाओ!

हनुमान—(सामने आकर) माता प्रणाम!

सीता—जीवित रहो! यश प्राप्त करो! कहो भाई! तुम कौन हो?

हनुमान—कौशलाधीश श्री रामचन्द्र जी महाराज का दूत!

सीता—हैं! राम का दूत! क्या मैं स्वप्न देख रही हूं?
यह कभी सम्भव नहीं, चिन्ताओं का परिणाम है।
राम के दूतों का लंका में भला क्या काम है॥

हनुमान—नहीं माता! मैं सच कहता हूं कि राम के पास से आया हूं और आप का भ्रम दूर करने के लिये यह मुद्रिका भी लाया हूं (अंगूठी देना)

सीता—(अंगूठी पहचान कर) अहा! उपकार! परमात्मा महा उपकार!
मुद्रिका को देखकर हृदय कमल भी खिल गये।
यह निशानी क्या मिली है राम मानो मिल गये॥

हनुमान—जानकी माता! हृदय में धीरज धरो; किसी प्रकार की चिन्ता न करो। मेरे पहुंचते ही राम यहां पधारेंगे और दुष्टों का नाश करके तुम्हारा संकट निवारेंगे।

सीता—धन्य हो भाई! तुमने निराशा रूपी नदी में बहने वालों को आशा रूपी किनारे से लगा दिया, भगवान तुम्हें इसका बदला देंगे। परन्तु मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा। तुम कौन हो?

हनुमान—माता! मैं किष्किन्धा-नरेश सुग्रीव का मन्त्री हनुमान हूं! जब भगवान राम तुम्हें खोजते-खोजते उस ओर पहुंचे तो हम से भेंट हुई और एक दूसरे की मित्रता हो गई! अब मैं समुद्र पार करके आपकी सुधि लेने आया हूं और प्रभु का सन्देश आप के नाम लाया हूं?

सीता—धन्य हो वीर ? तुम्हारा कल्याण हो ? कहो स्वामी जी और लक्ष्मण जी तो कुशल से हैं ?

हनुमान—हां माता जी ? सब प्रकार से कुशल हैं किन्तु आपके वियोग में प्रभु रामचन्द्र जी बड़े विकल रहते हैं, उन्हें एक-एक पल एक-एक कल्प के समान बीतता है। रात्रि कालरात्रि बनकर आती है और दिन पहाड़ सा प्रतीत होता है। वे कहते हैं कि जानकी के विरह में मेरे लिये कमल काटे बन गये हैं; रस विष के समान है; जीवन नीरस हो गया है। यदि जानकी का पता पाऊं तो आकाश और रसातल को एक करके और काल को जीत कर उन्हें छुड़ा लाऊं ? सो हे माता ? तुम कोई चिन्ता न करो।

गाना

कष्ट का अब अन्त तेरे जानकी होने को है।
हाल पर तेरे दया भगवान को होने को है॥
किस लिये जीवन से है मायूस क्या मरती है तू।
याद रख रक्षा तेरे अब प्राण की होने को है॥
शीघ्र ही आकर करेंगे राम इन दुष्टों का नाश।
नोक सीधी इस तरफ अब बाण की होने को है।
अब न अन्ध रह सकेंगे दुष्ट माया मोह में।
सब कुशल समझो कि हानि मान की होने कोहै।

सीता—हनुमान ? तुम्हारे सुन्दर वचनों को सुनकर मन को बड़ी शान्ति मिली, मेरे लिये इससे अधिक सुख और क्या हो सकता है कि प्रभु अपनी दासी को याद रखते हैं।

हनुमान—हे माता ! प्रभु को तुम्हारा ध्यान किसी समय भी नहीं भूलता। अच्छा अब यदि आप कोई सन्देश देना हो तो दे दीजिये और लौटने के लिये विदा कीजिये !

सीता—हे वीर ! तुम मेरी दशा भली प्रकार देख चुके वह सब समझाकर कहना।

हनुमान—बहुत अच्छा माता जी ! आप निश्चिन्त रहें ! परन्तु इस वाटिका के सुन्दर फलों को देखकर मुझे भूख लग आई है, यदि आज्ञा हो तो फल तोड़ कर खालूं ।

सीता—भाई ! वैसे तो कोई हरज नहीं है किन्तु इसकी रक्षा बड़े-बड़े योद्धा राक्षस करते हैं !

हनुमान—माता जी ! यदि आपकी आज्ञा हो तो राक्षसों का मैं कोई भय नहीं मानता !

सीता—हां-हां मेरी ओर से आज्ञा है !

[हनुमान का फल तोड़ना]

माली—अबे वानर ! क्या तेरी मौत आई है जो महाराज रावण के बाग में घुस आया है और फलों के साथ वृक्षों को भी तोड़ गिराया है !

हनुमान—गिराया तो नहीं था किन्तु अब अवश्य गिराऊंगा और जो मुझे रोकेगा उसे यम के द्वार पहुंचाऊंगा ।

[माली तलवार लेकर बढ़ता है हनुमान उसे मार देते हैं]

दूसरा माली—अरे ! यह वानर तो बड़ा बलवान है मानो काल के समान है अच्छा अब जाता हूं और महाराज रावण को सब हाल सुनाता हूं ।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(रावण का दरबार)

रावण—हे दिग्गजों को हिलाने वाले अपार बल ! तेरे सामने बड़े-बड़े अभिमानियों का सिर झुका हुआ है ! हे पृथ्वी को कम्पायमान करने वाले असीम पुरुषार्थ ! तेरे आगे देवताओं का साहस भी मन्द पड़ा हुआ है । आज यदि शक्ति है तो मेरी भुजाओं में; यदि तेज है तो मेरी निगाहों में । लंका का

सम्राट, लोक परलोक का विजेता, दानव और दिक्पाल का देवता हूं। धन-धाम का मालिक और ज्ञान-विज्ञान का पुतला हूं।

साथियों को प्राणदाता, शत्रुओं का काल हूं।
क्रोध की बिजली हूं, गुस्से की दहकती ज्वाल हूं।।
हूं विनाशक लोक का और स्वर्ग का सरदार हूं।
देव की तकदीर हूं, संसार का करतार हूं।।

मन्त्री—क्यों नहीं महाराज! यदि आपका नाम सुन पाती है तो मृत्यु की छाती भी दहल जाती है :—

कौन शत्रु है जगत, पाताल और परलोक में।
बज रहा है आप का डंका तो तीनों लोक में।।

रावण—ठीक है! अच्छा रण-भेरी के साथ-साथ पायल की झंकार भी सुनाई जाय; अप्सराओं को बुलाकर नाच रंग की सभा जमाई जाये!

मन्त्री—जैसे आज्ञा श्रीमान्! द्वारपाल, गाने वालियों को हाजिर किया जाय!

द्वारपाल—बहुत अच्छा महाराज! (जाना)

रावण—साकी!

साकी—श्रीमान्!

रावण—जल्दी लाओ! :—

आज के दरबार में क्यों दौर फीका पड गया।
ला पिला जल्दी से ला! मुरदार ढला पड़ गया।।

साकी—लीजिये अन्नदाता :—

आज तो रंगत नई सरकार मैखाने में है।
लीजिये दुनिया की मस्ती एक पैमाने में है।।

मेघनाद—साकी! इधर भी लाओ—

छा गई काली घटा, बादल उठा है झूम कर।
है मजा चलता रहे पैमाना साकी घूम कर।।

साकी—लीजिये युवराज ! :—

प्याले में जिन्दगी की तमन्ना लिये हुये।
हाजिर हुआ हूं ऐश की दुनिया लिये हुये ।।

मन्त्री—साकी ! :—

जाता है किस तरफ को पियाला लिये हुये।
बैठे हैं हम भी तेरी तमन्ना किये हुये ।।

सभासद १—ऐसी पिला दे साकिया कुछ तर दिमाग हो।
आंखों में हो सरूर तो दिल बाग बाग हो ।।

सभासद २—मेरी तलब को देख के रंगत जमा के ला।
प्याले को छोड़ साकिया मटका उठा के ला ।।

अप्सरा— गान।

साकी शराबे सुर्ख का पैमाना चाहिये।
बस यह तेरा सलूक महरबाना चाहिये ।।
आई बहार ऐश की दुनिया है लुट रही।
महरूम हम रहें तुझे ऐसा न चाहिये ।।
बोतल में है बहिश्त की राहत छिपी हुई।
अंजाम के खयाल को लाना न चाहिये ।।
शीशा हो एक हाथ में पैमाना एक में।
मस्ती का साज बाज भी मस्ताना चाहिये।।

रावण—वाह-वाह ! अच्छा रंग जमाया। सारे दरबार को मतवाला बनाया।

द्वारपाल—(प्रणाम करके) महाराज-अधिराज ! अशोक-वाटिका से एक माली आया है जो कोई फरियाद लाया है।

रावण—अच्छा ! आने दो।

[द्वारपाल का जाना, माली का प्रवेश]

माली—(शीश नवा कर) दुहाई है ! महाराज ! दुहाई है !

रावण—क्यों ! क्या आफत आई है ?

माली—महाराज ! अशोक वाटिका में एक वानर आया है जिसने बड़ा ही ऊधम मचाया है। फलों को तोड़ कर वृक्षों को गिरा डाला है और जब हम ने रोका तो एक माली को मार डाला है।

रावण—ओहो ! कैसे आश्चर्य की बात है ? अच्छा बेटा अक्षयकुमार तुम अभी जाओ और उस दुष्ट वानर का जीता या मुरदा जैसे भी हो पकड़ लाओ।

अक्षयकुमार—जैसी आज्ञा पिता जी !

[अक्षयकुमार का जाना परदा गिरना]

दृश्य नवां

(अशोक-वाटिका)

[हनुमान फल तोड़ते और वृक्षों को उजाड़ते हैं अक्षयकुमार आता है]

अक्षयकुमार—कहां है ? वह दुष्ट वानर कहां है ? जो निडर होकर मृत्यु के मुंह में चला आया है और सारी वाटिका को वारान बनाया है। :—

कौन है जो काल के चक्कर में फंस कर आ गया।
मार सकता पर नहीं पक्षी जहां पर आ गया॥

हनुमान—(सामने आकर) अरे बालक ! तू कौन है जो जान से हाथ धोकर यहां चला आया है ! जा भाग जा, नहीं तो जान ले कि तेरा काल तुझे खींच लाया है :

अक्षयकुमार—धूर्त ! तू यह भी नहीं जानता कि मैं महाराजा रावण का पुत्र वीर अक्षयकुमार हूं; देवताओं का शत्रु और दस हजार दानव-सेना का सरदार हूं।

हनुमान—तभी तो आपे से बाहर हो रहा है ! अरे नादान ? नन्हीं सी जान को वृथा क्यों खो रहा है ?

युद्ध करने आ गया थे रंग में आने के दिन ।
दुधमुंहे बच्चे अभी थे खेलनेखाने के दिन ।।

अक्षय०—धूर्त वानर !

दुधमुंहा कहता है क्या, विष का बुझाया तीर हूं ।
नाग का बच्चा हूं, तेरी मौत की तस्वीर हूं ।।

हनु०—मौत की तस्वीर का भी चूर कर देते हैं हम ।
तेरे जैसों को मसल कर धूर कर देते हैं हम ।।

अक्षय०—ओ कमीने, बदकार ! नीचता के ठेकेदार :—

ठहर पाजी अब मजा सारा चखा देता हूं मैं ।
हड्डियों को पीस कर सुरमा बना देता हूं मैं ।।

हनु०—अरे, नासमझ अज्ञान बालक !

खेल कर मुष्टिक से क्यों सिर पर बला लेता है तू
किस लिये बेटे का दुख मां-बाप को देता है तू ।।

अक्षय०—अरे पापी ? एक गरीब माली को मार कर अब अक्षय कुमार के भी सिर पर चढ़ा आता है । ले देख, अब तू परलोक की हवा खाता है ।

हनुमान—अरे जा ? तू मुझे क्या हवा खिलाएगा, अपने आप ही नरक का खाजा बन जाएगा ।

[दोनो का युद्ध होना, अक्षय का मारा जाना]

दृश्य दसवां

(रावण का दरबार)

रावण—ओह ? एक साधारण से वानर का इतना साहस कि मेरा तनिक भी भय न खाए; और निडर होकर लंका में चला आये ।

माली—(आकर) महाराज ? अनर्थ हो गया उस अन्याई वानर ने राजकुमार को मार डाला ।

रावण—हैं ? क्या कहा ? राजकुमार को मार डाला ?

माली—हां, महाराज !

रावण—आह ! अन्याय हो गया। आखिर वह वानर है या यमराज का दूत ?

मेघनाद—पिता जी! आप किस बात की चिन्ता में पड़ गये ? संकोच को छोड़िये और मुझे आज्ञा दीजिये। मैं या तो उस दुष्ट को पकड़ कर आप के सम्मुख लाऊंगा और या सुरपुर पहुंचाऊंगा।

रावण—अच्छा, अब तुम ही जाओ और उस दुष्ट को बन्दी बनाकर हमारे सामने लाओ !

मेघनाद—जैसी आज्ञा !

[मेघनाद का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्यारहवां

(अशोक-वाटिका)

[हनुमान टहल रहे हैं, मेघनाद आता है]

मेघनाद—कहां है वह उपद्रवी वानर ? जिसे अपने बल पर बड़ा अभिमान है ? अब जरा मेरे सामने आये और अपना पराक्रम दिखाये।

हनुमान—(सामने आकर) क्यों ? क्या तू पराक्रम दिखाने से रोक सकता है ?

मेघनाद—अरे अन्यायी ! याद रख ! अब तू जीता बच कर न जायगा, अपने किये का अवश्य दण्ड पायगा।

हनुमान—जा ! अरे मूर्ख ! मैंने तेरे जैसे बहुतों को देखा है, आकाश का थूका सदा मुख पर ही आता है।

मेघनाद—मुरदार ! नहीं जानता कि मैं दिकपालों को हिलाने वाला और देवताओं पर विजय पाने वाला मेघनाद हूं। मैंने पृथ्वी,

आकाश और रसातल को एक किया है: वायु, यम, अग्नि, वरुण और काल को उंगली के इशारे पर धर दिया है :—

दास हैं-लंका के सारे देव भी, दिकपाल भी।
सिर झुकाते हैं यहां अग्नि,वरुण भी,काल भी ।।
नाम सुनकर कांपता है स्वर्ग भी, पाताल भी।
यक्ष भी,गन्धर्व भी,सरदार भी, महिपाल भी ।।
कौन है तीनों भुवन में जो करे अनुरीत रीत।
इन्द्र को करके विजय,है नाम पाया इन्द्रजीत ।।

हनुमान—हां हां मैं जानता हूं कि तू रावण का पुत्र बड़ा साहसी और बलवान है किन्तु जो आया है उसका जाना भी प्रमाण है :—

नाम से गूंजे थे जिनके स्वर्ग भी आकाश भी।
कांपते थे जिनके बल से हिमगिरि कैलाश भी ।।
हाथ में दोनों थे जिनके जिन्दगी भी नाश भी।
मौत जब आई तो इकपल का न था अवकाश भी।।
एक ही चक्कर में जब ढूढा निशा कुछ भी न था।
इस तरह से मिट गये मानो यहां कुछ भी न था।।

मेघनाद—बस-बस अब बातें न बना ! मेघनाद को मृत्यु का भय न दिखा :—

काल कहता है जिसे वह काल इस सरकार में।
हथकड़ी पहने पड़ा है बन्द कारागार में ।।

हनुमान—ठीक है, किन्तु याद रख !

जो चढ़ा आकाश पर इक दिन गिरा है गार में।
सच बता किस का रहा है बल सदा संसार में ।।

हनुमान—अच्छा तो आ और तू भी अपना पराक्रम दिखा।

[युद्ध होना, मेघनाद का थक जाना]

मेघनाद—(एक ओर) ओह ! यह वानर तो बड़ा बलवान है,यदि इस

पर ब्रह्म-शस्त्र नहीं चलाया जायगा तो यह कदापि काबू में नहीं आयगा।

[ब्रह्म-शस्त्र चलाना]

हनुमान—(स्वयं) ओहो! इस दुष्ट ने तो अपना अन्तिम दाब भी दिखाया और ब्रह्म-शस्त्र भी चलाया। अब यदि मैं इसे निष्फल बनाता हूं तो ब्रह्मा की महिमा को घटाता हूं। इससे तो यही अच्छा है कि इसी के हाथ पकड़ा जाऊं और दरबार में चल कर रावण का दर्शन पाऊं।

[मेघनाद का हनुमान को नाग फांस में फंसाकर ले आना]

मेघनाद—चल अब तो सीधो तरह चल; बन्दी बनकर तो अधिक न उछल।

हनुमान—चल, अब तेरे पिता से ही सुलझेंगे।

[परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(रावण दरबार)

रावण—ओहो! एक वानर के पकड़ने में इतनी कठिनाई कि मेघ नाद ने भी इतनी देर लगाई।

द्वारपाल—महाराज की जय हो; इन्द्रजीत उस वानर को बन्दी बन कर ले आये हैं।

रावण—खूब! अच्छा आने दो।

[हनुमान सहित मेघनाद का प्रवेश]

मेघनाद—लीजिए पिता जी। यह दुष्ट वानर हाजिर है।

रावण—क्यों रे वानर। तू कौन है और किस के बल पर मेरी वाटिका को उजाड़ा है? अरे अभिमानी? क्या मेरा भय भी न विचारा है:—

बता सच फांद कर सागर यहां कैसे चला आया ?
उजाड़ा बाग कुल मेरा न भय मन में जरा लाया ॥

हनुमान—भय ! भय कामी को होता है या चोर को !
जिसे सत्मार्ग प्यारा है सचाई पर जो मरता है।
उसे फिर खौफ है किसका वह कब दुनिया से डरता है॥

रावण—अच्छा तो तूने मेरी वाटिका का क्यों उजाड़ा है ? मेरे माली और अक्षय को क्यों मारा है ?

हनुमान—वाटिका को उजाड़ा है तुम्हारा दर्शन पाने के लिये ! और हत्या की है अपनी जान बचाने के लिये।

रावण—आखिर तू कौन है ? किसका भेजा हुआ लंका में आया है।

हनुमान—मैं हनुमान अन्जनी कुमार हूं; सुग्रीव का मन्त्री और महाराज रामचन्द्र का आज्ञाकार हूं।

रावण—तो बता क्या सन्देशा लाया है ?

हनुमान—लंकेश ! तू वीर और बलवान है, बुद्धिमान तथा ज्ञानवान है। नीतिकुशल होकर तूने नाति पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया है, माता जानका को चुरा कर बड़ा नोच कर्म किया है। याद रख यदि कुमार्ग का छाड़कर सत्मार्ग पर नहीं जायगा तो सिर धुन-धुन कर पछताएगा ?

रावण—क्या कहा ? पछताएगा ?

हनुमान—हां हां पछताएगा ! ऐसे नीच कर्म करने से तेरा सर्वनाश हो जाएगा।

रावण—सर्वनाश ! अरे ज्ञान के शत्रु ! मेरा सर्वनाश :—
गुण, ज्ञान, बल में एक हूं, बुद्धि प्रवीण हूं।
किस तरह नाश होगा कि जब नाश हीन हूं॥

हनुमान—निस्सन्देह ! गुण, ज्ञान और बुद्धि अभी तक आप के पास विद्यमान है किन्तु याद रखिये कि पतन की ओर ले जाने वाला यही अभिमान है। इस अभिमान में किस-किस का

खोज नहीं मिटाया किस किस को काल का ग्रास नहीं बनाया ? :—

जम्भासुर जैसा वीर कहां, वाणासुर सा बलवान कहां ?
हिरणाकुश का अन्याय कहां त्रिशकू का अभिमान कहां ?
राजा बलि का वह दान कहां भस्मासुर का अज्ञान कहां ?
राहू केतू को चाल कहां दानव का अमृतपान कहां ?
जब पूर्ण कलाएं होती हैं तो चांद भी गलता जाता है ?
जो सूरज दिन में चढ़ता है वह शामको ढलता जाता है ?

रावण—ओह ! आश्चर्य ! एक नीच वानर इतना निडर हो जाए कि रावण को नीति का उपदेश सुनाये :—

लो देखो आ गया वानर मुझे नीति बताने को ।
चला है तुच्छ दीपक चान्द को रस्ता दिखाने को॥

हनुमान—इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? अज्ञानी को ज्ञान बताना ही चाहिये; मार्ग भूले हुए को रास्ते पर लाना ही चाहिये ।

रावण—बस बस ! ओ दुष्ट यदि अब भी जबान चलाएगा तो कठोर दण्ड पाएगा ।

हनुमान—जबान चलाऊंगा किन्तु आपकी भलाई में । बातें करूंगा किन्तु आपकी भलाई में ! लंकेश ! अभिमान को छोड़ कर सत्मार्ग पर आइये ! जानकी को साथ लेकर प्रभु राम चन्द्र की शरण में जाइयें ?

रावण—नहीं तो ?

हनुमान—नहीं तो जानकी को कालरात्रि के समान समझिये; अपनी शक्ति और वैभव को दो दिन का मेहमान समझिये :—

अभिमान रहा किस का जग में जो चढ़ता है सो गिरता है ।
वह बादल भी फट जाता है जो गरज-गरज कर घिरता है ॥

रावण—ओ दुष्ट ! ऐसी बातें कहकर मेरे स्वाभाविक क्रोध को न जगा, अग्नि में तेल डालकर उसे और न भड़का । नहीं तो:—

जबां जो चल रही है उसके सौ टुकड़े बना दूंगा।
मसलकर धूल कर दूंगा तुझे नभ में उड़ा दूंगा।।

हनुमान—रावण ! निर्दोष का कोई क्या बिगाड़ेगा ? जो पाप कर्मों से आप ही मर रहा है वह दूसरे को क्या मारेगा ?:—

गिरेगा पृथ्वी पै आके इक दिन जो सिर महामद में घूमता है।
नशा वह आंखों से दूर होगा तू जिसकी मस्ती में झूमता है।।
तेरी तो शक्ति ही क्या है जिसपै तू मौत के दिन को भूलता है।
है कितना आकाश ऊंचा लेकिन चरण को पृथ्वी के चूमता है।।
चलेगी जब काल-चक्र आंधी यह तुच्छ जीवन निराश होगा।
अकड़ता फिरता है जिस विभव पर वह जलके पलभरमें नाशहोगा।।

रावण—क्यों नहीं ! यदि अपने स्वामी को बढ़ाकर मेरी कीर्ति को इस प्रकार नहीं घटाएगा तो टुकड़ा भी कहां से खाएगा ? वानर में यह स्वाभाविक गुण होता है कि :—

उछलता कूदता है नाच लोगों को दिखाता है।
परन्तु अपने स्वामी के लिये टुकड़ा कमाता है।।

हनुमान—लंकेश ! जो कुछ तू कहे सब ठीक है तू नहीं जानता कि राम के शत्रु की रक्षा करने वाला संसार में कोई नहीं; धर्म के विरोधी को बचाने वाला विश्व के विस्तार में कोई नहीं—

फंसा है मोह में अज्ञानता की नींद छाई है।
फिरी आंखों पे चरबी कुछ नहीं देता दिखाई है।।
चला है मार्ग पर उलटे, तुझे उलटी समाई है।
समझ और देख तो किस बात में तेरी भलाई है।।
पतन की ओर अपने आप क्यों नादान जाता है।
समझकर सांप को रस्सी, करों में क्यों उठाता है?

रावण—मूर्ख! अज्ञान तो आप बना है और नादान दूसरों को बताता है; सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव कर दिखाता है; आकाश और पाताल का पल्ला मिलाता है :—

मेरे बली दनुज कहां, वानर का दल कहां ?
ठहरे हमारे सामने मृत्यु में बल कहां ?
बकरी का सिंह से भी भला कोई मेल है ?
रावण का सामना कोई बच्चों का खेल है ?

हनुमान—ठीक है ! विनाश काले विपरीत बुद्धि ।

हुआ अज्ञान के वश, विष को अमृत जानता है तू ।
समन्दर बून्द को, पत्थर को कंकर मानता है तू ।।
मणि को वज्र, पारस को शिला गरदानता है तू ।
समझ कर लाल, पत्थर को गिरह में बांधता है तू।।
बुरा भी जीव का अच्छा भी कर्माधीन होता है ।
किसी का नाश हो तो पहले बुद्धि-हीन होता है ।।

रावण—फिर वही बकवास ! अरे मूर्ख, अज्ञानी ! कुछ तो ज्ञान कर
मेरी शक्ति और वैभव का तनिक तो ध्यान कर—

दिन-रात नाचते हैं इशारे पे यम, वरुण ।
आज्ञा में चल रहे हैं मेरी जल, पवन, अगन ।।
झुकते हैं आके चरणों में नौ लोक तिरभवन ।
माथा नवा रहे हैं सितारे, मही, गगन ।।
आधीन मेरे जीव भी, मृत्यु भी, प्राण भी ।
है विष भी मेरे हाथ में अमृत का दान भी ।।

हनुमान—सब कुछ है परन्तु इतना और समझ :—

न जग में जीवित रहे विजेता, न वीर बलवान ही बचे हैं ।
न रण के बांके, न प्रण के पूरे, न ज्ञानी गुणवान ही बचे हैं।।
न सेना-नायक, न गुण के ग्राहक, न लोभी धनवान ही बचे हैं ।
न सन्त योगी, न राज-भोगी, न उच्च कुलवान ही बचे हैं ।।
यह मान, यह सम्पदा, यह वैभव, न अन्त में कोई पास होगा।
जो काल है आज तेरे वश में उसी का एक दिन तू ग्रास होगा।।

रावण—ओह !, इतना मुंहफट ! इतना बोचाल ! (दांत पीस कर)
ओ चण्डाल !:—

करेगा बक-बक जो अब भी पाजी तो जीभ तेरी निकाल लूंगा।
पटक के पृथ्वी पै इक घड़ी में यह जान पापी निकाल लूंगा ॥
जो जाके पाताल में छिपेगा पलट के भूमि निकाल लूंगा।
जो घूरती हैं मुझे बराबर वे आंख तेरी निकाल लूंगा ॥
न तीनों लोकों में होगी रक्षा कोई बहाना नहीं मिलेगा।
समझ ले बैरी को मेरे जग में कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा ॥

हनुमान—कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा छिपाने वाला नहीं मिलेगा।
पड़ी सड़ेगी यह लाश तेरी उठाने वाला नहीं मिलेगा ॥

रावण—न बाज आता है बोलने से जबान फर-फर चला रहा है।
सहन मैं करता रहा हूं जितना, ढिटाई उतनीं दिखा रहा है॥

हनुमान—ढिटाई करता ही जा रहा है अकड़ में भरता ही जा रहा है।
मैं दूत हूं इसलिये ही चुप हूं तू सिर पै चढ़ता ही जा रहा है॥

रावण—तू बन के जिनका है दूत आया बड़ाई जिनकी बखानता है।
हैं मेरे दासों के दास ऐसे तू जिनको भगवान मानता है ॥

हनुमान—मैं जिनको भगवान मानता हूं वे तीन लोकों के हैं विधाता।
जो तू है सेवक तो वे हैं स्वामी जो तू भिखारी तो वे हैं दाता॥

रावण—संभल-संभल मुंह संभाल वानर तू आज जीने से तंग आया।
अरे महानीच, वन के जन्तु न तूने रावण का खौफ खाया ॥

हनुमान—मैं खौफ खाजाऊं तेरा मूरख ! नहीं गुरु ने मेरे सिखाया।
वह क्या मिटायेगा दूसरों को जिसे कुकर्मों ने है मिटाया ॥

रावण—बस ! अब नहीं सहा जाता है ! देखता हूं कि तुझे कौन बचाता है ! :—

किया अपमान जो मेरा मजा उसका चखाता हूं।
तेरा विध्वंस करके लाश कुत्तों को खिलाता हूं ॥

[मारने को खड़ा होता है, विभीषण रोक लेता है]

विभीषण—ठहरिये महाराज ! यह दूत है ! नीति में दूत का मारना अनुचित कहा है। इसलिये इसे क्षमा किया जाय या मृत्यु के अतिरिक्त कोई और दण्ड दिया जाय !

रावण—(हसकर) अच्छा देखो ! बानर को अपनी पूंछ बहुत प्यारी होती है ! इसलिये इसकी पूंछ में कपड़ा बांधकर तेल निचोड़ दिया जाये और फिर उसमे आग लगाकर इसे छोड़ दिया जाये !

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज !

[हनुमान को ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(लंका दहन)

[हनुमान की पूंछ जल रही है और वे नगरी में आग लगाते फिर रहे हैं।]

हनुमान— **गाना**

चलो तुम पवन निराली चाल
रूप भयंकर धारण करके करो लंक पामाल ।।
चलो तुम पवन……
सर सर करते चलो वेग से उड़ें भवन तत्काल ।
भक्त विभीषण के गृह-कुल की करो 'कुशल' प्रतिपाल ।।
चलो तुम पवन……

[हनुमान का जाना, लंका वासियों का रोते पीटते आना]

गाना (तर्ज—नाश तेरा हो राजा रावण)

टेक—विपता पड़ गई हम दोनों पर उजड़ गये घर बार ।
नहीं ठिकाना अब रहने को रोते हाथ पसार ।।

पहला—संकट से कौन बचावे ? आफत यह कौन टलावे ?
हर तरफ आग ने घेरा हमको, हो गये सब लाचार ।।
विपता पड़ गई……

दूसरा—दुख सहा नहीं अब जाता, जल गई है मेरी माता ।
अब खड़ा अकेला मैं रोता हूं बिछड़ गया परिवार ।।
विपता पड़ गई……

तीसरा—अग्नि ऐसी है भड़की, मेरी जल गई चम्पा लड़की।
लड़के वाले जल गये सारे, रोऊं धाड़ें मार॥
विपता पड़ गई······

चौथा—वह चौपट कर गया बन्दर-जल गया कोट का अस्तर।
हैट, पैन्ट, नकटाई जल गयी जूता तस्मेदार॥
विपता पड़ गई ·····

[चारों ओर से हाहाकार मचना, घरों का जलते हुए दिखाई देना, लंकादहन के भयानक दृश्य पर परदा गिरना।

दृश्य चौदहवां

(अशोक-वाटिका)

[सीता जी पालने में झूल रही हैं, हनुमान जी आते हैं]

हनुमान—अच्छा माता जी! अब रावण से मिलकर भली प्रकार समझा आया और चेतावनी के रूप में लंका को भी जला आया अब विदा कीजिये और अपना सन्देश भी दे दीजिये।

सीता—अच्छा तात! जीवित रहो! तुम्हारी कीर्ति अमर हो! लो यह मेरी चूड़ामणी लेते जाओ (चूड़ामणी देना) प्रभु के चरणों में मेरा प्रणाम कहना और इतना और निवेदन कर देनाः—

गाना (तर्ज—गम दिये मुस्तकिल···)

नाथ मन है विकल, नैन बरसायें जल, काले बादल;
बह गया मेरी आंखों का काजल···

सूना वन, नभ में घन, रात कारी;
ससनाती पवन मन दुखारी।
कैसे विपता सहूं, आप के बिन रहूं, प्राण निर्बल;
बह गया मेरी······

भूल बैठे हो जब नाथ तुम ही;
छोड़ बैठे हो जब साथ तुम ही।

कौन विपता हरे, मुक्त आकर करे, किस का है बल?
बह गया मेरी······

अब तो अन्तिम घड़ी आ रही है;
जानकी जान से जा रही है।
आओ संकट हरण, याद करके परण, भक्त वत्सल !
बह गया मेरी······

हनुमान—माता जी ! आप निश्चिन्त रहें ! मैं प्रभु से आपकी सारी व्यथा सुनाऊंगा। मेरे लौटते ही सारी वानर-सेना चढ़ादी जायेगी और लंका की ईंट से ईंट बजादी जायेगी।

सीता—अच्छा पुत्र जीवित रहो ! तुम्हारा कल्याण हो !

हनुमान—अच्छा, माता जी प्रणाम !

[हनुमान का जाना, परदा गिरना]

दृश्य पन्द्रहवां

(समुद्र तट)

[जामवन्त-अंगद आदि प्रतीक्षा कर रहे हैं]

अंगद—महाराज जामवन्त जी ! समय बीता जा रहा है किन्तु हनुमान जी नहीं आये ! अब क्या होगा ?

नल—आज तो कार्तिक की पूर्णिमा भी हो गई। आज उनको अवश्य ही लौट आना चाहिये था।

जामवन्त—बेटा ! तुम हनुमान जी के पराक्रम को नहीं जानते। वे अवश्य लौट कर आयेंगे और जानकी जी जहां भी होंगी वहीं से उनकी सुधि लायंगे।

अंगद—(प्रसन्न होकर) हां हां, वह देखिये ! हनुमान जी हो आ रहे हैं।

जामवन्त—मैं कह न रहा था कि वे अवश्य आयेंगे !

[हनुमान का प्रवेश]

जामवन्त—(हनुमान के गले मिल कर) धन्य है हनुमान जी ! आज हम लोगों का नया जन्म हुआ है !

अंगद—हां महाराज ! आप क्या मिल गये मानो तड़फती हुई मछली को अगाध जल मिल गया। कहिये ! माता जी की सुधि मिल गई।

नील—और यह बताओ कि आप लंका में किस प्रकार पहुंचे !

नल—और रावण से भी भेंट हुई या नहीं ?

जामवन्त—और अधिक समय लगने का क्या कारण हुआ।

हनुमान—हे वानरों ! तुम धन्य हो कि प्रभु के कार्य के लिये इतने उतावले हो रहे हो किन्तु देखो प्रभु भी व्याकुल हो रहे होंगे इस लिये यहां से शीघ्र चलो; मैं मार्ग में ही सारा वृतान्त सुनाऊंगा।

जामवन्त—हां हां ठीक है, चलो ! यहां समय खोना उचित नहीं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य सोलहवां

(राम का आश्रम)

(राम लक्ष्मण, सुग्रीव आदि प्रतिक्षा कर रहे हैं)

राम—विरह ! तू दबी हुई अग्नि के समान है जो भीतर ही भीतर सुलगता रहता है; या प्रेम का अथाह सागर है जो हिलोरे मारता हुआ निरन्तर छलकता रहता है। पता नहीं, नींद कहां चली गई ? आराम कहां जाकर सो गया ? सूर्य निकलता है और छिप जाता है; तारे आंख मिचोनी खेलते हैं और अलोप हो जाते हैं। घड़ियां बीत रहीं हैं, दिन भागे जा रहे हैं ! परन्तु क्या वह समय लौट कर नहीं आएगा :—

जब दिवस आनन्द के थे, जब सुहानी रात थी।
वन नहीं लगते थे वन, महलों ही जैसी बात थी॥

लक्ष्मण—भ्राता जी ! आज आप कुछ अधिक अधीर से प्रतीत होते हैं; इसका क्या कारण है ?

राम—क्या बताऊं भाई ! समय का परिवर्तन देख कर बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है ! संसार रूपी चक्र ने हसते हुये मुखड़े मलान कर दिये, प्रसन्नता से चमकती हुई आंखें आंसुओं से तर हो गई सदा सन्तुष्ट रहने वाले मन अधीर हो उठे :—

जो शोक में आतुर न हो सूरत नहीं देखी ।
हसती हुई संसार में मूरत नहीं देखी ।।
वह दिल कहां जो रंज से घबरा न गया हो ।
कह कौन खिला फूल जो मुरझा न गया हो ।।

लक्ष्मण—हां प्रभो ! जो साहस किसी भी दशा में न छूटा था आज वह भी छूट गया; अनेक प्रकार की चोटों का सहन करने वाला हृदय भी वियोग की चोट से टूट गया । यह कैसा आश्चर्य है :—

मोह था जिस को न सुख से, राज से, दरबार से ।
जो चला आया था नाता तोड़ कर घर बार से ।।
आज तक विचलित हुआ था जो न दुख की मार से ।
आज वह मन दब रहा संकटों के भार से ।।

राम—विधाता की गति ऐसी ही विचित्र है लक्ष्मण :—

सुख की घड़ी के साथ है दुखों का साथ भी ।
निकला है दिन जहाँ, वहां होती है रात भी ।।

सुग्रीव—परन्तु महाराज ! वानरों को गये हुए बहुत समय बीत गया अब तो वे .....

लक्ष्मण—(बात काट कर) सुग्रीव जी ! दूसरे का कार्य ऐसा ही होता है, पराई अग्नि में कूद कर कौन प्राण खोता है ?

राम—ऐसा न कहो भाई ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि हनुमान जी निराश होकर न आयेंगे, जानकी की सुधि अवश्य लायेंगे !

सुग्रीव—(प्रसन्न होकर) लोजिये महाराज ! हनुमान जी वानरों सहित आ रहे हैं।

लक्ष्मण—और मुख की प्रसन्नता कह रही है कि जानकी का पता ला रहे हैं।

राम—क्यों न हो ! पवनसुत का ऐसा ही प्रताप है।

हनुमान—(राम के चरणों में गिरकर) महाराज प्रणाम !

सब—बोलो ! अञ्जनीकुमार हनुमान की जय !

राम—कहो हनुमान जी ! कुशल पूर्वक तो आये ?

हनुमान—हां प्रभो ! जहां आपके चरणों का प्रताप है वहाँ संकट कैसे आ सकता है ?

राम—तो बताओ ! जानकी की क्या खबर लाये ?

हनुमान—सुनिये प्रभो !

गाना (तर्ज—हे राज ऋषि क्या कारण है···)

जो देखा नाथ ! कहूं क्योंकर कहते प्रभु जान फड़कती है।
वह कोकिल बीच तड़पती है अग्नि चहु ओर भड़कती है ॥
घन उमड़-उमड़ कर गरजत हैं, मेघा थम थम कर बरसत हैं।
माता जी डर-डर मरती हैं, बिजली घन बीच कड़कती है ॥
इक निर्जन वन में उपवन है, सुख का न कोई भी साधन है।
मन मारे माता रहती हैं, विरहानल नाथ भड़कती है ॥
दिन रात निशाचर दुख देते, सन्ताप प्राण हर हर लेते।
रावण के निठुर वचन सुन-सुन, नित छाती कुशल धड़कती है॥

राम—आह सीते ! तुम इतना कष्ट किस प्रकार सहती होगी ? भयंकर राक्षसों के बीच कैसे रहती होगी ?

हनुमान—इतना ही नहीं प्रभो ! आपके वियोग में एक-एक पल कल्प के समान हो रहा है, रात को दिन करना [illegible] हो रहा है।

सूख कर कांटा बनी है धीर प्रा[illegible] में नहीं।
मन लुटा बैठा है साहस, नीद [illegible]खों में नहीं॥
रट लगी है आप के ही नाम की हर सांस में।
प्राण हैं अटके हुए केवल मिलन की आस में ॥

राम—सीते ! तुम सचमुच आदर्श नारी हो; पतिव्रत धर्म की मूर्ति और स्त्री जाति के लिये कल्याणकारी हो ! :—

जब तलक चलता रहेगा चक्र इस संसार का।
मान लोगों में रहेगा, धर्म के व्यवहार का॥
जब तलक आकाश में चमकेंगे तारे शाम का।
उस समय तक याद रखेगा जगत इस नाम को॥

सुग्रीव—निस्सन्देह महाराज ! धर्म ऐसी ही सतियों के सहारे ठहरा हुआ है।

राम—अच्छा हनुमान जी ? यह तो बतलाइये कि क्या उन्होंने अपनी कोई निशानी नहीं भेजी है।

हनुमान—भेजी है महाराज ! यह लीजिये उनकी चूड़ामणि।

राम—(चूड़ामणि को छाती से लगाकर) आह चूड़ामणि ! तू प्यारी का सन्देश लेकर आई है इसलिये तेरी कान्ति में स्वर्ग की शोभा समाई है।

इक वियोगी के लिये सन्तोष का साधन है तू।
प्राण का रक्षक है तू मुझ को तो संजीवन है तू॥

जामवन्त—निस्सन्देह !

कौन दे सकता है कीमत प्रेम के उपहार की।
मिल गई प्रेमी से जो वस्तु बनी वह प्यार की॥

राम—अच्छा हनुमान जी ! यदि जानकी जी ने कोई सन्देश दिया हो तो वह भी सुनाओ।

हनुमान—हां महाराज ! उन्होंने कहा है कि आप तो दुखों के दूर करने वाले है फिर मेरा दुख दूर क्यों नहीं करते ? आप ने तो दुष्टों के संहार करने का प्रण किया है फिर भूमि का भार क्यों नहीं हरते ? हे नाथ ! आप ने मुझे क्यों त्याग दिया है? क्या दीन रक्षक और भक्तवत्सल बन कर अपनी प्रतिज्ञा का यही पालन किया है।

राम—ठीक है ! और कुछ ?

हनुमान—और यह भी कहा है कि :—

इक महीना और मैं रक्षा करूंगो प्राण की।
जो न आये फिर नहीं तुमको मिलेगी जानकी ।।

राम—मैं अवश्य जाऊंगा ! पर्वतों को चार कर, सागरों को पार करके और काल को पीछे हटा कर मैं अवश्य जाऊंगा ।

जानकी के वास्ते बाजी लगेगी जान की।
जानकी ही जब नहीं,परवाह फिर क्या जानकी।।

हनुमान—महाराज ! यह तो मैं रावण को पहले ही बता आया हूं और चेतावनी के रूप में लका भी जला आया हूं ।

राम—हैं ! लका को जला आये हो ? यह किस प्रकार हुआ हनुमान जी !

हनुमान—हे नाथ ! जब आप के प्रताप से मैं समुद्र को लांघ कर लंका में पहुंचा तो माता जी के दर्शन पाये और फिर उनकी आज्ञा पाकर अशोक वाटिका के फल तोड़कर खाये। सूचना पाते ही रावण ने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा किन्तु वह मेरे हाथ से परलोक सिधारा । फिर.रावण का बड़ा पुत्र मेघ-नाद आया और उसने मुझे नागफांस में फंसाया । इसके उप-रान्त मैंने रावण का दर्शन पाया और उसे भली प्रकार समझाया । अन्त में उसने मेरी पूछ में आग लगवा दी जिससे मैंने समस्त लंका जला दी ।

राम—निस्सन्देह हनुमान जी ! तुम बड़े पराक्रमी हो ! तुमने हमारा बड़ा उपकार किया है । अच्छा, तुम्हें जो अच्छा लगे सोई वर माग लो !

हनुमान—नाथ ! जिस पर आपकी कृपा हो जाती है उसके लिये मांगने को और क्या रह जाता है ? फि भी यदि आप देना ही चाहते हैं तो केवल इतना अनुग्रह क[illegible]जये कि अपनी निर्मल भक्ति दीजिये ।

राम—एवमस्तु ! [आरती पर ड्राप]

दसवां अंक

दृश्य पहला

(रावण का दरबार)

रावण—अहा ! :—

इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, दिग्पाल, दानव, चर अचर।
दास की सूरत खड़े रहते हैं मेरे द्वार पर॥

अग्नि का तेज, सागर की गम्भीरता और पवन की चाल-सब मेरे आधीन हैं, ब्रह्मा का ज्ञान, शंकर का तप और विष्णु का वैभव सब मेरे सामने शक्ति हीन है। मैं चाहूं तो लोकों का आकार मिटा दूं, दिशाओं को बदल कर दिग्पालों की जड़ें हिला दूं :—

ब्रह्माण्ड का बढ़ता हुआ विस्तार रोक दूं।
नौ दीप की चलती हुई सरकार रोक दूं॥
आकाश, चान्द, तारों, का व्यवहार रोक दूं।
मैं चाहूं तो जमाने की रफ्तार रोक दूं॥
अग्नि, वरुण, कुबेर का सरदार मैं ही हूं।
लोकों का लोकपाल हूं, दातार मैं ही हूं॥

मन्त्री—यथार्थ है, महाराज !

राजाओं, लोकपालों के सरदार आप हैं।
गन्धर्व, देव, दैत्य की सरकार आप हैं॥

सभासद—सत्य है श्रीमान् !

बस में किया है इन्द्र को, यम को मसल दिया।
जिसने उठाया सिर उसे फौरन कुचल दिया॥

रावण—अच्छा, अब आनन्दोत्सव मनाया जाये, अप्सराओं को बुला कर नाच-गाने का रंग जमाया जाये।

(अप्सराओं का आना और नाचना)

रावण—साकी ! जल्दी लाओ :—

ऐसी पिला दे साकीया दुनिया का गम न हो।
बढ़ता रहे सरूर भी मस्ती भी कम न हो॥

मन्त्री—साकी ! याद रख :—

मुझ को तो ऐसी चाहिये मदहोश ही रहूं।
दुनिया की कुछ खबर न हो जन्नत में जा बसू॥

मेघनाद—साकी ! ओ साकी :—

बाकी न छोड़ खुम में, बराबर लुटाये जा।
साकी तुझे कसम है पिये जा पिलाए जा॥

रावण—हां-हां, ठीक बात है :—

जाम पर जाम पिला रंग जमा दे साकी।
जिसको आदत न हो उसको भी पिलादे साक़ी॥
एक, दो, तीन नहीं दौर चला दे साकी।
सारे दरबार को मदहोश बना दे साकी॥

सभासद (१)—साकी ! हम को भी पिला :—

बाकी न रख उधार चुका दे सब आज ही।
कल की किसे खबर है पिलादे सब आज ही॥

सभासद (२)—

साकी तुझे कसम है जो तकरार तू करे।
इन्कार मैं करूं न ही इन्कार तू करे॥

अप्सरा—गाना तर्ज—(छोटा सा बलमा मोरे आंगना में गिल्ली खेले)

बालम के साथ आली रात मैंने खेली होली।
भर के गुलाबी गुल रंग की पिचकारी खोली-

रंग की पिचकारी खोली;
भीगा बसन्ती मोरा चीर आली मसकी चोली
बालम के साथ......
मीठी-मीठी बात मोरे साथ खेली आंख मचोली
साथ खेली आंख मचोली।
बिगड़ा सिंगार, टूटा हार, फिर भी मैं ना बोली।
बालम के साथ......

द्वारपाल—(मस्तक नवाकर) महाराज की जय हो! एक गुप्तचर आया है और कोई आवश्यक सूचना लाया है।

रावण—अच्छा! आने दो।

गुप्तचर—(प्रणाम करके) महाराज की जय हो! वानर सेना समुद्र-तट पर आ पहुंची है।

रावण—क्या कहा? वानर सेना समुद्रतट पर?

गुप्तचर—हां महाराज! और वे लोग चढ़ाई करने की योजनाएं बना रहे हैं।

रावण—कोई चिंता नहीं! जाओ तुम आराम करो।

(दूत का जाना)

रावण—लंका के वीरो; तुमने सुना गुप्तचर क्या कहता है?

सब—हां महाराज! सुना और भली प्रकार सुना।

रावण—तो बताओ कि अब क्या होना चाहिये?

सब—लंका का बोल-बाला और शत्रुओं का मुंहकाला होना चाहिये।

मन्त्री—महाराज! आप काहे की चिन्ता करते हैं? ऐसे-ऐसे जन्तुओं से तो हमारे राक्षस नित पेट भरते हैं:—

हमारे वीर तो सुर और असुर को जीत कर आयें।
इशारा आपका पायें तो इक दम सब को खा जायें॥

सेनापति—ठीक तो है श्रीमान्:—

परवाह क्या है सैकड़ों हैं या हज़ार हैं।
वानर तो रात दिन का हमारा अहार हैं ।।

रावण—क्यों नहीं ? तुम जैसे वीरों पर ही तो लंका को गर्व है ।

मेघनाद—पिता जी ! जिन भुजाओं की धाक समस्त ब्रह्मांड पर छा गई है, क्या उनमें अब निर्बलता आ गई है ?

है आन वीरता की और आप की कसम है।
नीचा करूंगा उनको जब तक कि दममें दम है।।

पहला सभासद—महाराज ! आप की आज्ञा पाते ही एक एक को यमपुर पहुंचा दूंगा !

दूसरा—और मैं पकड़-पकड़ कर समुद्र में डुबा दूंगा ।

तीसरा—और मैं उनके सिर भिड़ा दूंगा ।

विभीषण—भूल रहे हो भाई साहब ! इन स्वार्थी लोगों की बातों पर भूल रहे हो । याद रखो ! ये मीठी मीठी बातें बना कर आप को कुमार्ग पर ले जा रहे हैं; प्रसन्न करने के लिए असम्भव को सम्भव कर दिखा रहे हैं :—

स्वार्थ के बन्दे हैं ये करते हैं बातें चाल की ।
राह पर ले जा रहे हैं आपको जंजाल की ।।
बचके चलिए कपट से धोखा न इनसे खाइये ।
ज्ञानका पथ छोड़कर अज्ञान पर मत जाइये ।।

मन्त्री—देखिये महाराज ! हम तो स्वामीभक्ति की शपथ खा रहे हैं और विभीषण जी हमें स्वार्थी ठहरा रहे हैं ।

विभीषण—चुप रहो ! इन बातों में जरा भी सच्चाई नहीं, कुमार्ग पर चलने में किसी को भलाई नहीं (रावण से) सोचिये भाई साहब ! जरा बुद्धि के पट खोल कर सोचिये ! जरा ज्ञान के पख पसार कर सोचिये :—

सर्प में अमृत कहां, पाषाण में गन्धक कहां।
कीच में खुशबू कहां और आग में ठण्डक कहां?
लाख कोशिश कीजिये बदसे बदी जाती नहीं।
दुष्ट लोगों में कभी नेकी को बू आती नहीं॥

रावण—विभीषण ! आज तुझे क्या हो गया है ? तेरा ज्ञान और वैराग्य कहाँ सो गया है ?

आज ही लंकेश से सूझी तुझे भी वैर की ?
मेरा भाई और भलाई कर रहा है गैर की ?

विभीषण—नहीं भ्राता जी ! मैं ठीक कह रहा हूं। यदि आप कल्याण चाहते हैं, यदि आपको भलाई की इच्छा है, यदि आप धोखे में पड़कर अपना अनहित करना नहीं चाहते तो इन स्वार्थी लोगों को अपना हितैषी न जानिये, शत्रु को मित्र कदापि न मानिये। क्रोध और अभिमान को छोड़कर अज्ञान और माया से मुंह मोड़कर भगवान की शरण में जाइये और जानकी को लौटा-कर अमर पद पाइये। याद रखिये :—

कुबुद्धि क्रोध और माया नरक गामी बनाते हैं।
सचाई से हटाते हैं बुराई पर लगाते हैं॥
उन्हें समझो न तुम अपना कुपथ पर जो चलाते हैं।
समय पर काम आते हैं तो बस अपने ही आते हैं॥
बदी का बीज बोकर फल न कोई नेक पायेगा।
यदि आकाश पर थूका तो वह मुंह पर ही आयेगा॥

रावण—विभीषण ! शत्रु के पक्ष ने तुझे अन्धा बना दिया है; द्रोह की भावना ने तेरी आँखों पर चरबी फेरदी है। तू इतना भी नहीं देख सकता कि :—

स्वर्ग से पाताल तक पृथ्वी से ले आकाश तक;
बज रहा है मेरा डँका विंध्य से कैलाश तक;

विश्व घबराता है मुझसे किससे घबराता है तू ?
देव भय खाते हैं मेरा किसका भय खाता है तू ?

विभीषण—यही तो बात है भाई साहब ! इसी अभिमान के कारण तो आपको आगा-पोछा नहीं सूझा; इसी अहंकार ने तो आपको इतना अज्ञानी बना दिया; आपको शत्रु और मित्र की पहचान नहीं रही; हित के वचन आपको कड़वे लगने लगे। ज्ञान की बातें निरर्थक प्रतीत होने लगीं। भ्राता जी ! मैं एक बार फिर कहता हूं; मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूं कि अपनी हठ को जाने दीजिए; पुलस्त मुनि के कुल का नाश न कीजिये :—

जला जाता है दिल मेरा तुम्हारी इस ढिठाई से।
भला होगा नहीं कुल का, प्रभु की शत्रुताई से ॥
जो मन में भाव था मेरे कहा बिल्कुल सफाई से।
बुरा हो लाख जन्मों तक कपट रक्खू जो भाई से ॥

रावण—चुप मूर्ख ! तूने यह उलटा उपदेश कहां से पाया ? मैंने तुझे लाख बार समझाया कि कायरता में रावण के कुल का नाम नहीं किसी भी शक्ति से भय खाना हमारा काम नहीं। किन्तु एक तू है कि कुछ भी नहीं समझता है; बार-बार वही राम की बड़ाई की बकवास बकता है—

विश्व में बदनाम मैं तेरी जबां से हो गया,
शर्म कर निलज्ज तू कायर कहां से हो गया?

विभीषण—कायर मैं नहीं भाई साहब, कायर वे हैं जो आप को उल्टी मत देते हैं जो झूठी और कपट भरी बातें बनाकर आपसे स्वामी-भक्ति का इनाम लेते हैं।

रावण—यह तू कैसे कहता है ?

विभीषण—मैं इसलिये कहता हूं कि :—

गरजने वाले बादल तो बहुत कम ही बरसते हैं;
वे सब सोना नहीं होते पदारथ जो चमकते हैं।

अधर्मी, स्वार्थी, झूठे, कपट करते नहीं डरते;
जो करते हैं नहीं कहते, जो कहते हैं नहीं करते।

मेघनाद—बस रहने दीजिए चचा साहब ! बहुत सुन चुका हूं। आप को इतनी भी लाज नहीं कि भाई होकर भाई से विश्वासघात करते हो; हमारा नमक खाते हो और शत्रु के पक्ष की बात करते हो।

विभीषण—देखते हो भ्राता जी ! यह छोकरा क्या कह रहा है ?

रावण—जो कुछ कह रहा है ठीक कह रहा है। तुम्हारी बातों में हमें सन्देह नजर आता है। तुम्हारा द्रोह हमारे पक्ष को निर्बल बनाता है :—

काटता है तब ही लोहा काठ को निज धार से।
जबकि मिल जाती है लकड़ी लोहे के औजार से॥

विभीषण—बड़ा आश्चर्य है भ्राता जी ! कि आप भी मुझ पर सन्देह करते हैं, क्या गीले और सूखे सब एक साथ जलते हैं।

रावण—क्यों नहीं जलते ! जब द्रोह की अग्नि भड़कती है तो सूखे और गीले सब को जला देता है; विद्रोह की भावना मनुष्य को अन्धा बना देती है।

विभीषण—ठीक है ! जिस प्रकार लोहे में घुन और पत्थर में दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार अभिमानी पर हित की बात कोई असर नहीं करती। आप क्रोध में आपे से बाहर हो रहे हैं, बदले की भावना से दब कर अच्छे और बुरे का ज्ञान खो रहे हैं :—

सोच कर देखो, गले नागन को लिपटाते हो तुम;
कूदते हो आग में, पर्वत से टकराते हो तुम।

रावण—डरपोक ! कमीने ! निलंज्ज ! तू स्वयं कायर होकर मुझे

भी कायर बनाता है। उन वन वासियों की बार-बार बड़ाई करके रावण को डराना चाहता है। जानता नहीं :—

स्वर्ग और पाताल का पल्ला मिला देते हैं हम;
पैर की ठोकर से ही भौंचाल ला देते हैं हम;
क्रोध की अग्नि से सागर को सुखा देते हैं हम;
पर्वतों को फूंक से पानी बना देते हैं हम;
वज्र का है दिल हमारा मोम और शीशा नहीं;
हम ने भय खाना किसी से आज तक सीखा नहीं।

विभीषण—इसीलिए तो मैं भी कहता हूं भाई साहब! कि इस शक्ति और वैभव को मिट्टी में न मिलाइये, ऐसे ऐश्वर्य और उन्नति को नाश के गड्ढे में न गिराइये :—

मारिये ठोकर न अपने आप ऐसी शान को;
नाम को, धन को, विभव को, मान को, सम्मान को;
जिस का देखा इस तरह प्रकाश अपनी आंख से;
किस तरह देखूंगा उसका नाश अपनी आंख से।

रावण—बस-बस! ओ धूर्त! मुझे तेरे उपदेश की आवश्यकता नहीं, तेरी शिक्षा सुनने का अवकाश नहीं। इस बेसुरी तान को बन्द कर, इस बे समय की भैरवी को रहने दे :—

बैठ कर तुझ से सुनें हम गैर के गुणगान को।
इस तरह की है नहीं आदत हमारे कान को॥

मेघनाद—पिता जी! मालूम होता है कि चचा साहब शत्रु से घूस खा गये हैं, जो ऐसी कमीनी बातों पर आ गये हैं।

रावण—सम्भव है ऐसा [illegible] हो!

विभीषण—आप कुछ भी कहें भाई, परन्तु मैं एक बार फिर कहता हूं कि आप अपने किये पर पछताओगे; मेरी बातों को याद करके पश्चाताप के आंसू बहाओगे। राम से वैर करने में किसी की

भलाई नहीं; अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारना कोई दानाई नही :—

अक्ल से सोचो जरा बुद्धि से अपनी काम लो।
दिल चला है पाप के रस्ते पै इस को थाम लो॥

रावण—फिर वही कायरता की बात। फिर वही शत्रुओं की बड़ाई! अरे अज्ञानी! विश्वासघाती! कुलनाशक कुत्ते!

अब उतर आया है ऐसी नीचता के काम पर।
थू है तेरी कीर्ति पर, थू है तेरे नाम पर॥
डूब मर जाकर कहीं, बदली है क्या हालत तेरी।
चल निकल, जा दूर ही, भाती नहीं सूरत तेरी॥

[लात मारना]

विभीषण—अच्छा भाई! खुश रहो :—

मुझ को आखिर क्या पड़ी जो कुछ किया सो पाओगे।
बीज जा बोया है तुमने फल भी उस का खाओगे॥

[विभीषण का जाना]

मन्त्री—महाराज! अब विभीषण सीधा शत्रुओं के पास जायगा और उनको हमारा सारा भेद बतलायेगा।

रावण—कोई परवाह नहीं, वीर ऐसी बातों से कब डरते हैं? शेर तो चोट खाकर और भी बफरते हैं।

मेघनाद—यथार्थ है पिता जी! हम किसी भी आपत्ति से मुंह मोड़ने वाले नहीं; यदि सारा संसार भी रूस जाय तो भी हम साहस छोड़ने वाले नहीं।

रावण—शाबाश तुम रावण के सच्चे सपूत हो।

[सब का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(समुद्र-तट)

[राम के शिवर का बाहरी दृश्य-वानर पहरा दे रहे हैं विभीषण आता है।]

विभीषण—(स्वयं) अहा ! मैं कितना भाग्यशाली हूं ! आज भगवान के उन कमलरूपी चरणों के दर्शन करूंगा जिनकी रज ने गौतम की नार अहिल्या को पार कर दिया; जिन्होंने बड़े-बड़े पातकी जीवों का उद्धार कर दिया :—

शिव के मन-मन्दिर में जिन चरणों का निशदिन वास है।
जग को जिन का है सहारा भक्तजन को आस है।।
उन की रज पाकर मैं लोकों का धनी बन जाऊंगा।
आज इक पत्थर से पारस की मणी बन जाऊंगा।।

एक वानर—(विभीषण को देख कर) अरे देखो तो ! हमारे दल में यह कौन घूम रहा है चाल ढाल से तो राक्षस मालूम होता है। परन्तु मस्तक पर तिलक लगाये, गले में माला पहने और राम-राम रटते हुए हरिभक्त सा लगता है ! —

दूसरा—अरे कहीं ऐसा न हो कि रावण का कोई गुप्तचर हमारा भेद लेने आया हो और हमें धोखा देने के लिये यह कपट रूप बनाया हो !

तीसरा—तो चलो इससे बातें करें और यदि तुम्हारा अनुमान ठीक हो तो पकड़ कर प्रभु के पास ले चलें।

पहला—अरे भाई ! तुम कौन हो ? जो निडर होकर रामदल में घूम रहे हो !

विभीषण—जय ! रघुकुल भूषण भगवान राम की जय ! भाई तुम लोग बड़े भाग्यशाली हो जो भगवान की सेवा में जीवन बिता रहे हो, अपने जन्म को सार्थक बना रहे हो !

दूसरा—अरे ! ये चिकनी-चुपड़ी बातें न बना, पहले अपना सब हाल सच-सच बता !

विभीषण—भाई ! मैं रावण का अनुज विभीषण जन्म से राक्षस हूं ।

दूसरा—देख लो ! मैंने कहा न था कि यह अवश्य कोई राक्षस है और हमारा भेद लेने आया है ।

तीसरा—तो फिर देखते क्या हो । इसे बांध लो और प्रभु के पास ले चलो ।

सुग्रीव—(आकर) अरे यह क्या झगड़ा है ? क्यों इतना ऊधम मचा रखा है ?

तीसरा—महाराज, यह गुप्तचर पकड़ा है जो लंका से हमारा भेद लेने आया है !

विभीषण—नहीं महाराज ! मैं रावण का भाई तो अवश्य हूं किन्तु भेद लेने के लिये नहीं; भगवान की शरण लेने के लिए आया हूं ।

सुग्रीव—भगवान से तुम्हारी भेंट नहीं हो सकती ! हम शत्रु के किसी आदमी को अपना विश्वास पात्र नहीं बनाएंगे ।

विभीषण—तो कृपा करके प्रभु को यह समाचार सुना दीजिये । यदि वे मुझे आश्रय देना न चाहेंगे तो मैं चला जाऊंगा ।

सुग्रीव—अच्छा ! तुम यहीं ठहरो ! मैं अभी आता हूं ।

विभीषण—जैसी आज्ञा !

सुग्रीव—(राम के पास आकर) महाराज ! रावण का भाई विभीषण आप से मिलना चाहता है ।

राम—तो इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ?

सुग्रीव—महाराज ! यद्यपि शीलस्वभाव है परन्तु फिर भी राक्षस है ! निशाचरों की माया कुछ समझ में नहीं आती सम्भव है

इसमें भी कोई कपट हो। इस लिये मेरी सम्मति में उसे बांध रख छोड़ना चाहिये।

जामवन्त—हां, शत्रु पर विश्वास करने में कोई चतुराई नहीं।

राम—जामवन्त जी! मैं आपके वचनों का तो आदर करता हूं परन्तु अपनी प्रतिज्ञा तोड़ते हुए डरता हूं। यदि कोई ब्रह्महत्या करके भी मेरी शरण में आएगा तो आश्रय अवश्य पायगा!

हनुमान—धन्य है प्रभु! आपकी प्रतिज्ञा धन्य है!:—

मित्र हो, शत्रु हो इस की कुछ नहीं पहचान है।
जो शरण में आ गया उस का ही बस कल्याण है॥

राम—जाइये, जाइये हनुमान जो। विभीषण को आदर सहित ले आइये!

हनुमान—जैसी आज्ञा प्रभु! (जाना)

सुग्रीव—महाराज, क्या रावण का भाई निष्कपट हो सकता है?

राम—क्यों नहीं, सुग्रीव जी! क्या कीच में कमल नहीं फूलता? क्या सीप से मोती नहीं निकलता? क्या कांटों में फूल नहीं खिलता? जब हिरणाकुश के घर प्रह्लाद हो सकता है तो पुलिस्त मुनि के वंश से विभीषण का पैदा होना क्या आश्चर्य है?

सुग्रीव—धन्य है महाराज! मेरा सारा भ्रम दूर हो गया, मन का सन्देह चकनाचूर हो गया!

[हनुमान का विभीषण सहित आना]

विभीषण—(हाथ जोड़ कर) शरण! हे नाथ शरण! (पैरों में गिरना)

राम—(खड़े होकर और विभीषण को गले लगाकर) भक्त शिरोमणि विभीषण! तुम इतना क्यों घबरा रहे हो? आखिर किस भय के कारण सटपटा रहे हो?

बिभीषण—कुछ न पूछो भगवन् ! मैंने निशाचर कुल में जन्म लिया है; रावण का भाई हूं ! राक्षसी स्वभाव के कारण मुझे पाप प्यारा है; मैंने कोई शुभ कार्य भी नहीं किया किन्तु नाथ ! आप संसार के दुःख दूर करने वाले हैं, शरणागत की रक्षा करना आपकी प्रतिज्ञा है; यही सब सुनकर मैं आपकी शरण में आया हूं। आप मेरा उद्धार कीजिये, मुझे अपनी सेवा में लीजिये।

राम—विभीषण जी ! तुम निश्चिन्त रहो, परन्तु यह तो कहो कि परिवार से क्यों मुंह मोड़ा? भाई का साथ किस लिये छोड़ा?

बिभीषण—हे नाथ ! नरक का वास अच्छा है परन्तु दुष्ट का पास अच्छा नहीं ! जो कुरीति पर चलने वाला है जिसको दुराचार और व्यभिचार ही प्यारा है; जो धर्म को भूल कर अधर्म के मार्ग पर जा रहा है उससे पृथक रहने में ही जीव की भलाई है ?

राम—क्या तुम्हारा मतलब रावण से है ?

विभीषण—हां महाराज ! मैंने उसे अनेक प्रकार से समझाया, ऊंच नीच दिखाकर सत्य मार्ग पर लाना चाहा परन्तु उसके नाश के दिन समीप आ रहे हैं इसलिये उसे अनाचार ही भा रहे हैं।

राम—ठीक कहते हो विभीषण ! तुम ने लोभ, मोह, अभिमान आदि सभी विकारों को जीत लिया है, तुम अनाचार से बचकर सत्यमार्ग पर चलने वाले हो। तुम्हें किस का भय है ?

विभीषण—हे नाथ ! जिस पर आपकी कृपा हो जाती है उसे त्रिलोक में डराने वाला कौन है ? जिस दीपक को आप जलाते हैं उसे बुझाने वाला कौन है ?

राम—विभीषण ! जब तुम माता पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्र और घर-बार का त्याग करके हमारी शरण में आ गये तो तुम्हें

कोई संकट न सतायगा, यदि समस्त ब्रह्मांड भी तुम्हारा शत्रु वन जाय तो भी तुम्हारा बाल बांका न हो पायेगा।

सब—जय ! कौशलाधीश महाराज रामचन्द्र की जय ! त्रिलोकिनाथ भगवान राम की जय !

राम—अच्छा लंकेश ! अब तुम्हें जो अच्छा लगे वही वर मांग लो।

विभीषण—क्या कहते हो नाथ ! लंकेश कह कर मुझे क्यों लज्जित करते हो ?

राम—लज्जित नहीं, हम ठीक कहते हैं और आज से तुम्हें लंका का राजा बनाते हैं।

विभीषण—नहीं महाराज ! आप के चरणों की भक्ति को छोड़ और मुझे किसी चीज की इच्छा नहीं।

राम—यह हम जानते हैं ! परन्तु लंका का राज्य हम तुम्हारी इच्छा से नहीं, अपनी इच्छा से देते हैं।

[राजतिलक करना]

हनुमान—धन्य हो महाराज ! जो सम्पदा महादेव जी ने रावण को दस शीश का बलिदान करने पर दी थी वह आप ने विभीषण को केवल शरण आने पर दे दी।

राम—हनुमान जी ! भक्त को हम क्या दे सकते हैं ? भक्त के ऋण से तो हम कभी भी उऋण नहीं हो सकते।

सब—बोलो कृपानिधान भगवान राम की जय !

राम—अच्छा सुग्रीव जी ! अब यह विचारना चाहिये कि यह अथाह सागर किस प्रकार पार उतरा जायगा !

सुग्रीव—महाराज ! इस भयंकर सागर को पार करना तो बड़ा ही दुर्लभ प्रतीत होता है।

विभीषण—नहीं महाराज ! आपके सामने कोई काम दुर्लभ नहीं। आपकी दृष्टि पड़ते ही पर्वत मार्ग छोड़ सकते हैं आपके वाण

समुद्र—हे नाथ ! आपका क्रोध प्रलय के समान होता है, आप का एक ही वाण अनेकों ब्रह्माण्ड का नाश कर सकता है, फिर मैं दीन बेचारा किस गिनती में हूं । मुझे अपना दास समझ कर क्षमा कीजिये और इस भयकर वाण से अभयदान दीजिये ?

राम—अच्छा ! हम तुम्हारी नम्रता पर प्रसन्न हुए, परन्तु अब ऐसा उपाय बतलाओ जिससे हमारी सेना पार हो जाए ?

समुद्र—सुनिये महाराज ? किसी नदी के किनारे एक क्षमाशील मुनि रहते थे और ये नल-नील दोनों भाई वहां उपद्रव किया करते थे । जिस समय वे मुनि आंखें बन्द करके ध्यान में बैठते उसी समय ये उनके ठाकुर जी को उठा लाते और समुद्र में बहा देते । एक दिन मुनि ने क्रोधित होकर यह शाप दिया कि तुम समुद्र में जो वस्तु डालोगे वह उपर ही तैरेगी और उसी स्थान पर स्थिर रहेगी । इसलिये नाथ आज्ञा दीजिये कि सब वानर बड़े-बड़े पत्थर उठाकर लायें और नल-नील उन्हें अपने हाथों से समुद्र में डालते जाएं । इस प्रकार पुल तैयार हो जाएगा । और सेना को पार होने का मार्ग मिल जाएगा ।

राम—हां उपाय तो ठीक है; किन्तु धनुष पर आया हुआ बाण भी तो खाली नहीं जायगा; यह किसी न किसी को अवश्य निशाना बनायगा ।

समुद्र—अच्छा महाराज ! यदि ऐसा ही है तो इस बाण को पश्चिम दिशा में छोड़ दीजिये और उस ओर जो हिंसक राक्षस रहते हैं इससे उनका संहार कीजिये !

राम—अच्छा लो ! उसी दिशा में छोड़ता हूं ! (छोड़ना)

समुद्र—जय ! भक्तवत्सल भगवान की जय ! (जाना)

राम अच्छा नल-नील जी ! अब तुम वानरों सहित चले जाओ और जितनी जल्दी हो सके पुल बनाओ !

नल-नील—जैसी आज्ञा प्रभो ! (जाना)

राम—सुग्रीव जी ! यह भूमि बड़ी रमणीक है, समुद्र-तट होने के कारण स्थान भी पवित्र है। हम यहां शिव मन्दिर की स्थापना करेंगे और महादेव का पूजन करके लंका पर चढ़ेंगे !

सुग्रीव—महाराज ! आपका विचार बड़ा पवित्र है। मैं इसका सब प्रबन्ध किये देता हूं।

[सुग्रीव का जाना दृश्य परिवर्तन पर रामेश्वरम् की स्थापना परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(समुद्र-तट पर रामेश्वरम् का दृश्य)

[राम, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि शिव पूजा कर रहे हैं]

शिव-वन्दना

जय जय शिव शम्भू त्रिपुरारी-विपत-विदारन मङ्गलकारी।
आशुतोष भगवन सुखदायक-जय जय उमापति गणनायक॥
सुर-नर पालक जन रखवारे-यम फांसी प्रभु काटन हारे।
सन्त-मुनि-मन रंजन स्वामी-घट-घट-वासी अन्तर्यामी॥
शिव शंकर योगेश्वर त्यागी—नाम लेत भव-बाधा भागी।
जाके मन-मन्दिर शिव-वासा-ताको नहिं सपनेहु भव त्रासा॥
बारम्बार नवावहुं सीसा-देहु नाथ पुनि-पुनि आसीसा।
दानव—दनुज सकल जग दाहू-करहूं नाश दीजे बल बाहू॥

सब—जय जय ! भोलेनाथ की जय ! रामेश्वर महाराज की जय !

राम—सुग्रीव जी ! शिव की कृपा के बिना जीव का निस्तारा नहीं, महादेव के समान मुझे और कोई प्यारा नहीं। शिव का द्रोही यदि मेरा भक्त कहाता है तो वह सपने में भी मुझे नहीं पाता है। जो मनुष्य रामेश्वरम् के दर्शन करके शिवभक्ति का वरदान पायेंगे वे बिना परिश्रम ही भव-सागर तर जाएंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

नल-नील—(आकर और प्रणाम करके) महाराज ! सेतु तैयार हो गया। अब आज्ञा दीजिये और सेना के पार होने का प्रबन्ध कीजिये!

राम—धन्य है ! नल-नील जी ! आप लोगों को धन्य है। अच्छा सुग्रीव जी ! चलो और पार होने का प्रबन्ध करो।

सुग्रीव—जैसी आज्ञा महाराज !

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(सेतुबन्द रामेश्वरम् के दर्शन)

[सेतु की आरती करके समस्त सेना का पार होना और लंका के तट पर पहुँचना तथा पड़ाव डालना]

सुग्रीव—महाराज ! अब सारी सेना पार हो चुकी है आगे के विषय में क्या विचार है ?

राम—मेरी सम्मति में एक बार फिर किसी दूत को भेजकर रावण को समझाना चाहिये और जहां तक हो सके आगामी झगड़े को टालना चाहिये।

हनुमान—यथार्थ है महाराज ! मेरी सम्मति में भी रावण को एक अवसर और देना चाहिये और उसको समझाने के लिये युवराज अंगद को भेजना चाहिये।

राम—हां ! हमारा विचार भी ऐसा ही है। अंगद युवक, निपुण तथा सबल भी है; और वीर होने के साथ-साथ नीति-कुशल भी है।

अंगद—(राम से) तो नाथ ! मुझे आशीर्वाद दीजिये और अभिमानी से भेंट करने के लिये विदा कीजिये !

राम—हां, वत्स जाओ, मेरा आशीर्वाद है कि तुम संसार में अमर कीर्ति पाओ !

अंगद—अच्छा प्रभो! :—

चिन्ता ही क्या है आप का सिर पर जो हाथ है;
देखूंगा जाके उस को जो देवों का नाथ है।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(परदा-रास्ता)

[रावण का चलते हुए दिखाई देना]

रावण –(स्वेय) क्या राम ने सचमुच समुद्र पर पुल बांध लिया? क्या वास्तव में वानर सेना पार उतर आई? क्या मनुष्य के लिये इतना विशाल पुल बना लेना सम्भव है? (रुक कर) जलनिधि, नीरनिधि, पयोधि, वारीश, नदीश! (चौकन्ना होकर) हैं! क्या कह गया? आज अचानक दसों शीश का स्मरण क्यों हो आया आज मेरे सारे मुख एक साथ क्यों बोलने लगे? यह उलटी गति किसलिये होने लगी? (सोचकर) हां याद आया। ब्रह्मा जी ने कहा था कि जब तू दसों मुख से एक साथ बोलेगा तप तेरा अन्तिम समय आयेगा और भूमण्डल से निशाचरों का नाश हो जायेगा! ओह! विधाता! क्या तूने यही लिखा था? :—

जीत कर लोकों अलोकों को, सकल संसार को।
दासता में ला के दानव-देव की सरकार को॥
अपने चरणों में झुकाकर स्वर्ग को आकाश को।
हाथ से मानव के मैं पहुंचूंगा अपने नाश का॥

[सिर झुकाकर विचारों में डूब जाना]

दूत—(आकर और प्रणाम करके) महाराज की जय हो! रामादल सुबेल पर्वत तक आ पहुचा है!

रावण—(सिर ऊपर उठाकर) क्या कहा ! सुबेल पर्वत तक ?

दूत—हां महाराज !

रावण—खैर कोई बात नहीं ! तुम जाओ (दूत का जाना) दूत कहता है कि राम सुबेल पर्वत पर आ गये ! निस्संदेह वे बड़े पराक्रमो हैं ! उन्होंने असम्भव को सम्भव कर दिखाया है। वे अवश्य विष्णु का अवतार हैं, उनमें ब्रह्म की शक्ति विद्यमान है ; वे अवश्य निशाचरों का नाश करेंगे (सोचकर) कुशध्वज ऋषि की कन्या को जब मैंने कामातुर होकर सताया था तो उसने कहा था कि मैं काल का रूप बनकर आऊंगी और तेरा वश संसार से मिटाऊंगी ! क्या जानकी उसी का रूप है ? क्या उसके शब्दों के पूरा होने का समय आ गया है ? ओह ! अब मेरे सारे पाप इकट्ठे हो गये, अब मुझ कुकर्मों ने चारों ओर स घेर लिया। निस्संदेह !

बने हैं पाप से पापी बुरा मद से ही होता है।
कलंकित जीव दुनियां में सदा मद से ही होता है ।।
किसी के नाश होने का समय जब निकट आता है।
तो उस अन्धे को दुनियां में सदा ही पाप भाता है ।।

(फिर सोचकर और हंसकर) हैं ! लंकेश रावण और इतनी अधीरता ? देवताओं को पराजित करने वाला योद्धा और ऐसी घबराहट ! भय और मेरे दिल में ? कायरता और मेरे हृदय में नहां-नहीं ? कुछ आत्मा की असावधानो थो जो जाती रही ? कुछ विचारों की खलबलो थी जा समाप्त हो गई ? मैं त्रिलोकी में किसी से डरने वाला नहीं, मेरा साहस किसी संकट में भी बिछड़ने वाला नहीं ? ऐसी-ऐसी समस्याएं तो नित्यप्रति आया करती हैं। ऐसे-ऐसे ध्यान तो कभी-कभी हो ही जाया करते हैं :—

जल, पवन की चाल से पर्वत हिला करते नहीं।
मच्छरों की फूंक से हाथी उड़ा करते नहीं ।।

गीदड़ों की हूक से केहरी डरा करते नहीं।
मकड़ों के सामने योद्धा झुका करते नहीं॥
जिस से दुनियां कांपता हैं स्वर्ग भी भयभीत है।
वह ही डर जाये किसी से शोक है अनुरीत है॥

अच्छा चलूं, अब जरा महल में चलकर इस विषय पर और विचार करूं।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(मन्दोदरी का महल)

मन्दोदरी—(स्वगं) दासी कहती है कि वानर सेना ने सेतु बांध लिया है और रामादल समुद्र पार आ पहुंचा है। आह? अब क्या होगा क्या निशाचार मारे ही जाएंगे? क्या पतिदेव अपने अहंकार का फल अवश्य ही पायेंगे। ठीक है:—

कूदकर अग्नि में बच जाने का फिर साधन कहां?
विष पिये कोई तो फिर उस मूर्ख का जीवन कहां?
जो चलेगा धार पर तेगों की बच सकता नहीं।
राम के बैरी की तीनों लोक में रक्षा नहीं॥

रावण—(आकर) प्रिय! अब युद्ध आरम्भ होने वाला है, अब तो मिलना भी दुर्लभ हो जायगा।

मन्दोदरी—हां सुना है नाथ, कि रामादल सुबेल पर्वत पर आन पहुंचा है। हे स्वामी! मेरी विनती अब भी स्वीकार कर लीजिये! भगवान की शरण में जाकर जानकी को लौटा दीजिये:—

पराया धन है पत्थर सम, पराई नार माता है।
यही नीति भी कहती है यही अनुभव बताता है॥

रावण—प्रिय ! तुम जितना पति-प्रेम को जानती हो उतना राजनीति को नहीं जानती ?

मन्दोदरी—तो आप ही समझा दीजिये :—

कहां की वीरता होगी कहां का नाम पाओगे।
कहां तक मान फैलेगा जो अबला को सताओगे।।

रावण—ओहो ! तुम कैसी अधीर हो गई ! :—

काम लो हिम्मत से प्यारी ! बेखतर, बेडर बनो।
वीर की अर्धाङ्गनी होकर न तुम कायर बनो।।

मन्दोदरी—हे नाथ ! मैं कायर नहीं हूं। परन्तु बैर उसी से अच्छा होता है जिसको अपने बल से जीता जा सके। राम में और आप में तो सूर्य और जुगनू का अन्तर है :—

तोड़ते हो नभ के तारों को समझकर फूल क्यों।
डालते हो चन्द्रमा के मुख पै स्वामी धूल क्यों।।
सांस की गरमी से भी फौलाद गलता है कभी ?
हाथ में सूरज छिपाने से भी छिपता है कभी।।

रावण—(हंसकर) प्रिय ! तुम वृथा ही भय खा रही हो, अपने मन को व्यर्थ ही अधीर बना रही हो ? भला मेरे समान कौन सा योद्धा है; मैंने तो अपनी शक्ति से इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम को भी जीता है :—

नभ को, भूमि, स्वर्ग को पाताल कर सकता हूं मैं।
लोक और परलोक को पामाल कर सकता हूं मैं।।
मैं अगर चाहूं तो भूमण्डल पलट कर छोड़ दूं।
मार कर ठोकर महा पवन का सीना तोड़ दूं।।

मन्दोदरी—ठीक है ! परन्तु आप को ब्रह्मा जी का शाप भी याद है?

रावण—शाप ! ब्रह्मा का शाप ! :—

शक्तियां आजाएं सारे विश्व की मिलकर अगर।
देव, दानव, यक्ष और दिग्पाल सब बदलें नजर।।

सामने आजाय जो यमराज भी खम ठोक कर।
घिर के आ जाएं घटाएं संकटों की शीश पर॥
तो भी दिल मेरा किसी का खौफ खा सकता नहीं।
शाप ब्रह्मा का भी रावण को डरा सकता नहीं॥

मन्दोदरी—महाराज ! जब बुरी घड़ी आती है तो अनुकूल दशा भी प्रतिकूल हो जाती है :—

भाग्य के आधीन हैं सब देव भी अवतार भी।
वक्त के फिरते ही फिर जाता है कुल संसार भी।

रावण—कुछ भी हो परन्तु इस प्रकार की बातों को मैं निराधार मानता हूं; भाग्य के आधीन रहने वालों की मानसिक दुर्बलता को अच्छी तरह जानता हूं :—

दोष देते हैं विधाता को, जो साहस हीन हैं।
कर्म से डरने ही वाले भाग्य के आधीन हैं॥
चक्र को संसार के उलटा घुमा सकते हैं हम।
देखना उलटी हुई किस्मत बना सकते हैं हम॥

मन्दोदरी—क्या बताऊं नाथ ! जब से रामादल समुद्र पार आया है मेरी दाहिनी आंख बराबर फड़का करती है, हृदय बार-बार घबराता और छाती निरन्तर धड़का करती है। रातों को डरावने सपने दिखाई देते हैं, दिन में सियार और कुत्ते भौंकते सुनाई देते हैं। हे स्वामी :—

अब शगुन अच्छे नहीं हैं बात मेरी मानिये।
छोड़िये हट, राम से संग्राम की मत ठानिये॥

रावण—तुम स्त्री स्वभाव से विवश हो, इसलिये तुम्हारा कोई दोष नहीं; परन्तु क्या मेरी शक्ति और वैभव को देखकर भी तुम्हें सन्तोष नहीं :—

अपशगुन के जाल में फंसकर मरी जाती हो क्यों।
वीरबाला होके तुम इतनी डरी जाती हो क्यों॥

देखना अशगुन शगुन सब मूर्खों की बात है।
कोई कर सकता है क्या जब तक कि साहस साथ है।।

मन्दोदरी—ठीक है नाथ ! मैं आपके साहस और पुरुषार्थ को भली प्रकार जानती हूं, जो कुछ आपने कहा सब कुछ सत्य मानती हूं, परन्तु पराई स्त्री को हर कर भी तो अपयश न कमाना चाहिये, निर्दोष को···—

रावण—(बात काट कर) खैर कोई बात नहीं; मैं इस विषय पर विचार कर लूंगा। तुम जाओ आराम करो, मैं भी दरबार जाता हूं !

[रावण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(रावण—दरबार)

रावण—अग्नि का तेज, पवन की चाल और सूर्य का प्रकाश आज सब मद्धम पड़ गये। मेरे क्रोध की आंधी आते ही बड़े-बड़े अभिमानियों के पांव उखड़ गये :—

रुक गये बहते हुए सागर मेरी रफतार से।
गर्जना है मौन बादल को मेरी हुंकार से।।
नाम से आकाश का चक्कर भी थम कर रह गया।
देखकर मेरी नजर कैलाश जम कर रह गया।।

मन्त्री—यथार्थ है महाराज !

रावण—पियो पिलाओ, खुशियां मनाओ ! गाओ बजाओ, रंग जमाओ।

मन्त्री—जैसी आज्ञा श्रीमान् !

[अप्सराओं का आना और नाच]

रावण—साकी ! :—

उड़ती हुई मस्ती तेरे पैमाने से निकले।
वह लालपरी नाचती मैखाने से निकले।।

मन्त्री—ठीक है ! बिल्कुल ठीक है ! :—

पीना पिलाना साकिया कुछ काम आयगा।
दुनिया में जो लुटाएगा जन्नत में पाएगा ॥

मेघनाद—साकी ! :—

छा गई काली घटा चलने लगी ठण्डी हवा।
अब तो दे साकी कि अब पीने का मौसम आ गया ॥

सभासद (१)—दौलत किसी को ऐश का सामान चाहिये।
हम को तो साकिया तेरा पैमान चाहिये ॥

सभासद (२)—दौलत पै मर रहा हूं न आराम के लिये।
दुनिया को छोड़ बैठा हूं इक जाम के लिये ॥

सभासद (३)—गुलजार पीने वालों से वीराना हो गया।
जन्नत वहीं बनी जहां मैखाना हो गया ॥

अप्सराओं का गाना

जब प्रीत की रीत नहीं देखी फिर प्रीत लगाना क्या जानूं !
इस छोटी उमरियां में बालम मैं दिल का लगाना क्या जानूं ?
अबरू की कमानें कैसी हैं, ये तीरे नजर क्या होते हैं ?
जब खेल में बीते दिन मेरे, फिर तीर चलाना क्या जानूं ?
जुल्फें कैसे जञ्जीर बनी गेसू में दिल क्यों फंसते हैं ?
खेला न कभी आखेट कभी मैं दिल का फसाना क्या जानूं ?
क्यों दिन में चैन नहीं पड़ता क्यों रातों नींद नहीं आती ?
दिन खेली रातों सोई हूं मैं जगना जगाना क्या जानूं ?
यह टीस कुशल क्यों होती है दिल क्यों घबराया करता है ?
तुम कहते हो मैं सुनती हूं, पर दिल का फसाना क्या जानूं ॥

रावण—लंका के वीरो ! आप लोगों को ज्ञात ही है कि उन तपस्वियों ने समुद्र का पुल बांध लिया है और अपनी सेना को इस पार उतार लिया है। अब सोचना यह है कि युद्ध की व्यवस्था किस प्रकार की जाय ?

सेनापति—महाराज ! वानरी सेना तो हमारा भोजन है, उनको परास्त करना कौन सा कठिन है ।

मन्त्री—ठीक तो है, यदि आप आज्ञा दें तो सब को पकड़ कर आपके सामने ले आयें या मूली और गाजर की तरह चबा जाए ।

सभासद—महाराज! केवल हमें आज्ञा दे दीजिये और सबका विध्वन्स समझ लीजिये ।

प्रहस्त—अरे कायरो ! जिस समय अकेले वानर ने सारे नगर को जलाया था उस समय उसे क्यों न भोजन बनाया? जिस समय राम के बाण ने मामा मारीच को यम के द्वार पहुंचाया था उस समय उसे क्यों न बचाया ?:

बड़ाई हाँकते हो बल को अपने बैठ कर घर पर ।
न रोका किसलिये उनको बनाया पुल जो सागर पर ॥
किया चौपट नगर का वीर सागर में डबोये थे ।
जलाया जब कि लंका को कहां तुम जा के सोये थे ॥

रावण—प्रहस्त ! जो कुछ कहना है साफ साफ कहो !

प्रहस्त—पिता जी ! दरबारी लोग आपके क्रोध से डरते हैं इसीलिये आपके मुंह पर आपकी बड़ाई करते हैं। याद रखिये कपटी लोग मन में कपट रख कर मीठी मीठी बातें बनाया करते हैं परन्तु जब समय आता है तो मुंह छिपाकर भाग जाया करते हैं :—

वीर बातों के पिता जो काम के होते नहीं;
जो चमकते हैं, हमेशा वे खरे होते नही ।

रावण—तो फिर क्या करना चाहिये ?

प्रहस्त—मेरे विचार में अधर्म से डरना चाहिये, और जानकी को लौटाकर निश्चिन्त राज करना चाहिये !

रावण—तो यह क्यों नहीं कहते कि कायर बन जाऊं ! अपने नाम

पर कलंक लगाऊं और जानकी को लौटाकर संसार में डरपोक कहलाऊं।

प्रहस्त—डरपोक नहीं पिता जी ! आपका कल्याण होगा; परलोक में गति और लोकों में सम्मान होगा !:—

कर्म जिसके नेक हैं और कल्पना गम्भीर है।
वह नहीं कायर कभी वीरों में उत्तम वीर है।।

रावण—अरे धूर्त ! क्या तू भी शत्रु का पक्षपाती हो गया ? द्रोही विभीषण की तरह विश्वासघाती हो गया ?

जन्म लेकर मेरे कुल में नीच पामर बन गया,
कह रही है तेरी बात तू भी कायर बन गया।

प्रहस्त—नहीं पिता जी ! मैं कायर नहीं, आपका सच्चा आज्ञाकार हूं आपके और लंका के लिये हर समय जान देने को तैयार हूं !

रावण—तो फिर ऐसी कायरता की बातें क्यों बनाता है ? रावण का पुत्र होकर नीचता क्यों सिखाता है :—

शत्रुओं से हार कर इस कुल को मत बदनाम कर।
वीर की सन्तान है तो वीर का ही काम कर।।

प्रहस्त—परन्तु पिता जी ! अधर्म को छोड़ कर धर्म को अपनाइये, कुमार्ग से हटकर सत्मार्ग पर आ जाइये और फिर देखिये कि मैं आपके पसीने की जगह किस तरह रक्त बहा दूंगा, यदि यमराज भी सन्मुख होगा तो उसके भी छक्के छुड़ा दूंगा।

रावण—प्रहस्त ! मैं तुम से उपदेश नहीं केवल पितृभक्ति चाहता हूं। यदि तुम मेरी सन्तान हो तो मेरी आज्ञा का पालन करो, शत्रुओं से युद्ध करके उनका दमन करो।

प्रहस्त—हां-हां आप जानकी को लौटाकर युद्ध आरम्भ कीजिये और फिर प्रहस्त का पराक्रम देखिये :—

जानकी पाकर भी जो छेड़गे वे संग्राम को।
मैं अकेला जाके दिखलाऊंगा नीचा राम को।।

युद्ध निर्दोषों मे पर मुझ से किया जाता नहीं।
पक्ष लेकर पाप का लडना मुझे भाता नहीं ।।

रावण—फिर वही कायरता की बात ! फिर वही शत्रुओं का पक्ष-पात अरे नादान ! मेरी आज्ञा से इन्कार न कर ! मुझे अपने स्वाभाविक क्रोध पर तंयार न कर ।

प्रहस्त—कुछ भी हो पिता जो ! झूठो हां में हां नहीं मिलाऊंगा, देखती आंखों लङ्का को पतन की ओर नहीं ले जाऊंगा :—

हर समय तयार हूं लंका की सेवा के लिये ।
जान दे सकता हूं अपने कुल की रक्षा के लिये ।।
झोंक दीजे आग में इच्छा यदि हो आप की।
पर नहीं अपनाऊंगा नीति कभी मैं पाप की ।।

रावण—तो क्या यह हठ नहीं छोड़ेगा ?

प्रहस्त—नहीं !

रावण—राम से युद्ध नहीं करेगा ?

प्रहस्त—नहीं !

रावण—मेरी आज्ञानुसार नहीं चलेगा ?

प्रहस्त—नहों ! इस प्रकार कभी नहीं !

रावण—तो चल ! जहां तेरा विद्रोही चला गया है वहीं तू भी निकल ।

[धक्का देकर निकाल देना]

रावण—मन्त्रियों और सभासदों ! सोचो विचारो और कहो संसार में किस का राज है ?

सब—लंकेश रावण का !

रावण—देवता, गन्धर्व और दैत्यों का कौन महाराज है ?

सब—लंकेश रावण !

रावण—शिव, ब्रह्मा, विष्णु का कौन सरताज है ?

अंगद—(आकर) ओह ! इतना अभिमान ! इतना अहंकार ! इतनी ढिठाई ! :—

हो न अन्धे इस कदर तुम मोह के जंजाल में।
एक दिन पड़ना पड़ेगा काल के भी गाल में॥
दिव्य मुखमण्डल पै होगी मुरदनी छाई हुई।
शान होगी वक्त के पैरों से ठुकराई हुई॥

रावण—हैं कौन ? वानर या मानव सन्तान !

अंगद—देख और पहचान !

रावण—ओह ! निडर वानर ! मृत्यु के ग्रास प्राणी ! तूने हमारे वैभव को इतना भुलाया कि निर्भय होकर दरबार में चला आया सच बता तू कौन है ?

अंगद—बाली का पुत्र, श्री राम चन्द्र जी का दूत।

रावण—बोल क्या कहना चाहता है ?

अंगद—लंकेश ! तुम्हारा कुल श्रेष्ठ है। तुम पुलिस्त मुनि के नाती हो। तुम ने शिव और ब्रह्मा का वरदान पाकर इन्द्रादि देवताओं को जीत लिया है किन्तु वेदों के ज्ञाता होकर ऐसा पाप कर्म किया है :—

हर के लाये जानकी माता नहीं अच्छा किया।
पाप के पथ पर चले,जो कुछ किया बेजा किया॥

रावण—गंवार, सोचकर नहीं बोलता, अमृत के पात्र में विष घोलता है। जानता नहीं कि मैं कौन हूं :—

जिससे भय खाता है नभमंडल वह योद्धा मैं ही हूं।
पूजता है जिसको भूमण्डल वह प्रतिमा मैं ही हूं॥
मै हूं विष्णु विश्व का लोकों का ब्रह्मा मैं ही हूं।
दास हैं जिस के दनुज-दानव वह राजा मैं ही हूं॥
चान्द, तारे, व्योम और पृथ्वी मनाते हैं मुझे।
जल, पवन, अग्नि, वरुण, यम सिर झुकाते हैं मुझे॥

अंगद—हां जानता हूं परन्तु सदैव किसी की नहीं रहती है; मायारूपी नदी सदा एक ही दशा में नहीं बहती है। यदि तुम अपना भला चाहते हो तो मेरी बात सुनो, दान्तों में तिनका दबा, गले में कुठार डाल, आधीनता के साथ जानकी को साथ लेकर प्रभु की शरण जाओ और जो कुछ कर चुके हो उसके लिये क्षमा चाहो!

रावण—नहीं ना!

अंगद—नहीं तो बुरा परिणाम होगा, नरक वास और लोकों में बदनाम होगा!

रावण—अरे नीच! कुल को कलंक लगाने वाले! बाली का नाम मिटाने वाले! तू कहां से हो गया? तेरी माता का गर्भ न गिर गया! तेरे जैसा कपूत पैदा होते ही न मर गया?

शर्म की है बात ऐसे कुल में यह सन्तान हो।
फूल की टहनी में पैदा बज्र और पाषाण हो॥
नाम की घातक बने सन्तान जो मां बाप की।
वह नहीं सन्तान बेशक साक्षी है पाप की॥

अंगद—(कटाक्ष से) ओहो आपको अपने माता पिता के नाम की बड़ी चिन्ता है; तभी तो पराई स्त्री को चुराकर उनकी कीर्ति को उज्जवल किया है:—

क्यों न जग में नाम हो कैसे न फिर कल्याण हो।
धन्य वे मां बाप जिनकी आप सी सन्तान हो॥

रावण—(सीधे भाव से) अरे तू मेरे मित्र का पुत्र है, इसीलिए मैं तेरी बातों का बुरा नहीं मानता हूं बल्कि तुझे अपना हितैषी करके जानता हूं! सच बता बाली तो कुशल से है?

अंगद—शान्ति कीजिये! केवल दस दिन और शान्ति कीजिये। फिर बाली के पास जाकर स्वयं ही राम की शत्रुता का परिणाम पूछ लीजिये:—

कोई दिन में ही लङ्का में अन्धेरा होने वाला है।
दिशाएं कह रही हैं नाश तेरा होने वाला है॥

रावण—अरे दुष्ट! तू क्या बक रहा है? याद रख कि मेरा क्रोध अन्दर ही अन्दर दहक रहा है। तू दूत है:—

नहीं तो एक दम-नामो निशां तेरा मिटा देता।
जबां जो चल रही है उसके सौ टुकड़ बना देता॥
जला देता अगन में जहर का प्याला पिला देता।
पकड़कर रौंद देता काल का भोजन बना देता॥
मसल देता भुजाओं में, डुबा देता समन्दर में।
उड़ा देता बनाकर हड्डियों को राख अम्बर में॥

अंगद—लंकेश! तुम भूल रहे हो, अपनी शक्ति को सबसे अधिक समझकर अभिमान में फूल रहे हो। तुम यह नहीं जानते कि जब राम इधर आएगे, तो सारे बल बिरते धरे ही रह जाएगे।

लगेंगे आके सीने में धनुष से बाण जब तेरे।
समर भूमि में निकलेंगे अधर्मी प्राण जब तेरे॥
तुझे जब काल के प्रहार हर सूरत दबा लेंगे।
लगाकर ठोकरें जब सीस को वानर उछालेंगे॥
पता तब ही लगेगा तुझ को जीवन की कहानी का।
चिङ्गारी आग की थी बुलबुला था एक पानी का॥

रावण—बुलबुला? अरे मूर्ख! क्या रावण का सामना करना बच्चों का खेल है? क्या हाथी का और चिंटी का भी कोई मेल है? जरा यह तो बतला कि तुम्हारी सेना में कौन सा योद्धा है? जिसको देखो वही कमजोर और बोदा है। राम है सो स्त्री के वियोग ने दुखी बनाया है और लक्ष्मण को भाई के सन्ताप ने खाया है। तुम और सुग्रीव दोनों सेना के रखवाले हो हमारे वीरों के सामने कहां ठहरने वाले हो। विभीषण जन्म से डरपोक है, जामवन्त को बुढ़ापे का शोक है। नल-नील को हम

गिनती नहीं मानते, क्योंकि वे शिल्प के सिवा और कुछ नहीं जानते। परन्तु हां वह वानर अवश्य है जो यहां पहले आया था और जिसने अक्षयकुमार को मारकर लंका को जलाया था परन्तु जब समय आयेगा तो उसे भी देखा जायेगा :—

ध्यान में लाऊं तो लाऊं कौन से योद्धा को मैं ?
कीट भृंग जानता हूं वानरी सेना को मैं ॥
कायरो सब काल का भोजन हो मेरे सामने।
मैं हूं अग्नि और तुम ईंधन हो मेरे सामने ॥

अंगद—ओहो ! तुम उस साधारण से वानर को तो इतना गरदानते हो परन्तु प्रभु के बल और पराक्रम को नहीं जानते हो। याद रखो नदी के प्रवाह के सामने तिनका पांव नहीं अड़ा सकता। आकाश में धूल फेंक कर कोई सूर्य को नहीं छिपा सकता :—

जिनकी करुणा लोक और परलोक को प्रतिपाल है।
कोप जिनका जग प्रलय है, काल है, भौंचाल है ॥
मित्रता अमृत है जिनकी, क्रोध जिनका आग है।
जिनका परमानन्द में डूबा हुआ अनुराग है ॥
छेड़ कर उनको ही रावण आग में पड़ता है क्यों ?
बनके अन्धा मूर्ख कुश्ती काल से लड़ता है क्यों ?

रावण—(हंस कर) क्यों नहीं ! आखिर तो वानर ही है। वृक्षों पर रहने वाले पशु और क्या बोल सकते हैं ? उनको तो उत्पात ही प्यारा होता है। अरे कुलकलङ्की ! दुष्ट, पाजी ! तू इतनी निर्लज्जता पर आ गया कि उन साधुओं का पक्ष लेकर अपने पिता को भी खा गया :—

पाप की कालस लगाई तूने [illegible] आन पर।
बेहया ! बेशर्म ! थू है तेरी झूठी शान पर ॥
रक्त से जिसके अरे निर्भाग तू पैदा हुआ।
बन के शत्रु का सहाई उस पिता को खा गया ॥

अंगद—हां पिता को खा गया परन्तु तेरे खाने में इसलिये संकोच है कि तू पिता की प्रसिद्धि का कारण है। दुनिया जानती है कि जिस को बाली ने कांख में दबाया था यह वही रावण है, यदि ऐसा नहीं होता तो।

तख्त को तेरे उलट कर नाश कर देता अभी।
काट कर सिर राम के चरणों में धर देता अभी॥

रावण—ओ मूर्ख ! घमण्डी ! निर्लज्ज ! तूने अभी तक मेरा नाम नहीं सुन पाया है जो इतनी ढिटाई करने पर उतर आया है।

अंगद—नाम ? हां सुना है कि आपका नाम रावण है ! परन्तु एक रावण तो राजा बलि को जीतने के लिये पाताल गया जिसको बालकों ने घुड़साल में बांध लिया और एक रावण कार्तवीर्य के चंगुल में आया जिसको पुलिस्त मुनि ने कठिनता से छुड़ाया। तीसरे रावण को मेरे पिता बाली ने कांख में दबा लिया और सन्ध्या करने तक एक ढले के समान छिपा लिया। अब बतलाइये कि आप उनमें से कौन से रावण हैं।

रावण—(हंस कर) बच्चा है ! नादान है, गहवारे का बालक दुनिया से अनजान है। मूर्ख ! मैं वह रावण हूं जिसने कई बार अपने शीस काट-काटकर महादेव जी का पूजन किया है जिसने अपनी शक्ति से देवताओं को परास्त किया है। जिसके हृदय की कठोरता को समस्त संसार जानता है। जिसके बल और पराक्रम को सारा विश्व मानता है :—

मही डोले, गगन कांपे, कदम मेरे जमाने से।
हिले जाते हैं पर्वत भी जरा सा लब हिलाने से॥
सहम जाते हैं दानव-देव सब आंखें दिखाने से।
हुआ है काल भी भयभीत अब लंका में आने से॥
मेरे आतंक से वैभव कलेजा थाम लेता है।
है क्या गिनती यहां उनकी तू जिनका नाम लेता है॥

अंगद—ओहो ! यदि ऐसे ही वीर थे तो सहस्त्रबाहु को जीत कर क्यों न बल दिखाया ? धनुष तोड़कर क्यों न नाम पाया ? आह ! मैं विवश हूं नहीं तो तुझे भूमि पर पटक, सारी सेना को मार, नगर को चौपट करके मन्दोदरी सहित जानकी को ले जाता :—

सहे हैं सिर झुकाकर आज सब कड़वे वचन तेरे।
पिये हैं विष की घूंटों की तरह पापी कथन तेरे ॥
अगर बनकर न आता दूत तो लेखा चुका देता।
पलों में भाव आटे-दाल का तुझ को बता देता ॥

रावण—धूर्त तेरी इतनी ढिठाई ! मेरे सामने उन तपस्वियों की ऐसी बड़ाई :—

भटकते फिर रहे हैं आज तक नारी की चिन्ता में।
योंही मर जाएंगे रोते बिलखते घोर विप्ता में ॥

अंगद—अभिमानी ! जिनके भय से हजारों अहंकारी कांप गये, जिनकी तीखी चितवन से परशुराम का अभिमान भाग गया, तू उनको डराना चाहता है। जिनके होठों के हिलते ही संसार प्रलयमग्न हो जाता है तू उन पर आतंक जमाता है ! उन्हें साधारण मनुष्य समझता है, प्रभु के कोप से नहीं डरता है :—

बनाया कल्प को इक वृक्ष, दीपक ध्रुव तारा को।
अमरजल को कहा पानी, नदी गंगा की धारा को ॥
शशि को आग, धनु गाय, और चिन्तामणि पत्थर।
कहा पक्षी गरुड़ को और हीरे को कहा कंकर ॥
अधर्मी ! लोक सा बैकुंठ का स्थान बतलाया।
हुआ अज्ञान जो भगवान को इनसान बतलाया ॥

रावण—बस बस, ओ धूर्त चांडाल ! आगे शब्द न निकाल ! नहीं तो जीभ तालू से निकलवा दूंगा, जिनके बिरते पर उछलता फिरता है उनका नाम ही संसार से मिटा दूंगा।

न छोड़ूंगा जगत में ऐसे पापी का निशां बाकी।
उड़ेंगे व्योम में पुरजे न होंगी धज्जियां बाकी॥
बनूंगा क्रोध की बिजली झुलस दूंगा, जला दूंगा।
मिटाकर पल में जीवन लाश कुत्तों को खिला दूंगा॥

अंगद—दुष्ट! इतना अभिमान! मेरे सामने भगवान का यह अपमान!:—

नीच अपने पाप-कर्मों का तमाशा देख ले।
शक्तियां भी छोड़ती हैं साथ तेरा देख ले॥

[भूमि पर हाथ मारना, रावण के मुकट गिरना, अंगद का उन्हें उठाकर फेंकना]

रावण—(भड़क कर) ओह! इतना निर्लज्ज!:—

चढ़ गया सिर पर घमण्डी, नीच पापी, बेहया।
इस कदर बोचल, जो आया जबां पर कह गया॥
याद रख अब भी अगर बकवास करता जायगा।
ठोकरें गलियों में पाजी सीस तेरा खायगा॥

अंगद—मूर्ख! तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती? हमारा पराक्रम देखकर भी तेरी छाती नहीं फट जाती? स्त्री-चोर! कामी! मन्द बुद्धि! पाखण्डी! ले, अपनी वीरता का एक दृश्य दिखाता हूं। तेरे सामने पृथ्वी पर पांव जमाता हूं यदि तेरा कोई वीर इसे उठा देगा तो अंगद सौगन्द खाकर कहता है कि जानकी को हार जायेगा:—

दिशा को भूल कर सूरज अंधेरे में भटक जाये।
रसातल नभ को चल दे चन्द्रमा नीचे सरक आये॥
विमुख हो जाए शंकर और ध्वजा कैलाश की बदले।
समुन्दर सूख जाये और गति आकाश की बदले॥
पवन जलने लगे, अग्नि से जल की धार बह जाये।
कथन झूठा न होगा चाहे गंगा जम के रह जाये॥

(पैर जमाना)

रावण—योद्धाओ ! अब क्या देखते हो, इसका पैर तुरन्त उखाड़ दो
भूमि पर पटक कर इसी दम पछाड़ दो। :—

इस तरह पीसो कि इसका नाम तक ना पा सके।
धूल तक उड़ कर न इसकी रामादल में जा सके।।

सभासद (१)—हुआ है हुक्म जो सरकार का फौरन बजा लाऊं।
उठा दूं पैर पृथ्वी से तभी बलवान कहलाऊं।।

[थक कर बैठना]

सभासद (२)—हिलाऊं पैर क्या सारे को भोजन जान कर खा लूं
अगर हो हुक्म तो इक आन में भूमि हिला डालूं

[हार कर बैठ जाना]

मन्त्री—यह पग तो चीज क्या, फौलाद का खम्बा हिला दूंगा।
हिमाचल की जड़ें भी खोखली करके दिखा दूंगा।।

[जोर लगाकर थक जाना]

सेनापति—नहीं पहुंचा है इस का पग तो भूमि के धरातल तक।
उठाकर फेंक दूं पहुंचा हुआ हो गर रसातल तक।।

[लज्जित होकर बैठ जाना]

रावण—मेघनाद ! :—

देखता क्या है उठा कर फेंक दे आकाश पर।
ता न रोये कोई ऐसे बेहया की लाश पर।।

मेघनाद—देर थी बस हुक्म की अब देर इक पलकी नहीं।
है इशारे की ही केवल बात बल की नहीं।।

[जोर लगा कर थक जाना]

ओह ! :—

एक तिल सरका न पग शक्ति यों ही बरबाद की।
वज्र का खम्बा है मानो लाठ है फौलाद की।।

[हार कर बैठ जाना]

रावण—(उठ कर) हैं ! :—

है कोई जादू या टोना या छलावा है कोई।
देखता हूं पैर है इसका कि धोखा है कोई।।

अंगद—(पांव को उठाकर) बस लंकेश ! :—

बनके क्यों अनजान तू अज्ञान के पथ पर चला।
पांव छूने से मेरे होगा नहीं तेरा भला।।
काम वह कर जिससे निकले शक्ल कुल आराम की।
चाहता है मोक्ष तो जाकर शरण ले राम की।।
जान ले करुणा प्रभु की लोक का कल्याण है।
अन्यथा अब युद्ध का ऐलान है, ऐलान है।।

[अंगद का जाना, रावण का लज्जित होकर बैठना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(राम का शिविर)

राम—समय बहुत हो गया परन्तु अंगद जी लौटकर नहीं आये ! जाने कुशल भी हैं ?

सुग्रीव—महाराज ! बड़े अभिमानी को समझाना है, एक हठधर्मी को राह पर लाना है।

विभीषण—कुछ भी हो, परन्तु उसे समझाना बिल्कुल निराधार है क्योंकि उसके सिर पर तो अहंकार का भूत सवार है !

राम—यह ठीक है, परन्तु हमने तो नीति का पालन किया है, वह माने या न माने यह उसकी इच्छा है !

हनुमान—लीजिये महाराज ? अंगद जी आ रहे हैं।

[अंगद का आना और राम के चरण छूना]

अंगद—महाराज, प्रणाम !

वानर—अरे पाखण्डी ! जरा इधर तो आ, राम को पीछे देखना पहले हमें ही अपना पराक्रम दिखा ।

मेघनाद—अरे भाड़े के टट्टूओ ! तुम मुफ्त में क्यों जान गंवाते हो ? मेघनाद के सामने आकर काल के मुंह में क्यों जाते हो ? जाओ वृक्षों पर कूद-फांद कर फल खाओ और राम-लक्ष्मण को मेरे सामने करके प्राणों का वरदान पाओ :—

जंगलों के तुम पशु तुम को किसी की क्या पड़ी ?
आके मरने दो उसी को जिस के सिर पर आ पड़ी ।।

[युद्ध होना, वानरों में भगदड़ पड़ना]

हनुमान—(आकर) बस-बस ओ अन्यायी मेघनाद ! इतने अभिमान में क्यों आ रहा है ! निर्दोष वानरों को मार कर पाप की संख्या क्यों बढ़ा रहा है ?

मेघनाद—आ ! ओ लंका को जलाने वाले दुष्ट वानर, आ ! उस दिन तू बचकर भाग आया था परन्तु आज न जाने पायेगा, यमपुर पहुंच कर नरक के ईंधन को बढ़ायेगा ।

हनुमान—ओ कुकर्मी ! निर्बलों को सताकर अभिमान में न फूल; बल और वैभव पाकर मौत के दिन को न भूल ।

मेघनाद—हां मैं समझ गया कि तू जब तक उचित दण्ड नहीं पाएगा तब तक सीधी राह पर नहीं आयेगा ।

हनुमान—अच्छा तो आ ! बातें छोड़ और कर्म दिखा ।

[युद्ध होना, विभीषण का आना]

विभीषण—ठहर मेघनाद ! क्या कर रहा है ?

मेघनाथ—ओहो कुलघातक, देशद्रोही चचा ! आओ, मैं तुम से भी हाथ मिलाऊंगा, बड़े भाई को धोखा देने का फल अच्छी तरह चखाऊंगा :—

द्रोह जो तुमने किया है दण्ड उसका पाइये,
वृक्ष जो बोया है विष का,फल भी उसका खाइये।

विभीषण—मेघनाद ! तू अभी बालक है इतने क्रोध में न आ ! अग्नि में कूद कर अपने प्राण न गंवा। याद रख, मैं नीति के विरुद्ध चलना नहीं चाहता हूं; भतीजा पुत्र के समान होता है इसी-लिए तुझे इतना समझाता हूं।

मेघनाद—ओहो ! तुम हमारे बड़े शुभचिन्तक हो जो हमें नीति का उपदेश सुनाते हो मानों उदारता के रूप बन कर दूसरों का कल्याण चाहते हो :—

किया गैरों को अपना, आंख अपनों से बदल बैठे।
जरा नर्मी जहाँ देखी वहीं फौरन पिघल बैठे॥

विभीषण—ठीक है :—

समझ में किस तरह आये फंसे मृत्यु के चक्कर में।
किया उपदेश जो तुम को, लगाई जोंक पत्थर में॥

मेघनाद—पत्थर में जोंक लगाने का स्वाद तो उसी दिन मिल जाता जिस दिन पिता जी के विरुद्ध जबान खोली थी। भरे दरबार में अनुचित वाणी बोली थी; परन्तु क्या बताऊं तुम्हारे भाग्य ही अच्छे थे !

विभीषण—तो तुम कर ही क्या सकते थे !

मेघनाद—यह न पूछो कलंकी चचा ! यदि खैर चाहते हो तो अपना काला मुख मुझे न दिखाओ और दुम दबाकर फौरन भाग जाओ !

विभीषण—युद्ध में भागना तुम जानते हो ! मैं बूढ़ा ही सही परन्तु तुम्हारे लिये फिर भी बहुत हूं !

मेघनाद—अच्छा यह बात है ! तो चल दुराचारी, नीच बेहया अब परलोक की हवा खा।

[युद्ध होना विभीषण का घबराना अंगद का आना]

अंगद—बस-बस क्या करता है नादान ?

मेघनाद—ओहो ! अब आ गये बलवान ! अरे मूर्ख, यह सभा नहीं है संग्राम-भूमि है खेलने की जा नहीं है।

अंगद—हां हां, तूने सभा में तो बड़ा पराक्रम दिखलाया था जो यहां तीर चलायेगा, अरे अभिमानी देख लेना कि यहां भी भागता ही नजर आयेगा :—

वीर था तो कर्म क्यों उस दिन दिखाया था नहीं ?
पैर अंगद का मही से क्यों उठाया था नहीं ॥

मेघनाद—अच्छा यदि ऐसा ही वीर है तो इतना क्यों चिल्लाता है। आगे बढ़, पीछे क्यों हटता जाता है ! :—

[युद्ध होना और किसी का न हारना परदा गिरना]

दृश्य ग्याहरवां

(रामादल की छावनी)

राम—आज के युद्ध को अब तक कोई सूचना नहीं मिली। न जाने मेघनाद परास्त हो गया है या नहीं !

दूत—(आकर और प्रणाम करके) महाराज की जय हो ! मेघनाद बड़ा अनर्थ ढा रहा है, अकेला ही हमारे पक्ष के सारे वीरों को अधीर बना रहा है।

राम—(आश्चर्य से) ओहो ! यह बात है !

दूसरा दूत—(आकर) महाराज की जय हो ! हनुमान, अंगद और विभीषण सभी युद्ध कर चुके परन्तु मेघनाद, अब तक बराबर लड़ रहा है। किसी प्रकार भी गिरने में नहीं आता है !

राम—तो कोई बात नहीं ! मैं अभी चलता हूं !

लक्ष्मण—(हाथ जोड़कर) प्रभो ! आज तो मुझे ही जाने दीजिये :
कृपा करके कुछ मेरा ही उत्साह निकल जाने दीजिये !

राम—प्यारे लक्ष्मण ! तुम्हारे जाने से वैसे तो कोई हरज नहीं, परन्तु मेघनाद बड़ा अनुभवी बलवान है युद्ध कौशल में बहुत सुजान है! इसने देवताओं को जीत कर लंका का दास बनाया है और इन्द्र को परास्त करके इन्द्रजीत नाम पाया है !

लक्ष्मण—तो बात ही क्या है महाराज ! मैंने भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके ऐसे ही शूरवीर को मारने का बीड़ा उठाया है !

राम—हाँ ! यह हम अच्छी तरह जानते हैं।

लक्ष्मण—तो फिर आज्ञा दीजिये ! लक्ष्मण के विषय में कोई चिन्ता न कीजिये ! :—

काल भी जो युद्ध में लड़ने को समुख आयगा।
लक्ष्मण से छूटकर वह भी न जाने पायेगा ।।

राम—अच्छा ! यदि तुम्हारा ऐसा ही उत्साह है तो जाओ, और मेघनाद के सामने अपना पराक्रम दिखाओ; परन्तु सावधान र ना, वह दावघात में बड़ा चतुर है उसके छल से बचते ही रहना !

लक्ष्मण—आप निश्चिन्त रहें !

[लक्ष्मण का जाना परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(समरभूमि)

लक्ष्मण—(आकर) कहां है ? वह अन्यायी रावण का पुत्र, कहां है जिसको अपने बल और पराक्रम पर बड़ा अभिमान है जा समझता है कि वह सारे विश्व में सब से अधिक बलवान है !

मेघनाद—आ ! ओ मौत के खरीदार ! इधर आ मैं तुझे बहुत देर से ढूंढ रहा था। अब तू भी परलोक की हवा खा :—

खेल खेले बालकों में वीर तो पाया न था।
बच रहा था सामने जब तक मेरे आया न था।।

लक्ष्मण—ओ अहंकार के पुतले ! आज मैं तेरा सारा अभिमान धूल में मिलाऊंगा, इन्द्र को जीतने वाली इन विशाल भुजाओं को निष्फल बनाऊंगा :—

आग बरसाते हुए वाणों की बौछारों के बीच।
वीरता की जांच होगी आज तलवारों के बीच ।।

मेघनाद—जा-जा, वीरता की जांच करने वाले मैंने बहुत देखे हैं; बातों के तीर चलाने वाले कर्म के ओछे ही होते हैं :—

कर चुका है बहुत बातें राड़ भी तकरार भी।
जानता है युद्ध करना तो चला हथियार भी ।।

[तीर चलाना]

लक्ष्मण—अच्छा तो ले सम्भल ! :—

जो अब तक मर चुके हैं उनकी अब गिनती बढ़ा जाकर।
किये हैं पाप जो अब भोग ले उनकी सजा जाकर।।

मेघनाद—तो देख ! अब कौन विजय पाता है और कौन परलोक जाकर मरने वालों की गिनती बढ़ाता है। सावधान !

[युद्ध होना, मेघनाद का घबरा जाना]

मेघनाद—(एक ओर होकर) ओह! यह देखने में तो बालक ही दिखाई देता है परन्तु लड़ने में बड़े दांव—घात से काम लेता है। इसने मेरे सारे हथियारों को निष्फल कर दिया; देवताओं को परास्त करने वाली भुजाओं को निर्बल कर दिया। अब यदि वीरघातिनी शक्ति नहीं चलाता हूं तो इसके हाथ से मारा जाता हूं (शक्ति उठाकर) बस लक्ष्मण ! बस ! अब बहत जीत

चुका; अधिक आपे से बाहर न निकल ! चल सीधा यम के द्वार चल ?

क्या खड़ा है सामने कर में धनुष तोले हुए।
आ रहा है देख तेरा काल मुंह खोले हुए।।

[शक्ति चला देना]

लक्ष्मण—(घबरा कर) ओह ! पापी, यह कैसा शस्त्र चला दिया ?

[लक्ष्मण का मूर्छित होकर गिरना, राक्षसों का उनको उठाने की कोशिश करना पर असफल होकर लौट जाना]

वानर—अरे ! यह क्या हो गया ? लक्ष्मण जी तो एक दम मूर्छित हो गये !

अंगद—हाय ! हाय ! बड़ा अनर्थ हुआ ? अब हम प्रभु को क्या उत्तर देंगे ?

सुग्रीव—हे विधाता ! यह क्या कर दिखाया ? सारी आशाओं को ही मिट्टी में मिला दिया।

हनुमान—ओह ! यह क्या ?

भाग्य ने लूटा है किस्मत दे गई धोखा हमें।
देखिये विधना दिखाये दुःख अब क्या-क्या हमें।।
शान्ति सन्तोष के सामान थे सारे गये।
लुट गये भगवान ! जीते जागते मारे गये।।

[लक्ष्मण को उठाकर ले जाना परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(रामादल की छावनी)

राम—हैं। आज मन अधीर क्यों हुआ जाता है ? बार-बार हृदय क्यों घबराता है ? विधाता ! कुशल तो है ? आज कौनसी गति होने वाली है ?

छाती उमड़ रही है, आंसू भी फूटते हैं।
आंखों के सामने कुछ तारे से टूटते हैं।।
मन तिलमिला रहा है सन्तोष खो रहा है।
आता नहीं समझ में क्या भेद हो रहा है।।

[हनुमान का लक्ष्मण को लिये हुए प्रवेश]

राम—(घबरा कर) हैं यह क्या? लक्ष्मण को क्या हो गया?

हनुमान—महाराज! भाग्य फूट गये! आशाएं साथ छोड़ चलीं, तकदीर धोखा दे गई:—

बैठते जिसके सहारे वह सहारा फिर गया।
नाथ! आशाओं पै अपनी आज पानी फिर गया।।

राम—(देखकर) आह! यह तो मर्मस्थान पर चोट आई है जिसने सारी काया ही मृतक के समान बनाई है। (रोना)

हनुमान—हां प्रभो! पापी मेघनाद ने शक्तिवाण चलाया और बड़ा घातक आघात पहुंचाया!

राम—(सिर पिट कर) बस-बस! अब क्या रह गया है? सारा सांसारिक खेल ही समाप्त हो चुका है!

जा सकूंगा अब न वापस लौट कर लंका से मैं।
अब गई दुनिया मेरे से और गया दुनिया से मैं।।

गाना

कर चला बरबाद लक्ष्मण! तू सदा के वास्ते!
लुट गया संसार मेरा सर्वदा के वास्ते।।
मैं तो पहले से ही था भाई सताया भाग्य का।
उठ खड़ा हो मत सता परमात्मा के वास्ते।।
किस के बल साहस पै होगा राम को सन्तोष अब।
याद किस की अब रहेगी चेष्टा के वास्ते।।
घर, नगर, सुख, सम्पदा खोने का मुझ को था न गम।
पर नहीं सन्तोष तुझ बिन आत्मा के वास्ते।।

बोल-बोल ! भाई ! मुझे कहां छोडे जाता है ? एक बार तो बोल !

तुमने घरबार तजा साथ में आने के लिये ।
ठहर मैं भी तो चलूं साथ निभाने के लिए ।।

सुग्रीव—शान्ति कीजिये प्रभो ! शान्ति कीजिये !

राम—शान्ति ! शान्ति तो लक्ष्मण के साथ गई सुग्रीव जी ! अब शान्ति करने का साधन ही कहां है ?

हाय कैसा पाप जीवन में कमाया राम ने !
स्त्री के मोह में भाई गंवाया राम ने ।

लक्ष्मण ! तुम कहां हो ? देखो मैं रो रहा हूं, तुम्हारे वियोग में दुखी हो रहा हूं ! तुम तो मुझे मलीन देखते ही बेचैन हो जाते थे ! क्या आज इतने कठोर बन गये ! बोलो-बोलो कुछ तो बोलो !

मिटाओ इस तरह संसार से मुझको न हे भाई !
करो कुछ तो दया आंखों ने है जलधार बरसाई ।।

गाना (तर्ज—विपत पड़ी भारी, उठ जारे भय्या)

टेक—विकल मन मेरा-धरे नहीं धीर !

अन्तरा १—नगरी छोड़ी, सुख भी छोड़ा किया वनों में डेरा ।
होनी आई साथ यहां भी, आन दुखों ने घेरा,
धरे नहीं धीर……

२—आपत-काल पड़ा मुझ पर था एक भरोसा तेरा ।
क्या सोचा भाई तुमने भी, मुख मुझसे क्यों फेरा ।।
धरे नहीं धीर……

३—धीरज मन को हो कैसे, है संकट शोक घनेरा ।
खोटे दिन आये हैं मेरे, विधना ने दुख गेरा ।।
धरे नहीं धीर……

४—पूछेगी जब मात सुमित्रा—कहां लाडला मेरा ?
क्या उत्तर दूंगा मैं भैया! कुशल सोच मन घेरा।
धरे नहीं धीर……

आह ! अनर्थ हो गया ! सारा जीवन ही व्यर्थ हो गया; हाय ! जानकी को कौन छुड़ायेगा ? आपत्ति के समय मेरा हाथ कौन बटायगा :—

सारी आशाएं गई हैं भाई के जीवन के साथ।
मौत आ जाये मेरी भी काश अब लक्ष्मण के साथ ।।

सुग्रीव—प्रभो ! रोने से आपत्ति कहां टलती है, मुसीबत को जितनी याद करो उतनी ही बढ़ती है।

राम—क्या करूं सुग्रीव जी ! राजपाट और सुख-सम्पदा को छोड़ कर वनों में चला आया, भरत जैसे आज्ञाकारी भाई को निराश लौटाया; पिता का मरण सहा, जानकी का हरण सहा। अब कहां तक सहन करूं, लक्ष्मण का वियोग कैसे दमन करूं।

जिसमें थे आराम के साधन वह दुनिया ही गई।
लक्ष्मण क्या चल दिया जीने की आशा ही गई ।।

गाना

साथी तो छोड़ के चल दिये, पंथी बिचारा रह गया।
नाव नाव भंवर में फंस गई, दूर किनारा रह गया ।।
घर से तो दूर थे ही हम, सहते थे रोज गम पै गम;
जो कुछ था वह भी लुट गया, भाग्य का मारा रह गया।।
रावण को अब हराये कौन ? लंका विजय कराये कौन ?
प्यारी तुम्हें मिलाये कौन, किसका सहारा रह गया ?
करके चले थे हम परण, पापों का हो 'कुशल' दमन।
आशा का दीप बुझ गया, सोच विचारा रह गया ।।

विभीषण—महाराज ! शान्ति से काम लीजिये और लक्ष्मण के प्राण बचाने का कोई उपाय कीजिये।

राम—तो बताओ ! विभीषण जी ! तुम ही कोई उपाय बताओ ! सकट के समय तुम हो कुछ धीर बधाओ

विभीषण—महाराज ! लंका में सुषेन नाम का एक बड़ा प्रसिद्ध वैद्य रहता है। आप किसी को भेजकर उसको बुलवाइये और लक्ष्मण जी की नाड़ी दिखलाइये।

राम—हनुमान जी ! इस समय और कौन जायेगा ! यह कठिन काम और किसी के बस में न आयगा !

हनुमान—तो बात ही क्या है महाराज ! मैं पवन के समान जाता हूं और वैद्य को गृह समेत ही उठा लाता हूं।

[प्रणाम करके जाना]

राम—हे दुःख हरण शोक नाशक भगवान ! इधर भी देखिये हे भय-भञ्जन प्रभो ! मेरी ओर भी निहारिये ! :—

तुम्हें मालूम है सारी खबर जगदीश पल पल की।
दया करना दुखी पर भी बधाना धीर निर्बल को ॥
तेरी करुणा अगर हो तो अभी दुख दर्द खो जाये।
वह आये वैद्य और आते ही जीवन रूप हो जाये ॥

गाना

अब तो खबर लो भगवन, सन्ताप पा रहा हूं।
सकट का हूं सताया, आंसू बहा रहा हूं ॥
जीवन से तंग आकर होकर निराश जग से।
आशा पै इक तुम्हारी, आशा लगा रहा हूं ॥
आपत्तियों की अग्नि चारों तरफ है भड़की।
और बीच में अकेला मैं बिलबिला रहा हूं ॥
आशा की डोर टूटी; पतवार कर से छूटी।
मरने को हूं भंवर में, चक्कर लगा रहा हूं ॥
करुणा अपार कीजे, लक्ष्मण को प्राण दीजे।
अरदास है कुशल की विनती सुना रहा हूं ॥

[हनुमान का सुषेन सहित प्रवेश]

सुग्रीव—(राम से) लीजिये महाराज ! वैद्य जी आ गए हैं !

राम—वैद्यराज ! प्रणाम ! कृपा करके लक्ष्मण की नाड़ी देखिये और यदि हो सके तो रोग का कोई उपचार बतलाइये ।

सुषेन—(नाड़ी देखकर) महाराज ! लक्ष्मण जी के मर्मस्थान पर चोट आई है !

राम—तो क्या इसका कोई उपाय नहीं है ?

सुषेन—उपाय तो है ! परन्तु......

राम—परन्तु क्या ? बतलाइये वैद्यराज ! शीघ्र बतलाइये ! निराशा में डूबते हुए को कुछ तो आशा बंधाइये ।

सुषेन—महाराज ! इस रोग की केवल एक ही औषधि है परन्तु वह यहां नहीं मिल सकती !

राम—और कहां मिलती है ?

सुषेन—उसे संजीवनी बूटी कहते हैं और वह द्रोणाचल पर्वत पर पैदा होती है ।

हनुमान—तो मैं अभी जाता हूं और उसे लेकर शीघ्र लौट आता हूं ।

सुषेन—हां हां जाईये, परन्तु इतना ध्यान रखिये कि इस रोग के रोगी में कुछ ही घण्टे प्राण रहते हैं । यदि आप संजीवनी लेकर प्रातःकाल तक लौट आएगे तो लक्ष्मण के प्राण अवश्य बच जाएगे ।

हनुमान—बहुत अच्छा वैद्यराज ! मैं पवन के समान जाऊंगा और बाण की तरह वापस आऊंगा । परन्तु इतनी कृपा और कीजिये कि उस बूटी की कोई पहचान बतला दीजिये ।

सुषेन—जिस स्थान पर वह बूटी उगती है वह स्थान रात्रि में प्रकाशित रहता है ।

हनुमान—बहुत अच्छा ! अब जाता हूं ।

राम—हनुमान जी ! इस कार्य को अपना ही जानना और शाघ्र लौट आने में ही कल्याण मानना ।

हनुमान—आप निश्चित रहें महाराज ? जरा भी विलम्ब न होगा !

दृश्य चौदहवां

(रावण दरबार)

रावण—पियो पिलाओ ? विजय के उपलक्ष में आनन्द मनाओ और अप्सराओं को बुलवाकर नाच रंग कराओ ?

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज ? (द्वारपाल से) द्वारपाल ? गाने वालियों को हाजिर करो ।

द्वारपाल—जो आज्ञा श्रीमान । (जाना)

मन्त्री—साकी ?

भर-भर के जाम सब को बराबर पिलाये जा ।
मदिरा के साथ-साथ ही मस्ती लुटाए जा ।।

मेघनाद—साकी ! ओ साकी !

बोतल का आज उड़ता हुआ काग चाहिये ।
गम को जलादे आज वही आग चाहिये ।।

साकी—लीजिये महाराज ! ऐसी ही लीजिये !

खिलता हुआ शराब का नक्शा है देखिये ।
बहता हुआ सरूर का दरिया है देखिये ।।

सभासद—साकी ? जरा इधर भी ।

बैठे हुए हैं आस में तोबा को तोड़ कर ।
जाता है किस तरफ को खरीदार छोड़कर ।।

[सबका शराब पीना, अप्सराओं का आना]

अप्सरा— गाना

गुजरी है रात किस तरह जख्मी जिगर से पूछ।
किस दिल पै तीर चल गये अपनी नजर से पूछ॥
तेरे विरह की आग में जलती हूं किस तरह।
मुझ से न पूछ रोज के आठों पहर से पूछ॥
गलियों से पूछ कैसे गुजरता है दिन मेरा।
कटती है रात किस तरह जालिम सहर से पूछ॥
आता नहीं है चैन मुझे रात दिन 'कुशल'।
उठती है दिन में जो मेरे गम की लहर से पूछ॥

रावण—वाह वाह ? आज तो आनन्द लुट रहा है ? खुशी की लहरें आ रही हैं ? मेघनाद ? तू वास्तव में बलधाम है, लक्ष्मण को मारना तेरा ही काम है। अब राम अकेला क्या करेगा, स्त्री और भाई के वियोग में सड़ मरेगा :—

समझ ले आज ओ शत्रु तेरी निश्चय पराजय है।
तुझे कहना पड़ेगा एक दिन रावण तेरी जय है॥

सब—रावण तेरी जय है ?

घनाद—अभी क्या है ! देखते जाइये पिता जी ? एक-एक की छाती को इसी प्रकार तोड़ूंगा जितने लंका पर चढ़ कर आये हैं एक को भी जीवित न छोड़ूंगा :—

जब बिगुल संग्राम भूमि में बजेंगे देखना।
सैंकड़ों अम्बार लाशों के लगेंगे देखना॥

रावण—क्यों नहीं ? मुझे तुम से ऐसी ही आशा है :—

युद्ध में करके पराजित इक न इक दिन राम को,
है मुझे विश्वास तू रोशन करेगा नाम को।

[illegible]—(आकर) महाराज की जय हो ? रामदल में लक्ष्मण के रोग का उपचार किया जा रहा है ?

रावण—(आश्चर्य में) उपचार किया जा रहा है ?

दूत—हां महाराज, संजीवनी बूटी लाने के लिये हनुमान द्रोणाचल पर्वत पर जा रहा है ? यदि वह प्रातःकाल से पहले बूटी ले आयगा तो लक्ष्मण ठीक हो जाएगा।

रावण—कदापि नहीं ! मैं ऐसा न होने दूंगा ! जाओ ! इसी दम कालनेमि को बुला कर लाओ।

दूत—जैसी आज्ञा महाराज ! (जाना)

रावण—यदि लक्ष्मण ठीक हो गया तो अनर्थ हो जायगा; राम को हराना कठिन ही नहीं असम्भव हो जायेगा।

कालनेमि—(आकर और प्रणाम करके) क्या आज्ञा है महाराज !

रावण—देखो कालनेमि ! तुम लंका के पुराने हितैषी और हमारे आज्ञाकार हो। साथ ही साथ कपट की चालों में होशियार हो। इसलिये तुरन्त चले जाओ और कपट का कोई गहरा जाल फैलाओ !

कालनेमि—क्या करना होगा महाराज !

रावण—देखो ! हनुमान संजीवन लेने के लिये द्रोणाचल जा रहा है। तुम मार्ग में पहुंच कर कोई मायावी जाल फैलाओ और हनुमान को चालों में फंसाओ, जिससे वह पर्वत पर न पहुंचने पाये और सूर्य निकल आये।

कालनेमि—जैसी आज्ञा महाराज !

रावण—देखो ! यदि यह काम बनाकर लाओगे तो मुंह मांगा पुरस्कार पाओगे। जाओ !

[कालनेमि का प्रणाम करके जाना, परदा गिरना]

दृश्य पन्द्रहवां

(रास्ता)

कालनेमि—द्रोणाचल पर्वत को जाने का मार्ग यही है। इसलिये मैं

यहां माया का एक सरोवर, मन्दिर तथा सुन्दर बागीचा बनाकर साधुवेश में अपना आसन जमाता हूं और पवन सुत को बातों में लगाता हूं।

[कालनेमि का सरोवर आदि बनाकर साधु वेश में बैठ जाना और गाना]

गाना

दयासिन्धु करुणा का भण्डार तू है।
निराधार जीवों का आधार तू है॥
सगुण और निर्गुण, दिगम्बर, उजागर।
है साकार तू ही निराकार तू है॥
रचाई है सृष्टि यह माया ने तेरी।
अनेकों ही लोकों का करतार तू है॥
करेगा तू ही पार भव सिन्धु से भी।
कुशल मेरी नौका की पतवार तू है॥

[हनुमान का प्रवेश]

हनुमान—अहा प्यास बहुत लग रही है और कुछ-कुछ थकान भी होने लगी है। सामने किसी मुनि का सुन्दर आश्रम जान पड़ता है इसलिये कुछ देर को वहीं चलूं और मुनि से पूछ कर जल पीऊं (जाना)

कालनेमि—(हनुमान को आते देखकर) जय! कौशलाधीश श्री रामचन्द्र की जय! संकट मोचन, पतित पावन भगवान की जय!

हनुमान—(हाथ जोड़कर) मुनिवर प्रणाम!

कालनेमि—जीवित रहो! कल्याण हो!

हनुमान—मुनिराज! आजकल राम-रावण संग्राम हो रहा है इस का क्या परिणाम निकलेगा?

कालनेमि—हां! यह संग्राम मैं अपनी ज्ञानदृष्टि से साक्षात देख रहा

हूं ! इस युद्ध में निस्सन्देह राम की जीत होगी और दुष्टों का सहार होगा !

हनुमान—धन्य हो महाराज। अच्छा मुनिवर ! मुझे प्यास बहुत लग रही है। यदि कुछ जल हो तो मेरी तृष्णा बुझा दीजिये।

कालनेमि—(कमण्डल देकर) लो। इसमें कुछ जल है। इसे पीकर अपनी प्यास बुझा लो ! और फिर उपदेश लो।

हनुमान—महाराज ! इस थोड़े से जल से मेरी तृप्ति नहीं हो सकती।

कालनेमि—अच्छा तो सामने सरोवर पर चले जाओ और अच्छी तरह अपनी प्यास बुझाओ। परन्तु लौटकर फिर मेरे पास आना, और गुरुमन्त्र लेते जाना।

हनुमान—बहुत अच्छा मुनिवर।

[हनुमान का सरोवर में घुसकर जल पीना और डाकनी का पांव पकड़ना]

हनुमान—हैं। मेरे पैरों से यह कौन चिपट गया।

[हनुमान का पैर से दाबकर डाकिनी को मारना और उसका दिव्य शरीर पाकर प्रकट होना]

डाकिनी—धन्य हो। रामभक्त हनुमान आप को धन्य हो।

हनुमान—हैं ! तुम कौन हो ? और यहां किस प्रकार आई हो ?

डाकिनी—हे नाथ ! मैं स्वर्ग की अप्सरा हूं। मुनि के शाप से डाकिनी बनकर इस सरोवर में पड़ी हुई थी, आज आप के चरण छूकर मेरा कल्याण हो गया। देखिये महाराज ! वह मुनि नहीं है रावण का भेजा हुआ राक्षस है जो आपके मार्ग में बाधा डालने के लिये कपट का वेश बनाकर बैठा हुआ है। आप इससे सावधान रहिये, मैं अपने लोक को जाती हूं।

[डाकिनी का जाना और हनुमान का मुनि के पास आना]

कालनेमि—आओ पुत्र बैठो ! अब मैं तुम्हें गुरुमन्त्र देता हूं।

हनुमान—नहीं महाराज ! पहले गुरू दक्षिणा ले लीजिये और फिर उपदेश दीजिये ! (मुष्टिक मारना)

कालनेमि—अरे रे रे। मैं तो मर गया। दुष्ट का साथ देने का फल अच्छी तरह मिल गया।

[कालनेमि का मरना और हनुमान का आगे बढ़ना, परदा गिरना]

दृश्य सोलहवां

(द्रोणाचल पर्वत)

हनुमान—(आकर और चारों ओर अच्छी तरह देखकर) हैं ! यहां तो सारी बूटियां समान दिखाई देती हैं। संजीवनी तो पहचानी ही नही जाती। अब क्या करूं ? कौन सी बूटी ले चलूं। हे विधाता बड़ी दुविधा में पड़ गया हूं। हाय ! हाय ! अब किस से पूंछू ? कहां जाऊं ?

गाना **(महाशोक में)**

बता दे कोई अब सँजीवन कहां है ?
मेरे प्राणजीवन का जीवन कहां है ?
सभी बूटियाँ जगमगा सी रही हैं ?
मैं ढूंढू कहां सुख का साधन कहां है ?
घुला जा रहा हूं इसी शोक में मैं।
संजीवन नहीं है तो लक्ष्मण कहां है !
जिसे देख दिल की कली मुस्कराये।
वह आशाओं का मेरी उपवन कहां है ?
उसे ला के छोड़ूंगा इक बार कह दे।
लखन ! तेरे जीवन का साधन कहां है ?

(आकाश की ओर देखकर) हे विधाता, मुझे मार्ग दिखलाओ !

मेरी सहायता करो। (कुछ सोचकर) हां यही ठीक है अब अधिक देर न करूं और सारे पर्वत को उठा ले चलूं। परन्तु रात थोड़ी रह गई है भूमि मार्ग से चलने में अधिक समय लगेगा इसलिये आकाश मार्ग से चलना चाहिये

[पर्वत को उखाड़ कर आकाश मार्ग से उड़ना, परदा गिरना]

दृश्य सत्रहवां

(अयोध्या में भरत का आश्रम)

भरत— गाना (लहद में रोशनी के…)

कहां सन्तोष हो जब राम का दर्शन नहीं होता;
सरोवर में बिना जल मीन का जीवन नहीं होता।
वह मन्दिर क्या है खण्डहर है न जिसमें देव की प्रतिमा;
वह घर अंधेर है दीपक जहां रोशन नहीं होता।
अयोध्या दीन बेचारी बनी है शोक–घर सारी;
रहें क्या प्राण ही प्राणों का जब साधन नहीं होता।
प्रजा सन्ताप सहती है दुखी दिन रात रहती है;
यही होता भी है जब राज़ का बन्धन नहीं होता।
दयासागर दया कीजे कुशल को शान्ति दीजे;
विरह सन्ताप अब मुझसे सहन भगवन नहीं होता।

(आकाश में देखकर) हैं! यह आकाश मार्ग में कौन जा रहा है यह तो बड़ा ही विशाल पर्वत उठाकर ला रहा है। प्रतीत होता है कि कोई राक्षस है जो प्रभु को आघात पहुंचाने के लिये बढ़ा जा रहा है। और उन पर गिराने के लिए पर्वत उठाए जा रहा है अच्छा अब बिना गांसी का वाण मार कर इसे नीचे गिराता हूं अपने मन का सन्देह मिटाता हूं।

[भरत का वाण मारना, हनुमान का नीचे गिरना]

हनुमान—आह राम। मैं विवश हो गया। अब प्रातःकाल से पहले आप के पास कैसे पहुंच पाऊंगा ? क्षमा करना ! हे प्रभु ! क्षमा करना ! (मूर्छित हो जाना)

भरत—(घबराकर) हैं ! यह कौन ! राम का भक्त ! बड़ा अपराध हुआ, बडी भयंकर भूल हुई। (हनुमान के मुख पर जल डालना) हे विधाता ! क्या मैं सारे जीवन राम से बैर ही करता रहूंगा, क्या प्रभु के कुछ भी काम न आऊंगा ! (बैचेन होकर) सुनो! हे कपि राज, सुनो, यदि मैं मन, कर्म, वचन से प्रभु के चरणों में प्रीति रखता हूं। यदि मैंने स्वप्न में भी राम का बुरा नहीं विचारा है तो तुम बाण की चोट से मुक्त हो जाओ और सारी थकान खोकर प्रभु का समाचार सुनाओ।

[हनुमान का सचेत होकर बैठ जाना]

हनुमान—जय ! कोशलाधीश प्रभु राम चन्द्र की जय !

भरत—जय ! भगवान राम की लाखों बार जय! कहो ! कपिराज! तुम कौन हो ? और यह पर्वत उठाए हुए कहां जा रहे हो।

हनुमान—कुछ न पूछो महाराज ! इस समय प्रभु राम चन्द्र जी पर महान संकट आया हुआ है। मेघनाद ने लक्ष्मण को शक्ति वाण से मूर्छित कर दिया है; मैं उनके लिये संजीवन ला रहा था और सीधा लंका को चला जा रहा था। हे तात् ! मैं किष्कन्धा नरेश सुग्रीव का मन्त्री पवनसुत हनुमान हूं।

भरत—(दुखी होकर) हा देव ! मैं कितना अभागा हूं ! मैंने संसार में जन्म ही क्यों लिया ?

किये हैं पाप ही अब तक न मुंह देखा भलाई का।
जगत में कौन भाई इस तरह शत्रु है भाई का॥

हनुमान—महाराज शान्ति कीजिये ! और मुझे लौट जाने की आज्ञा दीजिये। यदि समय निकल जायगा तो लक्ष्मण का सचेत होना असम्भव हो जायगा।

भरत—कपिराज ! तुम्हें जाने में देर लगेगी इसलिये पर्वत सहित मेरे वाण पर बैठ जाओ और तुरन्त लंका में पहुंच कर प्रभु का संकट मिटाओ !

हनुमान—नहीं महाराज ! मैं आप के प्रताप से वाण के समान ही जाऊंगा, प्रभु के वास्ते पवन बन जाऊंगा ।

भरत—अच्छा प्यारे ! अब देर न लगाओ और तुरन्त चले जाओ !

[हनुमान का जाना, परदा गिरना]

दृश्य अट्ठारहवां

(रामादल की छावनी)

राम— **गाना** **(सोहनी)**

उठ लगो भाई गले से दुख सहा जाता नहीं ।
आंख से आंसू बहे, सन्तोष मन पाता नहीं ।।
देख सकते थे नहीं व्याकुल मुझे तुम लक्ष्मण ।
ध्यान तक तुम को मेरे रोने पे अब आता नहीं ।।
तू ने जिस भाई के कारण तज दिये माता पिता ।
सच बता दे भ्रात क्या अबवह तेरा भ्राता नहीं।।
मार कर सुख-सम्पदा पर लात तू आया लखन ।
अब तेरा आँखें बदलना क्या सितम ढाता नहीं ।।

लक्ष्मण ! मेरे जीवन के आधार लक्ष्मण ! मेरी कामनाओं के चित्र लक्ष्मण, तुम कहां हो ? तुम्हारा वह सच्चा प्रेम कहां है ? :—

सहन संकट किये दुनिया के मेरे वास्ते तूने ।
चुने हैं फूल ही श्रद्धा के मेरे वास्ते तूने ।।
बता दे आज तू ही सोचकर वह प्यार क्या भूलूं।
तेरे उपकार हैं मुझ पर तेरा उपकार क्या भूलूं ।

सुग्रीव—महाराज ! इतने व्याकुल तो न होइये !

राम—व्याकुल कैसे न होऊं सुग्रीव जी ! मेरा अब कौन है जो मन को धीरज बंधायेगा ! हाय-हाय ! ऐसा आज्ञाकार भाई कहां से आयगा ? :—

सुखी के लाख साथी हैं नहीं दुख का सहाई है।
सभी मिलता है पर मिलना बड़ा दुश्वार भाई है ।।

विभीषण—यह तो ठीक है महाराज ! परन्तु रोने से क्या फल मिलेगा धैर्य खोने से क्या परिणाम निकलेगा ?

राम—क्या बताऊं विभीषण जी !

दिया था हाथ में भाई का मेरे हाथ माता ने।
किया था प्रेम से हम को विदा इक साथ माता ने।।
बताओ अब वहां मैं कौनसा मुंह लेके जाऊंगा।
पता पूछेंगी लक्ष्मण का तो मैं फिर क्या बताऊंगा ।।

विभीषण—फिर भी इतने घबराने की बात ही क्या है महाराज ! हनुमान जी संजीवन लेने के लिये गये ही हैं। अब केवल उनके आने की देर है !

राम—(आकाश की ओर देखकर) यह तो ठीक है, परन्तु वह देखो ! पूर्व दिशा में हलकी-हलकी लालिमा नजर आने लगी है जो प्रातःकाल के समीप होने की सूचना बताने लगी है। आह ! अब क्या होगा? यदि अब भी हनुमान न आये तो क्या होगा? आह विधाता !

गाना

गुजरती हुई रात भी जा रही है।
यह पापिन सितम पर सितम ढा रही है।।
उमीदों का दीपक तो गुल हो रहा है।
निराशा की काली घटा छा-रही है ।।

लगी डगमगाने सी जीवन की नौका।
प्रलय-काल आंधी चली आ रही है।।
उधर डब-डबाने लगे हैं सितारे।
इधर बेबसी भैरवी गा रही है।।
'कुशल' अब पवन-सुत की पल-पल की देरी।
मुझे काल का रूप दिखला रही है।।

बोलो लक्ष्मण ! अब तो बोलो ! हे भाई अब तो मौन खोलो आह ! मैं क्या जानता था कि वन में भाई का वियोग होगा यदि यह जानता तो पिता के वचनों को भी न मानता ! :—

बुरा बनकर ही जी लेता सहन करता बुराई को।
जगत की गालियां सहता, मगर खोता न भाई को।।

सुग्रीव—(हनुमान को आते देखकर) लीजिये महाराज ! वह देखिये हनुमान जी चले आ रहे हैं ! ओहो ! कैसी शीघ्रता से पांव बढ़ा रहे हैं।

राम—(देखकर) आये ! आये ! और मेरे जीवन का सन्देश भी लाये ?

[हनुमान का प्रवेश]

सब वानर—(प्रसन्न होकर) बोलो भगवान राम की जय ! पवनसुत हनुमान का जय !

हनुमान—(राम के चरणों में गिर कर) भगवन् प्रणाम !

राम—धन्य हो ! केसरी नन्दन ! तुम धन्य हो !

सुषेनवैद्य—लाइये हनुमान जी ! सजीवन लाइये ! अब और देर न लगाइये !

हनुमान—वैद्यराज ! मैं संजीवन को पहचान न पाया इसलिये सारा पर्वत ही उठा लाया। अब बूटी की पहचान स्वयं कर लीजिये और लक्ष्मण को प्रणदान दीजिये !

सुषेन—(बूटी को लक्ष्मण के मुख में निचोड़ कर) लक्ष्मण जी अब चेत जाइये।

लक्ष्मण—(उठकर) कहां है ? वह अभिमानी मेघनाद कहां है ?

राम—शान्त ! भाई लक्ष्मण ! शान्त । तुम ने नया जीवन पाया है, शक्तिवाण के आघात से अभी होश आया है । क्रोध में न भरो ! थोड़ी देर शान्त होकर आराम करो !

सब—बोलो, मंगलकारी भगवान की जय !

हनुमान—चलिये वैद्यराज! अब मैं आपको नगरी में पहुंचा आता हूं ।

(हनुमान का सुषेन को लेकर जाना)

[आरती पर ड्राप सीन]

ग्यारहवां अंक

दृश्य पहला

(अशोक वाटिका)

[राम के वियोग में सीता जी दुखी हैं, राक्षसियां पहरा दे रही हैं]

सीता— गाना (मल्हारराग)

स्वामी तुम बिना रैन कटी ना बिलक-बिलक कर भोर भई है।
दामनि दमके, मेघा बरसे-विरहिन का जीयरवा तरसे,
नन्हीं नन्हीं पड़त फुवारं, कोयल बन में कूक रही है।
स्वामी तुम बिन......
कैसे काटूं रैन अन्धेरी-सुख देखा ना दुख ने घेरी,
न कछु तुमरा मरम है जाना, ना कुछ मन की आप कही है,
स्वामी तुम बिन......

[रावण का प्रवेश]

रावण—कहो जनकनन्दनी ! क्या विचार है ? मेरा कहना मानती है या मौत स्वीकार है ?

सीता—मौत !

रावण—क्यों ?

सीता—इसलिये कि :—

मौत आ जाये तो छूट जाऊं विरह जजाल से।
मेरे बन्धन कट सकें तो कट सकेंगे काल से ॥

रावण—सीते ! क्या तू पागल हो रही है जो उन तपस्वियों की याद में प्राण खो रही है :—

यदि इक बार 'हां' कहने में तेरे होंठ हिल जायें।
तो सब आराम दुनिया के तुझे जीवन में मिल जायें॥

सीता—तो क्या आराम का लालच देकर मुझे सत-धर्म से गिराना चाहता है? सुखों का जाल फैला कर झूठी वासनाओं में फंसाना चाहता है? ओ अधर्मी :—

पाप करके लोक और परलोक में रुसवा न बन।
वासनाओं में अरे पापात्मा अन्धा न बन॥
राज-वैभव, भोग और सुख-सम्पदा को वार दूं।
धर्म के आगे तेरी लंका पै ठोकर मार दूं॥

रावण—अहंकार की प्रतिमा! धर्म की ठेकेदार! मैं फिर कहता हूं कि लंका के ऐश्वर्य पर लात न मार। नहीं तो मुझे शस्त्र उठाना पड़ेगा, जिस युक्ति को मैं अच्छा नहीं समझता उसे ही काम में लाना पड़ेगा :—

सिर झुका कर मान ले कहना मेरा, जिद्दी न बन।
काम ले बुद्धि से अभिमानी न बन, क्रोधी न बन॥
फल सी काया पै यह अन्याय, तू ढाती है क्यों?
राम के सन्ताप में घुल-घुल मरी जाती है क्यों?

सीता—बस-बस! ओ अधर्मी! रहने दे! मैं ऐसे उपदेश सुनना नहीं चाहती। जानकी को राम के अतिरिक्त संसार की कोई वस्तु नहीं सुहाती :—

राम ही जीवन है मेरे, राम ही आराम हैं।
सब के सब नारी हैं जग में पुरुष केवल राम है॥

रावण—सीते! तू बड़ी हठीली और अभिमान की पुतली है। ऐसी मूर्ख स्त्री मैंने संसार में आज तक नहीं देखी है :—

सीता—और तेरे जैसा अधर्मी तथा दुराचारी भी देखने में नहीं आया है :—

क्यों कुकर्मों पर कमर बांधे हुये तैयार है।
देख मुंह खोले हुए पापी नरक का द्वार है॥

गाना

रावण किसी का दबदबा जग में सदा रहा नहीं;
ऐसा खिला है गुल कहां ? धूल में जो मिला नहीं।
चंचल हो चाहे धीर हो, कायर हो, चाहे वीर हो,
आया जगत में कौन जो आके यहां से गया नहीं ?
जीवन के मौत साथ है, बीता जो दिन तो रात है,
बदली हैं रंगतें यहां नक्शा कोई जमा नहीं ?
पापी भी बन सितम भी ढा, चाहे जिसे जिला मिटा,
जब तक कि दुष्ट काल का, घंटा तेरा बजा नहीं।
बुझता हुआ दिया है तू, पानी का बुलबुला है तू ।।
मौत का खेल है कुशल कौन है जो मिटा नहीं ।।

रावण—बस बस ! ओ नादान ! ऐसे कठोर शब्द जबान पर न ला। मेरे सोते हुए क्रोध को न जगा :

याद रख अब भी न सीधी राह पर जो आयगी।
तेरी हठधर्मी के कारण जान तेरी जायगी ।।

सीता—क्या कहा ? जान जायगी ? :—

एक दिन मरना है सब को मौत की चिन्ता ही क्या।
धर्म जो रह जाये तो फिर जान की परवा ही क्या ।।

रावण—अरी नादान ! देख !

धूम है लोकों अलोकों में मेरी तलवार की
गूंजती है विश्व में आवाज जय जय कार की।।
पल रहे हैं जल, पवन, यमराज रक्षा में मेरी,
देवता, दिगपाल, सब रहते हैं सेवा में मेरी ।।

सीता—तभी तो तू अन्धा बना हुआ है। अरे अभिमानी ! हृदय की आंख खोल कर तो देख कि संसार में कितने बड़े-बड़े बलवान हो बीते हैं, परन्तु आज न वे हैं न उनके बल बिरते हैं :—

मिलाये खाक ने सब को ही आखिर रंग में अपने।
जब आई मौत तो लेकर ही मानी संग में अपने ।।

रावण—अच्छा ! तो तू अपनी हठ से बाज न आयगी। मेरी शक्ति के सामने सिर नहीं झुकायगी ?

सीता—आर्य ललनाएं शक्ति से नहीं धर्म से डरती हैं :—

यह कलेजा वह नहीं डर जाए जो करवाल से।
नारियां भारत की हर दम खेलती हैं काल से ।।

रावण—(दांत पीस कर) हां-हां मैं तुझे अभी काल से खिलाता हूं। इस कोमल काया को पीस कर लंका की धूल में मिलाता हूं :—

मुद्दतों तक जो यहां की खाक छानी जायगी।
ढूढने से भी न लँका में निशानी पायगी ।।

[तलवार सूंत कर आगे बढ़ना, एक दूत का आना]

दूत—महाराज की जय हो ! ढूंतभू हाजिर होना चाहता है।

रावण—(रुककर) ढूंतभू ? हां-हां ठीक है। आने दो ! (सीता से) देख ! ओ हठीली नादान ! तूने अपनी हठ से क्या लाभ उठाया आखिर तेरे कारण आज राम भी युद्ध में काम आया।

सीता—हैं ? क्या कहा ? राम ?

रावण—हां-हां राम। तेरे और मेरे प्रेम में जो रोड़ा था उसे ढूंतभू ने हटा दिया, अर्थात आज के संग्राम में राम का सिर उड़ा दिया !

सीता—आह विधाता ! आज मैं क्या सुन रही हूं !

रावण—सुनना किसका ! ले देख ! अपनी आंखों से देख !

[ढूंतभू का राम का बनावटी सिर लेकर आना, सीता का देखकर घबराना]

सीता—आह भगवान ! :—

क्या रहा दुनियां में जब प्राणों का प्यारा चल दिया।
किस तरह जीवन हा जीवन का सहारा चल दिया॥

[मूर्छित होकर गिर पड़ना]

रावण—(त्रिजटा से) देखो त्रिजटा ! सीता बेहोश हो गई है। जब यह होश में आये तो इसे अच्छी तरह समझाना और हमारे वैभव तथा राम की मृत्यु का विश्वास दिला कर अपने काबू में लाना।

त्रिजटा—जैसी आज्ञा महाराज !

[रावण का प्रस्थान]

त्रिजटा—(सीता के मुख पर जल छिड़क कर) सावधान ! बेटी सीता, सावधान ! संकट टल गया; तुम को सताने वाला रावण चला गया।

सीता—(होश में आकर) आह विधाता ! ये अन्यायी प्राण अब भी क्यों नहीं निकलते ! पापी काल अब भी क्यों नहीं आता !

सुख गया, वैभव गया, जीवन की इच्छा भी गई।
रह गया अब क्या मेरा, मिलने की आशा भी गई॥

[सिर पीटना]

त्रिजटा—सीता ! बावली क्यों हो रही है ? रावण के कपट में आकर वृथा ही प्राण खो रही है। भला भगवान को मारने वाला संसार में कौन है ?

सीता—मन तो मेरा भी यही कहता है माता जी ! परन्तु सिर अवश्य राम का ही था !

त्रिजटा—हां द्वैतभू ऐसी ही वस्तुएं बना देता है कि बिल्कुल असली में मिला देता है। यह लंका का प्रसिद्ध कलाकार है और

बनावटी वस्तुएं बनाने में बड़ा होशियार है। तुम कोई चिन्ता न करो और ऐसी नीच मौत न मरो।

सीता—हां ! माता जी, अब मुझे तुम्हारे कहने पर विश्वास आ गया !

गाना

दरश दो स्वामी प्राणाधार !
संकट मोचन, कष्ट निवारण-भय भंजन भरतार !
दरश दो······
मन कलपावे, चैन न आवे-विरहिन को विरहा तड़पावे !
नैनों से बहती है स्वामी ! निस दिन जल की धार।
दरश दो······
रावण पापी दुष्ट कुकर्मी-दारुण दुख देता है अधर्मी,
केवल आशा चरण कमल की जीवन राखन हार।
दरश दो······

[परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(रावण का दरबार)

रावण—अहा हा ! लंका की शान भी क्या शान है :—
बन चुके हैं दास मेरे रंक से भूपाल तक,
जा गड़ी है नींव मेरे राज्य की पाताल तक।
सामने जो आगया फौरन मसल डाला गया,
सिर उठाया जिसने उस का सिर कुचल डाला गया।।

मन्त्री—यथार्थ है महाराज ! :—
जिस तरफ देखो उधर लंकेश की सरकार है।
सारे भूमण्डल में गूंजी आज जय जयकार है।।

रावण—हमारा विश्वास है कि शक्ति-बाण अवश्य अपना काम करेगा और लक्ष्मण कायर की मौत करेगा। इसलिये पियो

पिलाओ, आनन्द मनाओ और कल लक्ष्मण की तरह राम को भी ठिकाने लगाओ :—

युद्ध भी चलता रहे आनन्द का दरबार भी।
रण के बाजे भी बजे पायल की हो झङ्कार भी।।

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज ! (द्वारपाल से) द्वारपाल ! अभी जाओ और अप्सराओं को बुला कर लाओ !

द्वारपाल—जो आज्ञा महाराज ?

[अप्सराओं का आना, नाच होना]

रावण—साकी ! जल्दी लाओ :—

वह जाम पिला साकी मस्ताना बना डाले।
अपनी न खबर हो कुछ दीवाना बना डाले।।

मेघनाद—साकी :—

पीते ही बहक जाऊ अन्दाज वह करके ला।
मस्ती को दो आलम की इक जाम में भरके ला।।

सभासद—साकी ! इक नजर इधर भी :—

अप्सराओं का गाना

तेरे प्याले में ऐ साकी ! अजब मस्ती की दुनिया है।
कोई दीवाना बहका है कोई मदहोश बैठा है।।
किसी सरदार ने बोतल दबा रखी है पहलू में।
कोई प्याला उठाये हाथ में अपने को भूला है।।
गरेवां फाड़कर अपना किसी ने कर लिया दामन।
कोई पीने पिलाने के लिये साकी से उलझा है।।
किसी का है तकाजा साकिया भर-भर के लाये जा।
कोई पीकर उठा है और फिर पीने को बैठा है।।

रावण—वाह वाह ! संगीत भी क्या जादू है ?

दूत—(आकर) महाराज की जय हो ! लक्ष्मण की मूर्छा खुल गई। अब शत्रु फिर युद्ध की तैयारी कर रहे हैं।

रावण—क्या कहा ? मूर्छा खुल गई !

दूत—हां महाराज ?

रावण—अनर्थ हो गया ! बना बनाया सब काम बिगड़ गया।

मेघनाद—कुछ परवाह नहीं ! जिन भुजाओं ने उसे मूर्छित किया था, वे अब उसको सुरपुर पहुंचायेंगी।

रावण—नहीं ! पहले मुझे सोच लेने दो ! सब लोग जाओ और आराम करो !

[सब का जाना]

रावण—(स्वयं) ओह ! अफसोस !

गाना

मुकद्दर का पांसा पलटने लगा है।
जो बन बन के कारण बिगडने लगा है।।
जिसे हमने नाचीज समझा था दिल में।
वह नाचीज ही अब अकड़ने लगा है।।
हुआ लक्ष्मण का दोबारा जो जीवन।
मेरे दिल का साहस बिछड़ने लगा है।।
शगुन दे रहे हैं बुरे अब दिखाई।
कलेजा भी हर दम धड़कने लगा है।।
उधर गाये जाते हैं गाने कुशल के।
इधर साज गम का फड़कने लगा है।।

क्या मालूम था कि शक्ति भी निष्फल हो जायगी। आशाओं पर निराशा छा जायगी ! अब क्या करूं ? आये हुए संकट को कैसे टालूं ! (सोच कर) बस-बस अब यही उचित है कि कुम्भकर्ण के शयन गृह में जाऊं और उसे जगा लाऊं। यदि वह युद्ध भूमि में चला जायगा तो काल के समान सब को खा जायगा !

[रावण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(कुम्भकर्ण का शयनगृह)

[कुम्भकर्ण सो रहा है, ढोल, बाजे आदि बज रहे हैं, कुम्भकर्ण जागता है।]

कुम्भकर्ण—हैं ! वह पापी कौन है जिसने मुझे कच्ची नींद जगाया है !

रावण—(नम्र भाव से) हे भाई ! मुझ पर महान संकट आया है, इसलिये मैंने ही तुम्हें जगाया है।

कुम्भकर्ण—कौन ? रावण ! कहो भाई, ऐसी क्या आपत्ति आई जिसने तुम्हारी मुद्रा इतनी मलीन बनाई।

रावण—कुछ न पूछो भाई ! आजकल मैं संकट में हूं। अयोध्या के दो राजकुमारों ने बहिन स्वरूपनखा की नाक काट कर घोर अनर्थ कर डाला और जब खर दूषण अपना बदला लेने गये तो उनको भी मार डाला।

कुम्भकर्ण—क्या खर दूषण मारे गये ?

रावण—खर दूषण ही नहीं लंका के अनेक वीर मारे जा चुके हैं ! दुर्मुख, महोदर, अक्षय आदि सब मौत के घाट उतारे जा चुके हैं !

कुम्भकर्ण—ओह ! बड़ा आश्चर्य है ! अच्छा तुमने फिर क्या किया?

रावण—जब उन लोगों ने अधिक ऊधम मचाया तो मैं भी राम की स्त्री जानकी को चुरा लाया।

कुम्भकर्ण—अरे भाई ! यह तुमने बुरा किया, नीति पर कुछ भी ध्यान न दिया। जिसे तुम जानकी कहते हो वह जगत की जननी 'जगदम्बा' है, निशाचरों का नाश करने वाली साक्षात् कालिका है और फिर स्त्री का चुराना अन्याय है—घोर पाप है।

रावण—तो क्या तुम इतने कायर हो गये कि अपने भाई के शत्रुओं की बड़ाई करने लगे !

कुम्भकर्ण—बड़ाई नहीं, सच्ची बात कहता हूं। नारद जी ने मुझे उपदेश दिया था कि बुद्धि मलीन होने के कारण जब रावण जानकी को चुरा कर लायगा तब राक्षसों के विनाश का समय आयगा।

रावण—मालूम होता है कि मांस और मदिरा न मिलने से तुम्हारी बुद्धि ठिकाने पर नहीं आई है जो तुम्हें ऐसी उलटी समाई है। (सेवकों से) देखते क्या हो ! मांस और मदिरा के पात्र उठा लाओ और कुम्भकर्ण को अच्छी तरह खिलाओ पिलाओ।

[नौकरों का कुम्भकर्ण को मांस खिलाना और मदिरा पिलाना, कुम्भकर्ण का मस्त होकर गरजना]

रावण—भाई ? तुम लंका के सबसे बड़े वीर हो। मुझे तुम्हारे बल पर बड़ा भरोसा है। अब सेना लेकर युद्ध में चले जाओ और अपने कुल-बैरियों का नाश करके तीनों लोकों में यश पाओ।

कुम्भकर्ण—अरे रावण ! तू क्यों घबराता है ? देख अब युद्ध में शत्रुओं का काल जाता है।

[कुम्भकर्ण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य चौथा

(युद्ध भूमि)

राम—मेघनाद ! पापी मेघनाद ! उस दिन तू लक्ष्मण को शक्ति लगा कर चला गया परन्तु आज बचकर न जायगा, अपने अपराध का उचित दण्ड पायगा। आ ! ओ दुष्ट ! अब युद्ध में आ।

दूत—(आकर) महाराज की जय हो ! आज युद्ध के लिये मेघनाद

नहीं कुम्भकर्ण चला आ रहा है। वह देखिये बादल के समान घोर शब्द सुना रहा है।

राम—कोई चिन्ता नहीं ! आने दो ! उसे भी अपना पराक्रम दिखाने दो।

कुम्भकर्ण—आओ ! ओ मरने वालो अब जरा कुम्भकर्ण के सामने आओ ! इधर-उधर छिप कर अपने प्राण न बचाओ !

राम—(आगे बढ़ कर) बस खड़ा रह ? आगे कहाँ आता है !

कुम्भकर्ण—(हँस कर) ओहो ! यह अवस्था और इतना साहस ! नन्हा सा बालक और कुम्भकर्ण से युद्ध ! वाह ! वाह :—

मच्छर उड़ा है चांद पकड़ने को देखना;
चींटी चली है शेर से लड़ने को देखना।

राम—अरे अभिमानी ! इतने अहंकार में क्यों आता है ? आगे बढ़ कर हाथ क्यों नहीं दिखाता है ?

कुम्भकर्ण—हाथ ! तुझे दिखाऊं हाथ !

बच्चों का खेल युद्ध को पामर समझ लिया।
क्या कुम्भकर्ण भी कोई कायर समझ लिया॥

राम—कुम्भकर्ण, तू नहीं जानता कि साहसी पुरुष कहते नहीं करते हैं, बरसने वाले बादल बहुत ही कम गरजते हैं :—

कर्म से डरते हैं जो बातें बनाते हैं वहीं।
काम के कच्चे हैं जो जिह्वा चलाते हैं वही॥
कर्म का करना कठिन कहना जिन्हें आसान है,
कायरों की विश्व में केवल यही पहचान है।

कुम्भकर्ण—अच्छा तो आगे को क्यों नहीं आता है ! क्या बचकर भाग जाने के लिये दाव घात लगाता है ? याद रख :—

मैं नहीं बच्चा जिसे बातों से तू बहकायेगा;
बात कितनी भी बना लेकिन न बचने पायेगा।
आज रणचंडी भयकर रूप धर कर आयेगी ?
मैं चलूंगा जिस तरफ जय साथ होती जायेगी।

राम—जय पाप की नहीं धर्म की होती है। पापी की विजय निराशा के अन्धकार में सोती है।

कर्म से जय और पराजय है सदा इन्सान की;
कर्म से ही प्राप्ति है मान और अपमान की।
कर्म जब अच्छे नहीं तो जीत फिर होगी कहां?
देख कड़वे नीम में लगती हैं कब नारंगियां।

कुम्भकर्ण—अच्छा अब बातें न बना; युद्ध छेड़ और कुछ करके दिखा।

राम—कुम्भकर्ण! आज मैं तेरा सारा नशा उतारूंगा, याद रख कि तुझे युद्ध में अवश्य मारूंगा :—

कह दिया है मुंह से जो करके उसे दिखाऊंगा;
है मेरा निश्चय कि मैं सुरपुर तुझे पहुंचाऊंगा।

कुम्भकर्ण—अच्छा तो सम्भल!

राम—ले पापी यम के द्वार चल!

[भयंकर युद्ध होना, अन्त में कुम्भकर्ण का मारा जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(रावण दरबार)

रावण—युद्ध दिन प्रति दिन भयंकर होता जाता है; परन्तु हमारा पक्ष जीतने में नहीं आता है। देखो आज का संग्राम किस के हाथ रहे और कुम्भकर्ण की कहां तक बात रहे।

गुप्तचर—(आकर) महाराज की जय हो! पृथ्वीराज अन्धेरा हो गया. बली कुम्भकर्ण भी गहरी नींद सो गया।

रावण—(चौंक कर) हैं? क्या कहा? क्या कुम्भकर्ण मारा गया?

गुप्तचर—हां महाराज?

रावण—बस-बस! अब निस्सन्देह लंका के बुरे दिन आ गये जो ऐसे-ऐसे योद्धा भी काल के गाल में समा गये? अफसोस :—

बढ़ती हुई विजय की पताका ही रुक गई।
आशाओं की हरी भरी शाखा ही झुक गई।।

[सिर झुकाकर शोक में बैठ जाना]

मेघनाद—पिता जी? चिन्ता की क्या बात है? आज देखोगे कि मैदान हमारे हाथ है।

रावण—नहीं-नहीं? अब हमारा उन पर विजय पाना बहुत कठिन है।

मेघनाद—कठिन है। किस लिये? क्या मैं बलहीन हो गया? क्या देवताओं को परास्त करने वाला बल सो गया? नहीं, नहीं? आप घबराइये नहीं।

कसम है आप की मैं आज वह कौतुक दिखाऊंगा।
कि इकके चार और फिर चारके सौ सौ बनाऊंगा।।
समय बतलायगा उस राम का परिणाम क्या होगा।
प्रलय का नाच होगा आज का संग्राम क्या होगा।।

रावण—(प्रसन्न होकर) अच्छा, तो जाओ और युद्ध में वह कौशल दिखालाओ कि त्रिलोकी त्राहि २ बोल जाय और भय के कारण शत्रुओं की छाती हौल जाय।

युद्ध की भूमि से उठे जीत जिसका नाम है;
कह उठे दुनिया कि रावण तू ही बस सरनाम है।

मेघनाद—ऐसा ही होगा! बजाओ! हे वीरो! अब रण का बाजा बजाओ!

लेकर बढ़ो विनाश की तलवार हाथ में;
बढ़ती हुई विजय भी चले साथ-हाथ में।

[मेघनाद का जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(रामादल कीछावनी)

राम—विभीषण जी! कुम्भकर्ण ने कैसा पराक्रम दिखाया मानो युद्ध में एक विशाल पर्वत ही उतर आया?

विभीषण—क्यों नहीं महाराज ? वह लंका का सबसे बड़ा बलवान था उसको मार डालने वाला केवल आप का ही त्राण था।

गुप्तचर—(आकर) महाराज की जय हो ? आज लंका की ओर से फिर मेघनाद लड़ने के लिये आ रहा है।

राम—तो आने दो ? मेरा भी उत्साह बढ़ा जा रहा है।

लक्ष्मण—(हाथ जोड़कर) भ्राता जी ? आज के युद्ध में तो मुझे ही जाने दीजिये और मेघनाद से अपना बदला स्वयं ही चुकाने दीजिये।

राम—भाई ! वह राक्षस बड़ा कठोर और पराक्रमी है।

लक्ष्मण—तो बात ही क्या है। में आप के चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि आज उसे अवश्य मारूंगा और शक्तिवाण का बदला भली प्रकार उतारूंगा :—

रघुकुल आन है मुझको धनुष और तीर की सौगन्ध।
कसम माता सुमित्रा की, मुझे रघुवीर की सौगन्ध॥
लड़ूंगा विश्व—शक्ति से, न पग पीछे हटाऊंगा।
यदि यमराज भी होगा, तो वध करके आऊंगा॥

राम—अच्छा तात् ? यदि तुमने प्रण ही ठान लिया है तो जाओ मैं आशीर्वाद देता हूं कि शत्रु पर विजय पाओ।

लक्ष्मण—हां, यदि आपका आशीर्वाद साथ है तो फिर विजय लक्ष्मण के हाथ है ? (प्रणाम करके जाना)

राम—अंगद ! हनुमान ! सुग्रीव तुम भी साथ चले जाओ और युद्ध में लक्ष्मण का साहस बढ़ाओ।

सब—जैसी आज्ञा प्रभो ?

[तीनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(युद्ध भूमि)

मेघनाद—(गरज कर) आओ ! हे मौत के शिकारों ! अब मरने के लिये आओ। आज मुझे देखना है कि रामादल का कौन योद्धा मेरे सामने आता है; जिसका परलोक यात्रा को मन चाहता है :—

कौन मरने की सुबह को आरजू लेकर उठा ?
कौन है दुनियां से जिसका बोरिया-बिस्तर उठा?

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर) बस-बस ! ओ कपटी ! उस दिन तो धोखा दे गया, क्या आज भी बचना चाहता है ? अरे धूर्त ! कायरों का काम करके वीरों में नाम लिखाता है।

मेघनाद—(तनक कर) अच्छा ! तू पहली मार को इतनी जल्दी भूल गया, कि फिर अहकार में फूल गया ? नहीं जानता तो फिर जानले कि मैं मेघनाद हूं। दवताओं का शत्रु इन्द्रजीत मेघ-नाद :—

जो विजेता लाक का है और विष्णु धाम का;
विश्व में डका बजा है आज जिसके नाम का।
जिसने रणधीरों को भी रण में कभी समझा नहीं
जिस के आगे काल सा बलवान भी ठहरा नहीं।
जिसने बालक जान कर पहले तुझे मारा नहीं;
आज फिर आया है उसके सामने सोचा नहीं।

लक्ष्मण—सोच लिया है। परन्तु अब तू भी सोच ले; देख मेघनाद ! इधर देख ! इस धनुष और वाण को देख ! और फिर विष्णु के वरदान को देख :—

किया है शैन तेरह वर्ष तक भूमि की शय्या पर।
किया भोजन फलो का और विजय पाई है निद्रा पर ॥

किया है काम को बस में, लगाई चैन को ठोकर।
मिटाया अपने जीवन को, चला सन्यास के पथ पर॥
उठाये कष्ट इतने तब कहीं पूरा परण होगा।
समझ ले आज निश्चय ही तेरा सुरपुर गमन होगा॥

मेघनाद—जा! जा! ओ मूर्ख छोकरे! ऐसी असम्भव बातें न बना! तू नहीं जानता, मैंने विकराल काल का भी गाल तोड़ा है, बड़े-बड़े गम्भीर योद्धाओं का पामाल कर छोड़ा है:—

जिस तरफ को आंख फेरी देवता तक डर गये।
क्रोध की अग्नि से लाखों वीर जल-जल मर गये॥
जिसको पकड़ा काल के पंजे में गोया फंस गया।
जिसको दाबा वह रसातल तक जमीमें धस गया॥

लक्ष्मण—अभिमानी! तू नहीं जानता कि फूस के ढर को एक चिंगारी ही जला देती है। वृक्ष के बड़े आकार को छोटी सी कुल्हाड़ी ही गिरा देती है:—

कुछ बड़ाई हो नहीं सकती बड़े आकार से।
हार जाते हैं बड़े छोटे से ही हथियार से॥
कर्म जिस का है बड़ा वह ही बड़ा बलवान है।
देह तो मिट्टी है केवल आत्मा ही प्राण है॥

मेघनाद—समझा! आ आत्मा के ज्ञानी! मैं अब तेरा मतलब समझा; तू मीठी-मीठी बातें बनाकर मेघनाद को फुसलाना चाहता है। छोटे-बड़े के उपदेश देकर अपनी जान बचाना चाहता है। अच्छा जा; यदि लड़ना नहीं जानता तो भाग जा।

कर्म भूमि है यहां बच्चों की चटशाला नहीं।
युद्ध का मैदान है यह खेल का पाला नहीं॥

लक्ष्मण—ओ राक्षस! जबान को लगाम कर और वीरों की तरह प्रहार को रोक थाम कर।

[युद्ध होना, मेघनाद का हार जाना]

मेघनाद—ठहर! जरा दम लेने दे।

लक्ष्मण—बस ! इसी साहस पर इतना अकड़ता था। यही वीरता लेकर बार-बार अग्नि के समान भड़कता था। अच्छा जा विश्राम कर। जब तक चाहे आराम कर।

मेघनाद—(स्वयं) हैं ! आज क्या हो गया ?

कांपती है देह और हाथों में ताले पड़ गये।
हे विधाता ! आज तो जीने के लाले पड़ गये॥

लक्ष्मण—मेघनाद ! अब भी समय है। अब भी बुद्धि को सम्भालो और राम की शरण लेकर लंका को नाश से बचा लो।

मेघनाद—(स्वयं) बस-बस, उपदेश बन्द कर, अधिक न उछल, ले अब सावधान हो और यम के द्वार चल।

[तलवार उठाकर आगे बढ़ना]

लक्ष्मण—आ ! ओ दुष्ट आ !

पापियों का पापमद में भूलना अच्छा नहीं।
पाप की टहनी का फलना फूलना अच्छा नहीं॥

[फिर युद्ध होना और मेघनाद का मारा जाना देवताओं का आकाश से फूल बरसाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(सुलोचना का महल)

सुलोचना—

गाना

जब से गए हैं प्राण नाथ काबू में मन नहीं रहा।
लगता था जिस में दिल मेरा यह वह भवन नहीं रहा॥
चारों तरफ करुण पुकार, छाया हुआ है अन्धकार।
जिसमें खुशी का था निवास अब वह सदन नहीं रहा॥
कागा अशुभ मना रहे, कुत्त रुदन मचा रहे।
रहता था मन जो नित मगन, अब वह मगन नहीं रहा॥
माथे की बिन्दी गिर गई, माला की लड़ बिखर गई।
कंगन मलीन हो गया, नथ का वरण नहीं रहा॥

विधना बता तो दे जरा, माया रची है आज क्या।
अशगुन हुए हैं सब 'कुशल' कोई चलन नहीं रहा ॥

सखी—राजकुमारी ! आज हृदय में कैसी पीर है ? सदा प्रसन्न रहने वाला मन आज इतना क्यों अधीर है ?

सुलोचना—कुछ न पूछो सखी ! आज मन की कुछ निराली ही गति हो रही है। जब से स्वामी युद्ध में गये हैं निराशा प्राण खो रही है।

सखी—हैं ! आज तुम कैसी बातें कहने लगी। हमारे राजकुमार को हराने वाला कौन योधा है। जिसने बारह वर्ष तक स्त्री और नींद का त्याग किया हो ऐसा ब्रह्मांड में कौन जन्मा है।

सुलोचना—यह तो ठीक है ! परन्तु सखी ; विधाता की गति जानी नहीं जाती :—

सभी बनते बिगड़ते हैं जगत केवल खिलौना है।
लिया है जन्म जिसने नाश भी निश्चय ही होना है॥

[आंगन में भुजा का गिरना]

सखी—(चौंक कर) हैं यह क्या ? कोई भारी वस्तु आकर गिरी है ! (भुजा को देखकर) ओहो ? कैसा भयंकर संग्राम हो रहा है मानों अखण्ड का खण्ड हो गया है।

सुलोचना—क्या है ? देखूं ? जरा मेरे निकट तो लाओ।

सखी—कुछ नहीं ? राजकुमारी किसी वीर की भुजा है जो संग्राम से कट कर यहां आ गिरी है। देखो तो अभी तक रक्त बह रहा है।

सुलोचना—(ध्यान से देख कर) हाय ! हाय ! यह तो मेरा ही नाश हुआ है :—

मेरी तकदीर लूटी है मेरा ही भाग फूटा है।
दिया धोखा विधाता ने मेरा सुख चैन लूटा है॥

सखी—वीर बाला ! कैसी बातें करने लगीं? क्या तुम्हारे पति साधा-

रण योद्धा हैं ? उन्होंने तो देव-दानव, यक्ष-दिग्पाल, वरुण और काल सब को जीता है।

सुलोचना—यह ठीक है ! परन्तु यह भुजा अवश्य उन्हीं की है।

सखी—नहीं ! ऐसा होना असम्भव है।

सुलोचना—अच्छा यदि तुम्हें ऐसा ही भ्रम है तो लो तुम्हारा सन्देह भी मिटाती हूं ? (हाथ में खरिया देकर) लिख दे ! हे भुजा ! यदि तू स्वामी की भुजा है और मैंने स्वामी को सदैव अपना देवता समझा है तो सारा वृतान्त साफ-साफ लिख दे !

[भुजा का हाथ फैलाकर खरिया पकड़ना और आंगन में लिखना]

वह लिखा ! देखो हे सखी ! वह लिखा ! अहा !

दोहा—वीर लखन के हाथ से सुरपुर हुआ निवास;
प्राण पखेरू स्वर्ग में भुजा तुम्हारे पास।

(बेचैन होकर) लुट गई, भगवान, मैं अच्छी तरह लुट गई।

[सुलोचना का बेहोश होकर गिरना, परदा गिरदा]

दृश्य नवां

(रावण का दरबार)

रावण—आज मेघनाद ने अवश्य राम का सिर उड़ा दिया होगा और सारा झगड़ा सदैव के लिये मिटा दिया होगा।

मन्त्री—यथार्थ है महाराज।

[दूत का घबराये हुये प्रवेश]

दूत—(लड़खड़ाती जबान में) म……हा……राज ?

रावण—क्यों !

दूत—पृथ्वीनाथ ! अनर्थ हो गया !

रावण—क्या हुआ !

दूत—बड़ा ही पश्चाताप है ?

रावण—आखिर क्या बात है ?

दूत—महाराज ! मेघनाद युद्ध में……

रावण—कहो-कहो ! जल्दी कहो !

दूत—महाराज ! मेघनाद युद्ध में काम आया।

रावण—काम आया ! मेघनाद काम आया ! ओहो ! अनर्थ अन्याय !

किस तरह खाया है चक्कर आज यह आकाश ने।
कर दिया है नाश मेरा पुत्र तेरे नाश ने॥

मन्त्री—सावधान ! महाराज ! सावधान !

रावण—बस ! अब न छेड़ो ! मेरे घावों पर नमक न छिड़को ! अब मेरे क्रोध की अग्नि किसी प्रकार शीतल न होगी। अब मेरा उमड़ा हुआ जोश मध्यम नहीं पड़ सकता। लूंगा ! आज अपने पुत्र की मृत्यु का बदला लूंगा :-

मिटाकर अपने शत्रु को जगत से आज दम लूंगा।
मैं सारे नाश का बदला अभी और एक दम लूंगा॥

[तलवार खींचना]

द्वारपाल—महाराज की जय हो ! राजकुमार मेघनाद की स्त्री आई है और दरबार में उपस्थित होना चाहती है।

रावण—हां ! बुलाओ ! चलती बार उसका मर्म भी पूछ लूं; उस अभागिन की व्यथा पर भी विचार कर लूं ?

[सुलोचना का गाते हुए प्रवेश]

गाना

सुलोचना—

बरबाद हो गई हूं महाराज क्या करूं।
जब लुट चुका सुहाग तो कब तक जला करूं॥
जिसने दिया था हाथ वही हाथ कट गया।
अब आसरा ही क्या है कि जिस पर जिया करूं॥
आशाओं की हरी-भरी खेती ऊजड़ गई।
कब तक जहर के घूंट मैं बैठी पिया करूं॥
वह जा रहा है जिसमें कि जीवन का साथ था।
अब किस तरह वियोग के संकट सहा करूं॥

संसार में नहीं है ठिकाना मुझे 'कुशल'।
अच्छा यही है स्वर्ग की अब यात्रा करूं ॥

रावण—बेटी ! तेरा रुदन सुन कर छाती फटी जाती है; वासुकी नागराज की राजकुमारी को विधवा वेश में देख कर आत्मा महान क्लेश पाती है ! परन्तु पुत्री ! धीरज धरो; कुछ घड़ी के लिये और शान्ति करो :—

याद रक्खो पाप का बदला उतारा जायगा।
एक के बदले में दल का दल ही मारा जाएगा॥

सुलोचना—नहीं महाराज ! मुझे बदला नहीं चाहिये ! मेरे सिर का ताज, मेरे मन का देवता; मेरी कामनाओं का चित्र चला गया अब मुझे भी उनके साथ विदा कीजिये। कृपा करके मेरे पतिदेव का सिर मंगा कर परलोक गमन की आज्ञा दीजिये।

रावण—सुलोचना ! तू क्यों चिन्ता करती है ? तेरे सामने मस्तकों के ढेर लगा दूंगा ! एक के बदले में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, नल विभीषण,जामवन्त आदि सब के सिर ला दूंगा।

धज्जियाँ उड़ने लगेंगी देखना आकाश पर।
सिर पे सिर देखोगी गिरते, लाश गिरती लाश पर।

सुलोचना—नहीं महाराज ! मुझे विनाश नहीं, केवल अपने पति का सिर चाहिये !

रावण—तू बच्ची है ! नादान है ! मेरे पुरुषार्थ को नहीं जानती है! रावण के बल और पराक्रम को नहीं पहचानती है; जा बैठ! और मेरे कौशल का तमाशा देख !

नाश की अग्नि बनूंगा और जलाता जाऊंगा।
काल की सूरत बनूंगा और खाता जाऊंगा॥

सुलोचना—बस महाराज ! मेरे परलोक गमन में देर न कीजिये; कृपा करके स्वामी का सिर मंगा दीजिये !

रावण—तो क्या शत्रुओं के दल में शीश मांगने जाऊं ? त्रिलोकी का सम्राट होकर तपस्वियों के सामने हाथ फैलाऊं !

सुलोचना—अच्छा तो मुझे आज्ञा दीजिये !

रावण—किस बात की ?

सुलोचना—पति का सिर मांग लाने की

रावण—कहां से ?

सुलोचना—रामादल से !

रावण—किस प्रकार ?

सुलोचना—याचना करके !

रावण—नहीं ! कभी नहीं ! रावण की पुत्र-वधू रामादल में जायें ! दर-दर की ठोकरें खाये और शत्रु के सामने हाथ फैलाये ! नहीं, कदापि न होगा। जा ! अपने भवन में जाकर विश्राम कर।

सुलोचना—महाराज !

रावण—बस ! अब कुछ नहीं ! जो कुछ कह दिया है वही होगा।

सुलोचना—(स्वयं) यदि कुछ और उत्तर देती हूं तो वृथा ही विवाद बढ़ता है; इसलिये अब वही उचित है कि माता जी के पास जाऊं और उनसे ही आज्ञा चाहूं।

(जाना)

रावण—बात गम्भीर होती जाती है और विजय की कोई सूरत नजर नहीं आती है ! अब यदि युद्ध को पीछे हटाता हूं तो कायर कहलाता हूं और यदि स्वयं लड़ने जाता हूं तो व्यवस्था को उलटी बनाता हूं। (सोच कर) वाह वाह ! खूब याद आया। अहिरावण ! मित्र अहिरावण ! ऐसे संकट के समय तू अवश्य काम आयगा, राम और लक्ष्मण का खोज तू ही मिटायगा।

[रावण का जाना, परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(मन्दोदरी का महल)

मन्दोदरी—सच कहा है, जब नाश के दिन आते हैं तो कारण वैसे ही

बन जाते हैं। युद्ध का समाचार जितना भयंकर होता जाता है पतिदेव का ज्ञान उतना ही सोता जाता है ! ओह ! कैसे-कैसे वीर परलोक सिधार गये कितने महारथी समय की गति से हार गये !

गाना

कैसी चला चली है हर चीज चल रही है।
आंखों के सामने ही दुनिया बदल रही है।।
कल कल में सैंकड़ों कल गुजरी हुई हुई कल।
परसों नहीं रहेगी कल की जो कल रही है।।
सब कुछ अभी अभी था,पर अब नहीं है कुछ भी।
हर सांस कह रहा है मंजिल निकल रही है।।
अन्धेर इक न इक दिन इस तननगर में होगा।
बुझ कर रहेगी लौ जो जीवन की जल रही है।।
जीवन-बहार के दिन बीते कुशल हैं गिन।
वह भी गुजर रही है बाकी जो पल रही है।।

[सुलोचना का गाते हुए प्रवेश]

सुलोचना—

गाना

(तर्ज—तकदीर का फसाना जाकर······)

यह कैसी जिन्दगी है यह कैसी बेबसी है ?
दिल रो रहा है अपना तकदीर हस रही है।
आशा के फूल इक दम मुरझा के गिर गये हैं,
फूले फले चमन में कैसी हवा चली है।
हे मौत किस घड़ी यह लूटा सुहाग मेरा ?
उन की सुनी न अपने मन की कोई कही है,
घबराना, तड़फड़ाना, मचलाना,तिलमलाना।
कहदे कोई तो आखिर क्या यह भी जिन्दगी है।।
दुनिया के रास्ते पर बस चल चुके'कुशल'हम।
चलना है अब उसी पर मंजिल जो बच रही है।।

न्दोदरी—(रोते हुए) आह बेटी ! तुम्हें किन आंखों से देखूं ? तेरा यह विधवा वेश किस प्रकार निहारूं ? सुलोचना ! मेरा घर बिगड़ गया । बेटी, तेरा सुहाग उजड़ गया । :—

किस तरह देखूं तेरे सिन्दूर लुट जाने के दिन ।
हो गई विधवा यही थे खेलने खाने के दिन ।।

लोचना—माता जी ! यह सब कर्मों का चमत्कार है । भाग्य के आगे तो सारा संसार लाचार है ।

न्दोदरी—हां बेटी !

पुत्र के मरते ही मेरी गोद खाली हो गई ;
नष्ट बेटी अब तेरी मांगों की लाली हो गई ।।

लोचना—माता जी ! जो होना था वह हो गया ! मेरा और तुम्हारा भाग्य निराशा के अन्धकार में सो गया । परन्तु अब धैर्य से काम लीजिये और मुझे देवलोक जाने की आज्ञा दीजिये !

न्दोदरी—किस प्रकार दूं ? पुत्र तो चला गया अब तुझे भी जाने की आज्ञा दूं ! कुछ तो देख बेटी ! मेरी दशा को कुछ तो देख :—

हर तरह मेरा सहारा तो न खोना चाहिये ।
मेरे जीने के लिये कोई तो होना चाहिये ।।

लोचना—यह तो ठीक है, परन्तु माता जी ! मुझे तो जाना ही होगा । जीवन साथी का साथ निभाना ही होगा :—

मोह के धन्धे में फंस कर धर्म कैसे छोड़ दूं ।
टूटने वाला नहीं सम्बन्ध कैसे तोड़ दूं ।।

न्दोदरी—हां बेटी ! मैं तेरे पतिव्रत धर्म को जानती हूं ! और इस जन्मजन्मान्तर के अटूट सम्बन्ध को भी मानती हूं ! परन्तु इस समय संग्राम चल रहा है, सती की व्यवस्था किस प्रकार की जायगी ।

सुलोचना—माता जी ! इसकी आप कोई चिन्ता न कीजिये। के
मुझे पति का सिर लाने की आज्ञा दे दीजिये।

मन्दोदरी—परन्तु यह आज्ञा तो महाराज से लेनी चाहिये थी।

सुलोचना—उनसे मैं कह चुकी हूं और अनेक प्रकार से विनती
कर चुकी हूं परन्तु वे कोई ध्यान नहीं देते।

मन्दोदरी—हा ! आजकल उनकी बुद्धि उलटी हो रही है। र
अच्छा और बुरा दिखाई नहीं देता। हित और अनहित
सुझाई नहीं देता।

सुलोचना—तो फिर अब क्या आज्ञा है ?

मन्दोदरी—अच्छा ! तुम चली जाओ और याचना करके अपने प
का सिर मांग लाओ ! मैं उन्हें समझा लूंगी।

सुलोचना—उपकार ! माता जी ! महा उपकार !

[सुलोचना का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्यारहवां

(रामादल की छावनी)

राम—विभीषण जी ! रावण भी कितना हठधर्मी है कि इतने दिन
के बाद भी हट नहीं छोड़ता। बन्धु और पुत्र की मृत्यु के
जाने पर भी संग्राम से मुंह नहीं मोड़ता :—

विभीषण—हां महाराज ! वह सदा से ऐसा ही अहंकारी है।

राम—सुनो ! यह मधुर और करुण स्वर कहां से आ रहा है ? इत
दुखी होकर कौन गा रहा है ?

[सुलोचना का गाते हुए प्रवेश]

सुलोचना— गाना

कोई चैन जग में किये जा रहा है।
कोई गम के आंसू पिये जा रहा है !
किसी की उमांदें तो पूरी हुई हैं ;
कोई साथ हसरत लिये जा रहा है।

किसी के यहां बज रहे शादियाने,
कोई शोक मे दम दिये जा रहा है।
मिलन की खुशी में कोई है दिवाना।
विरह में कोई दम दिये जा रहा है॥

दूत--(आकर) महाराज की जय हो! रावण की पुत्रवधू उपस्थित होना चाहती है।

राम—रावण की पुत्रवधू? अच्छा जाओ! और आदर सहित ले आओ!

सुलोचना—(आकर) हे भक्त हितकारी! आप की जय हो! मंगलकारी! आप की जय हो!

विभीषण—महाराज! यह रावण की पुत्रवधू और मेघनाद की स्त्री सुलोचना है! संसार में धर्मपरायण और पतिव्रत की सच्ची प्रतिमा है!

राम—कहो देवी! अपने आने का कारण कहो!

सुलोचना—महाराज! मुझ पतिदेव की भुजा ने अपनी मृत्यु का समाचार लिख कर बता दिया है, मेरा सारा सन्देह मिटा दिया है? अब मैं सती होना चाहती हूं और स्वामी का सिर लेने के लिये आप की शरण में आई हूं।

राम—धन्य हो देवी! तुम सच्ची सती हो (सुग्रीव से) सुग्रीव जी विलम्ब न कीजिये और देवी को इनके पति का सिर ला दीजिये!

सुग्रीव—(सिर लाकर) लो देवी? अपने स्वामी का सीस लो!

सुलोचना—(सिर लेकर और प्यार करके) हाय नाथ? कितने हताश हो रहे हो? चेहरा मुरझा गया है, बालों में धूल भर गई है। कितने थके हुए दिखाई देते हो? (आंचल से सिर की धूल पूंछना)

सुग्रीव—(राम के आगे हाथ जोड़कर) महाराज? मेरे मन में एक महान शंका है यदि आज्ञा हो तो पूछ लूं?

राम—हां-हां ! अवश्य पूछो !

सुग्रीव—क्या बिना देह और प्राण के कटी हुई भुजा भी कुछ लिख सकती है ?

राम—हां सुग्रीव जी ! पतिव्रत धर्म में बड़ी शक्ति है !

सुग्रीव—यदि इतनी शक्ति है तो इसके पति का सिर अपने आप हंसेगा ?

राम—हां ! यदि यह इच्छा करेगी तो अवश्य हंसेगा ।

सुलोचना—हंस दीजिये ! हे नाथ ! जल्दी हंस दीजिये ! नहीं तो मेरा विश्वास घटता है । पतिव्रत धर्म की महिमा कम होती है ! क्या लक्ष्मण के बाणों ने इतना शिथिल कर दिया ? क्या युद्ध में लड़ते-लड़ते इतने व्याकुल हो गये ? हंस दीजिये, प्रभु के सामने तो मुझे लज्जित न कीजिये! हाँ,यदि मैंने मन वचन, कर्म से आप की सच्ची पूजा की है तो आप को अवश्य हंसना पड़ेगा । यदि मैंने आपको अपना ईश्वर ही माना है तो आपको अवश्य हंसना पड़ेगा !

[मेघनाद का सिर हंसता है]

सुग्रीव—अहा ! वह हंसा ! बड़ा ही आश्चर्य है ! निस्सन्देह पतिव्रत धर्म की महिमा बड़ी विचित्र है !

सुलोचना—अच्छा प्रभु ! अब आज्ञा दीजिये और कृपा करके आज का युद्ध बन्द रहने की घोषणा कर दीजिये ।

राम—बहुत अच्छा देवी ! ऐसा ही होगा !

सुलोचना—अच्छा प्रभु ! प्रणाम !

[सुलोचना का जाना]

राम—धन्य है ! सती सुलोचना तुम्हें धन्य है । निस्सन्देह ! जो स्त्रियां छल कपट छोड़ कर सच्चे मन से पति की सेवा करती हैं वे संसार में यश प्राप्त करके भवसागर तरती हैं !

[परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

[चिता लग रही है, सुलोचना, मन्दोदरी और सखियों सहित आती है]

खयां— गाना (तर्ज—धोले-धोले रे खेवाटिया)

जाओ जाओ री सहेलो पिया-दर्शन को।
जीवन-लीला सफल करो अब—
परस पूज पिया-चरनन को—
जाओ जाओ......
झूठे जग का मोह त्याग कर—
गमन करो सुर-कानन को—
जाओ जाओ......
देवपुरी में बालम तेरे—
तरस रहे मुख-देखन को—
भव-बन्धन को काट चलो अब—
'कुशल' अमर, सुख-साधन को—
जाओ जाओ......

लोचना—अच्छा ! प्यारी सखियों ! अब विदा करो और मन में धीरज धरो। स्वामी के बिना अब अधिक ठहरा नहीं जाता; पतिदेव के वियोग में अधीर मन सन्तोष नहीं पाता ! (मन्दोदरी से) अच्छा माता जी ! प्रणाम !

न्दोदरी—(सुलोचना को गले लगा कर) अच्छा बेटी ! जाओ ! (रोती है)।

[सुलोचना का सखियों से गले मिल कर और मन्दोदरी के पैर छूकर चिता में बैठ जाना]

लोचना— गाना (डेढ़ मिसरी)

जाती हूं निभाने को जो नारी का परण है—परलोक गमन है।

अब धूल नजर में यह मेरा राज भवन है—सब शोक करण है ।।
संग में ही पति के है गति नार सती की—नीति यही कहती है ।
उपदेश पुराणों का है वेदों का कथन है—दुनिया का कहन है ।।
स्वामी के चरण छोड़ के दुख कैसे उठाऊं—और पाप कमाऊं ।
संसार में जो आया है निश्चय ही मरण है—सब झूठा चलन है।।
ठहरो हे पतिदेव ! यह जल्दी नहीं अच्छी–आने दो मुझे भी ।
दाता मुझे मुक्ति की तुम्हारी ही शरण है–अब यह ही लगन है ।।

[चिता में अग्नि का लगाया जाना, सुलोचना का सती होना परदा गिरना सीन पर ड्राप]

बारहवां अंक

दृश्य पहला

(शिव मन्दिर)

[रावण का गाते हुए प्रवेश]

रावण—

गाना

सभी मतलब की दुनिया में गरज के यार देखे हैं।
लगी में कूदने वाले कहीं दो चार देखे हैं॥
तरसते हैं जो जाने को, उन्हें दाना नहीं मिलता।
जहां इच्छा नहीं कोई, वहा भण्डार देखे हैं॥
किसी का घर उजड़ता है किसी घर साज सजते हैं।
कहीं खण्डर भी देखे हैं, कहीं दरबार देखे हैं॥
किसी का खून बह जाये तो कोई गम नहीं करता।
किसी पर मरने वाले सैकड़ों तैयार देखे हैं॥
कहीं नाचीज लोगों ने 'कुशल' सिर ताज पहने है।
कहीं पर ठोकरें खाते हुए सरदार देखे हैं॥

अच्छा, बस अब शिव जी की वन्दना के लिये बैठ जाता हूं।
और आकर्षण मन्त्र द्वारा अहिरावण को यहीं बुलाता हूं।

[रावण का ध्यान में बैठ जाना, अहिरावण का आना]

अहिरावण—हैं! मित्र रावण! तुमने मुझे किस लिये याद किया है? अब और किसे जीतने का निश्चय किया है?

रावण—(खड़े होकर) ओहो! तुम आ गये मित्र! आओ पधारो! मेरे समीप आसन पर बैठकर मेरे मन की व्यथा सुनो।

अहिरावण—(बैठकर) कहो मित्र! कुशल तो है? ऐसा क्या संकट आया है जो मुझे इतनी शीघ्रता से बुलाया है?

रावण—क्या बताऊं मित्र ! कुछ समय से अयोध्या के दो राजकुमार पंचवटी पर आये हुए थे। एक दिन उन मूर्खों ने बहिन स्वरूप-नखा के नाक-कान काट डाले और जब खर-दूषण उस की सहायता को गये तो उन को मार डाला ! मैंने यह समाचार पाया तो राम की स्त्री सीता को चुरा लाया ! इसी छेड़छाड़ में कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि योद्धा भी मारे गये और हजारों वीर मृत्यु के घाट उतारे गये। हे मित्र ! बदले की भावना ने मुझे व्याकुल बनाया है इसलिये तुम्हें बुलाया है !

अहिरावण—दानवेश ! धर्म और नीति को छोड़कर कुमार्ग पर चलने में भलाई नहीं है। यद्यपि मित्र का यह कर्तव्य नहीं तो भी मैंने सच्ची बात कही है।

रावण—मित्र ! मैंने तुम्हें उपदेश देने के लिये नहीं, सहायता करने को बुलाया है। क्या मित्र होकर तुमने अपना यही कर्तव्य निभाया है ?

अहिरावण—ऐसा न कहो रावण! मैं तुम्हारे लिये प्राण भी दे सकता हूं मित्र का कर्तव्य है कि मित्र को सच्चा मार्ग दिखाये किन्तु यदि वह फिर भी न माने तो प्रत्येक दशा में उसका साथ निभाये। अच्छा बताओ कि तुम क्या चाहते हो ?

रावण—तुम्हें कामद देवी का वरदान है कि तुम हनुमान के अतिरिक्त और किसी से न मारे जाओगे। इसलिये प्रातःकाल संग्राम में चले जाओ और राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ठिकाने लगाओ।

अहिरावण—इससे तो यही अच्छा है कि रात्री में ही दोनों को चुरा ले जाऊं और देवी की भेंट चढ़ाऊं। जिस से तुम्हारा काम भी बन जाये और कामद देवी भी सन्तुष्ट हो जाय।

रावण—वाह-वाह ! यह और भी सुन्दर है। अच्छा अब अर्द्ध-रात्रि का समय आने वाला है, इसलिये रामादल में चले जाओ और मेरे मन की चिन्ता को मिटाओ।

अहिरावण—लो मैं जाता हूं ! जब तुम्हें प्रकाश दिखाई दे तो जा
लेना कि अहिरावण उनको हर कर ले जा रहा है ।

[जाना, परदा गिरना]

दृश्य दूसरा

(रामादल की छावनी)

राम—अब रावण के पास उपाय ही क्या रह गया है ! या तो जानकी को लेकर शरण में आयगा और या अनेक योद्धाओं की तरह वह भी मारा जायगा ।

सुग्रीव—महाराज ! रावण बड़ा हठधर्मी है वह सीधी तरह कभी न मानेगा !

विभीषण—और मेरा विचार है कि अब वह इधर-उधर दृष्टि दौड़ाएगा और युद्ध में भाग लेने के लिये अपने सम्बन्धियों तथा इष्टमित्रों को बुलायेगा !

राम—क्या उसके सहायक अभी और कुछ रह गये हैं ?

विभीषण—हां प्रभो ! उसके सम्बन्धियों में अभी कई बलवान बाकी हैं ।

हनुमान—(हाथ जोड़ कर) महाराज ! आधी रात होने को आई और सारी वानर सेना अलसा गई है, इसलिये अब सब को सोने की आज्ञा दीजिये और आप भी विश्राम कीजिये ।

राम—हां, ठीक है । अच्छा सब लोग आराम करें ।

सुग्रीव—हनुमान जी ! आप पहरे पर सावधान रहें !

हनुमान—बहुत अच्छा महाराज ! आप निश्चिन्त होकर सो जाइये

[सब का सो जाना, हनुमान का पहरे पर सावधान खड़े हो जाना]

अहिरावण—(आकर और एक ओर होकर) अहा ! भीतर कैसे जाऊं और कौन सी युक्ति से राम-लक्ष्मण को चुराऊं ? मेरा श[illegible] वानर बड़ी सावधानी से पहरा दे रहा है और सब को अपनी पूंछ के परकोट में ले रहा है । (कुछ सोचकर) बस-बस अ[illegible]

यही उचित है कि विभीषण का वेश बनाऊं और वानर को धोखा देकर परकोट में घुस जाऊं।

[अहिरावण का विभीषण का वेश बनाना]

अहिरावण— गाना

राघव भगतन के हितकारी !

दशरथ सुत, कोशल के राजा, विपत विदारण, संकट हारी ॥

श्याम-वरण, पद-पङ्कज, लोचन कमल, चरण मुद मंगलकारी।

कुण्डल कानन तिलक भाल प्रभु मुकुट सीस माला उर धारी ॥

गणिका, व्याध, अजामिल तारे पाप-ताप दुख हारी।

भव-सागर से पार करो प्रभो ! अशरण शरण दीन हितकारी ॥

हनुमान—(अहिरावण को आगे बढ़ते देखकर) कौन है ? वहीं खड़ा रह! आगे कहां जाता है !

अहिरावण—जय ! प्रभो जानकी-नाथ की जय !

हनुमान—कौन है भाई ! आधी रात को रामादल में क्या काम है ?

अहिरावण—कोई नहीं ! मैं हूं विभीषण !

हनुमान—(देख कर) विभीषण जी ! इस समय तक कहां रहे !

अहिरावण—भाई ! समुद्रतट पर संध्या करने चला गया था ! आज देर हो गई। प्रभु के भय से लौट आया हूं !

हनुमान—(मार्ग छोड़कर) अच्छा ! लो चले जाओ !

[अहिरावण का परकोट में प्रवेश करना]

अहिरावण—(स्वयं) ओह ! बड़ी कठिनाई है ! यदि कोई जाग गया तो लेने के देने पड़ जाएंगे (सोच कर) ठीक है सब पर मोहनी मन्त्र डाल कर अचेत बनाता हूं और आप अदृश्य होकर दोनों भाईयों को उठाकर ले जाता हूं !

[सब पर मोहनी डालकर राम-लक्ष्मण को उठा ले जाना और कुछ समय बाद वानरों का जागना]

सब—(इधर-उधर देख कर) हैं ! प्रभु कहां हैं ? आज तो लक्ष्मण का भी पता नहीं !

अंगद—क्यों जामवन्त जी ! आप को कुछ ज्ञात है ?

जामवन्त—नहीं भाई। मैं तो तुम्हारे पास ही सो रहा था ?

नल—सुग्रीव जी ? आप को कुछ पता है कि प्रभु कहां चले गये ?

सुग्रीव—नहीं भाई। मैं तो बिल्कुल अनजान हूं ? रात हनुमान जो पहरे पर थे उन्हीं से पूछना चाहिये।

नल—हनुमान जी ! आप ही बतलाइये कि प्रभु कहां हैं ?

हनुमान—क्या बताऊं भाई ! मैं स्वयं आश्चर्य में हूं।

अंगद—हाय-हाय ! अब रावण का संहार कौन करेगा ? माता जानकी कैसे जीवित रहेंगी ?

जामवन्त—हनुमान जी ! रात्रि में जब आप पहरा दे रहे थे तो प्रभु कैसे चले गये ?

हनुमान—क्या बताऊं ? रात में यहां कोई भी नहीं आया, केवल विभीषण जी तो संध्या करके लौटे थे !

विभीषण—नहीं-नहीं ! मैं तो यहीं था !

हनुमान—यह आप कैसे कहते हैं ? मैंने स्वयं देखा कि आप अर्द्ध रात्रि को आये थे।

विभीषण—क्या मैं ?

हनुमान—हां-हां ! आप !

विभीषण—यही रूप था ?

हनुमान—बिल्कुल यही !

विभीषण—और ऐसी ही बोली !

हनुमान—जी हां ! ऐसी ही !

विभीषण—बस मैं समझ गया ! प्रभु को पाताल का राजा अहिरावण हर कर ले गया है। संसार में वही इतना चालाक राक्षस है जो मेरा रूप बनाना और बोली बोलना जानता है।

अंगद—तो अब क्या होगा ? हम प्रभु को कैसे पायेंगे ?

विभीषण—बस ! जिस में बल हो वह सीधा पाताल जाये और अहि-रावण को जीत कर प्रभु को छुड़ा लाये !

सुग्रीव—तो ऐसा महान कार्य हनुमान जी के सिवा और कौन कर सकता है ?

हनुमान—हां-हां ! मैं ही जाऊंगा और चौदह भवन तीन लोकों में प्रभु जहां भी होंगे वहीं से खोज कर लाऊंगा ।

सब—धन्य है ! केसरी-नन्दन, तुम्हें धन्य है ।

हनुमान—लो मैं जाता हूं ! आप सब लोग सावधान रहना ।

[हनुमान का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तीसरा

(पाताल नगर का द्वार)

[मकरध्वज पहरा दे रहा है, हनुमान गाते हुए आते हैं]

हनुमान—

गाना

(तर्ज—चल चल तू ए हवा)

चल चल पवन कुमार चल चल पवन कुमार ।
बनकर पवन का रूप निशाचर के दल का मार ।
चल चल......
बाधा जो आए राह में उस का न कर विचार ।
मंगल-निधान नाथ के चल कर चरण निहार ।।
चल चल......

मकरध्वज—(हनुमान को जाते देखकर) कौन है ? जो ऐसा निडर होकर नगर में घुसा जा रहा है ।

हनुमान—और तू कौन है जो मेरे मार्ग में रोड़ा अटका रहा है ।

मकरध्वज—जानता नहीं कि मैं पवनसुत हनुमान का पुत्र हूं ।

हनुमान—हनुमान का पुत्र ! तेरा नाम ?

मकरध्वज—मकरध्वज !

हनुमान—अरे मूर्ख ! ऐसे खोटे वचन क्यों बोलता है ? मेरे तो सपने में भी पुत्र नहीं हुआ ! मुझे तो कभी काम भी नहीं व्यापा ।

मकरध्वज—तो क्या आप ही हनुमान हैं ?

हनुमान—हां ! पवनसुत हनुमान मैं ही हूं । तूने ऐसी झूठी बात किस लिये गढ़ी है ?

मकरध्वज—झूठी बात नहीं, बिल्कुल सत्य कह रहा हूं । सुनिये जिस समय आप लंका को जलाकर समुद्र के ऊपर से उड़ते हुए आ रहे थे उस समय आपके शरीर से पसीना टपक कर समुद्र में गिर पड़ा और उसे एक मछली ने निगल लिया । बस उसी के गर्भ से मैंने जन्म पाया और फिर अहिरावण की सेवा के लिये पाताल चला आया !

हनुमान—यहां क्या काम करता है ?

मकरध्वज—मैं नगर के द्वार पर पहरा देता हूं ।

हनुमान—अच्छा पुत्र ! मैं इस समय एक आवश्यक कार्य के लिये जा रहा हूं । क्या तू बतला सकता है कि इस समय अहिरावण कहां मिलेगा !

मकरध्वज—महाराज ! उसके यहां कामद देवी को बलिदान देने की तैयारी हो रही है और इस समय वह होम कर रहा है ।

हनुमान—अच्छा तो सामने से हट जा और मुझे नगर में प्रवेश करने दे ।

मकरध्वज—नहीं पिता जी ! मकरध्वज अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेगा और मेरे होते हुए कोई भी नगर में पैर नहीं धरेगा !

हनुमान—हे पुत्र ! देर होने से हमारा काम बिगड़ जाने का भय है इसलिये हमें तुरन्त जाने दो !

मकरध्वज—नहीं महाराज ! मैं विश्वासघात नहीं कर सकता । आप वापस लौट जाइये । मैं कदापि भीतर न जाने दूंगा ।

हनुमान—(धक्का देकर) अरे हट ! मेरा रास्ता छोड़, दीवार की तरह क्यों अड़ा खड़ा है ?

मकरध्वज—(पकड़ कर) नहीं ! यह नहीं हो सकता ! आपको लौ जाना पड़ेगा !

हनुमान—अच्छा तो आ ! पहले तेरा बल ही देखता हूं !

[युद्ध होना, हनुमान का मकरध्वज को बांध कर डाल देना औ नगर में प्रवेश करना]

दृश्य चौथा

(कामद देवी का मन्दिर)

हनुमान—(स्वयं आकर) यही है ! कामद देवी का मन्दिर यही है यहीं वह दुष्ट निशाचर स्वामी को लेकर आयगा और इसको सन्तुष्ट करना चाहेगा। बस अब यही उचित है कि देवी को रसातल में धंसा दूंगा और मन्दिर में बैठकर यहां का दृश्य देखूं।

[हनुमान का मन्दिर में बैठ जाना, स्त्रियों का देवी पूजा करने आना और गाना]

स्त्रियां— **गाना (दुर्गे पूजन चलो सब गोरी)**

जय जय जननी जगत जगदम्बा !

मन्दिर तेरा, महा सजा-दीपक जला, जला, जला।

नित पूजा करें सब अम्बा। जय जय……

दुर्गे तेरी महा कला-संकट मिटा, मिटा, मिटा।

जन द्वारे खड़े तेरे अम्बा। जय जय……

[स्त्रियों का जाना, राक्षसों का राम-लक्ष्मण को लेकर आना पीछे-पीछे अहिरावण का प्रवेश]

राक्षस—महाराज ! आज्ञा दीजिये कि इन दोनों का सिर उड़ा दिया जाये और माता भवानी की भेंट चढ़ा दिया जाये।

अहिरावण—नहीं, अभी नहीं। राजनीति के अनुसार तीन घड़ी ठहर जाओ और इनके मन की इच्छा पूछ लो।

राक्षस—माता भवानी के बलिदानो ! अब थोड़ी देर और जी लो और यदि कुछ इच्छा हो तो खालो पीलो।

राम—बस भाई ! जब कुछ देर का ही जीना है तो काहे का खाना पीना है !

लक्ष्मण—भ्राता जी ! अब क्या करें ? अपनी सहायता के लिये किसे बुलायें ?

राम—हां भाई, वरदान के कारण हम अहिरावण को नहीं जीत सकते, आह कौन सुनता है ? इस पाताल नगरी में हमारी पुकार कौन सुनता है ?

गाना

समय जब खोटा आता है सहारा ही नहीं मिलता।
भवर में डूबते जन को किनारा ही नहीं मिलता ॥
घटायें संकटों की सीस पर जब घिर के आती हैं।
निराशा की अन्धेरी में उजाला ही नहीं मिलता ॥
पराये देश में चारों तरफ शत्रु ही शत्रु हैं।
जिधर देखें उधर कोई हमारा ही नहीं मिलता ॥
'कुशल' आकर फंसे हैं आज हम कैसी मुसीबत में ?
लगाले जो कि छाती से वह प्यारा ही नहीं मिलता ॥

अहिरावण—अच्छा ! बहुत रो चुके। बहुत कुछ अधीर हो चुके। अब केवल एक घड़ी बाकी है इसलिये सावधान हो जाओ और जीवन से हाथ उठाओ।

लक्ष्मण— **गाना** तर्ज (सोहनी)

याद अब किस की करें हो कोई तो आधार भी।
डूबती है नाव छूटी हाथ से पतवार भी ॥
रोते-रोते हाय दोनों को सवेरा हो गया।
सूखती जाती है अब आंखों के जल की धार भी ॥
हो गये मजबूर देवी तेरे वरदानों मे हम !
अन्यथा सब देख लेते दुष्ट की तलवार भी ॥

हे विधाता तीन लोकों में नहीं ! अपना कोई।
भूल बैठे हैं कुशल जब अन्जनी-सुकुमार भी ॥
[मन्दिर का फटना, हनुमान का बाहर आना]

हनुमान—नहीं; महाराज सेवक स्वामी को कैसे भूल सकता है ?

अहिरावण—(घबरा कर) हैं ! कौन ?

हनुमान—तेरा काल !

अहिरावण—चल हट। मेरे कार्य में विघ्न न डाल ।

हनुमान—ओ दुष्ट ! पापी ! चांडाल अब नर्क में डेरा डाल।

अहिरावण - ओ पाजी। क्या तू नहीं जानता कि मैं अहिरावण हूं।

हनुमान—और क्या तू नहीं जानता कि मैं पवन सुत हनुमान हूं।

अहिरावण—(डर कर) हनुमान ! पवन सुत हनुमान !

हनुमान—हां हां हनुमान ! पवनसुत हनुमान !

अहिरावण—बस ! अब गये प्राण !

[युद्ध होना, अहिरावण का मारा जाना]

हनुमान—चलिये प्रभो !

राम - धन्य हो हनुमान जी; तुम धन्य हो ! कहो, यहाँ तक कैसे आए ?

हनुमान—महाराज ! आप के वियोग में सारे वानर घबरा रहे हैं तड़प-तड़प कर प्राण गंवा रहे हैं। अब चलिये अधिक देर न लगाइये, वहां पहुंचने पर ही सारा वृतान्त बताऊंगा।

राम—अच्छा तो चलो ।

हनुमान का राम लक्ष्मण को कन्धे पर बिठा कर ले जाना, परदा गिरना]

दृश्य पांचवां

(रावण दरबार)

रावण—रात्रि के प्रकाश से सिद्ध होता था कि अहिरावण उन दोनों

तपस्वियों को चुरा कर ले गया और सारी वानर सेना को धोखा दे गया। वाह्-वाह्। मेरे मित्र भी कैसे विचित्र हैं :—

राम तो है चीज ही क्या काल भी भयभीत हो।
जिस के ऐसे मित्र हों कैसे न उसकी जीत हो॥

मन्त्री—यथार्थ है महाराज।

रावण—अच्छा इस विजय के दिन आनन्द बधाई गाई जाय, लंका का एक-एक घर और एक-एक गली सजाई जाय। सारे नगर में दीवाली मनाई जाय :—

हर तरफ आनन्द ही आनन्द हो छाया हुआ।
हर कोई मैंखार की मस्ती में हो आया हुआ॥

मन्त्री—बहुत अच्छा महाराज! ऐसा ही होगा।

रावण—साकी! आज तो बिल्कुल न रख बाकी! :—

तुझको कसम है मैं की जो कोई कसर करे।
ऐसी पिला दे अब तो जो ठंडा जिगर करे॥

मन्त्री—न खाली बैठ ओ साकी! हमें सर सर पिलाता जा।
उधर भर-भर के लाता जा इधर भर-भर पिलाता जा॥

सभासद—साकी! ओ साकी!

अब के बहुत दिनों में चला दौर जाम का।
रख दे उठा के जाम अलग मेरे नाम का॥

[अप्सराओं का आना और गाना]

अप्सरा— गाना

साकी तेरी नजर न इधर को फिरी कभी।
जी भर के दमबदम नहीं हमको मिली कभी॥
शीशे में बन्द रह के ही जलवा दिखा गई।
होंठों से लगने पाई न नाजुक परी कभी॥
बहके वह हाथ शौक का प्याला बिखर गया।
हमने अगर शराब की मस्ती भरी कभी॥

साकी न कर ख्याल बराबर पिलाये जा।
आती नहीं सखी के यहा तो कभी कभी ॥

रावण—वाह वाह ! आज तो चैन लुटा जा रहा है। जिन्दगी का असली आनन्द आ रहा है।

गुप्तचर—(आकर) महाराज की जय हो ! श्रीमान् अनर्थ हो गया !

रावण—क्या हुआ ?

गुप्तचर—अहिरावण भी मारा गया !

रावण—(चौंककर) हैं ! मारा गया ! किसने मारा ?

गुप्तचर—हनुमान ने !

रावण—आह ! वज्रपात हो गया :—

अफसोस आरजूओं की बस्ती उजड़ गई।
कैसी बनी थी बात कि बनकर बिगड़ गई ॥

गाना

किस-किस तरह के दुनिया पहलू बदल रही है।
तकदीर के न आगे तदबीर चल रही है ॥
जिस-जिस जमी पे मैंने अपना कदम जमाया।
वह ही कदम के नीचे मानो फिसल रही है ॥
कितने बली हमारे परलोक को सिधारे।
दहशत से जिनकी दुनिया अब तक दहल रही है ॥
अरमान लुट चुके हैं सब मित्र छुट चुके हैं।
गम की कुशल चिता में तकदीर जल रही है ॥

मन्त्री—महाराज ! शान्ति कीजिये ! इतने निराश न हूजिये।

रावण—आह ! अब किस पर शान्ति करू ? किसके भरोसे पर धीरज धरू ?

मन्त्री—महाराज ! जरा विचार तो कीजिये कि आपका बली पुत्र नारान्तक बहावलपुर में राज्य कर रहा है जिसे मूलों में उत्पन्न होने के कारण आप ने समुद्र में बहा दिया था।

रावण—ठीक ! बिल्कुल ठीक ! तुमने खूब याद दिलाया, और मेरे

सच्चे हितैषी का स्मरण कराया ! अच्छा किसी दूत को बुलवाओ और नारान्तक के पास बहवाबलपुर सन्देश भिजवाओ।

मन्त्री—महाराज ! धूमकेतु बड़ा चतुर और योद्धा है, यदि उसे भेज दिया जाये तो अच्छा है।

रावण—हां-हां ठीक है। उसे ही बुलाओ।

मन्त्री—द्वारपाल ! धूमकेतु को अभी हाजिर करो।

द्वारपाल—जो आज्ञा श्रीमान ! (जाना और धूमकेतु को लेकर आना)

धूमकेतु—महाराज की जय हो, सेवक को क्या आज्ञा है ?

रावण—तुम अभी बहवाबलपुर चले जाओ और वहां के राजा नारान्तक के पास हमारा पत्र पहुंचाओ।

धूमकेतु—जैसी आज्ञा महाराज !

[धूमकेतु का जाना, परदा गिरना]

दृश्य छठा

(नारान्तकदरबार)

नारान्तक—मेरे यश और कीर्ति को जानता संसार है।
मेरा वैभव उच्च है मेरा अमिट भण्डार है ।।
धाक से कम्पा दिया है लोक और सुरधाम को।
जानते है आज सब नारान्तक के नाम को ।।

मन्त्री—ठीक है महाराज !

द्वारपाल—महाराज की जय हो ! लंका का राजदूत आया है जो श्रीमान के नाम कोई सन्देश लाया है।

नारान्तक—अच्छा, आने दो !

धूमकेतु—(आकर) महाराज की जय हो ! लंकापति रावण ने मुझे भेजा है और आपके नाम यह पत्र दिया है।

नारान्तक—हां हां ! हमने सुना है कि रावण हमारे पिता हैं, कहो

धूमकेतु—कुछ न पूछो महाराज ! आज लंका पर बड़ी आपत्ति आ रही है शत्रुओं की सेना चारों ओर से मण्डरा रही है।

नारान्तक—शत्रुओं की सेना ? ऐसा कौन हिये का अन्धा है जिस ने लंका पर आक्रमण कर दिया है !

धूमकेतु—महाराज ने पत्र में सब कुछ लिख दिया है और आप को साथ लेकर आने को कहा है !

नारान्तक—मन्त्री जी ! यह पत्र पढ़कर सुनाओ !

मन्त्री—(पत्र पढ़ता है) प्रिय पुत्र, आनन्द रहो ! मैं अभागा हूं जो तुम जैसे पुत्र से अलग पड़ा हूं। आजकल लंका पर एक महान संकट आया हुआ है। राम और लक्ष्मण नामक अयोध्या के दो राजकुमारों ने बड़ा अनर्थ कर डाला है और मेरे सारे योद्धाओं को मार डाला है ; इस समय मुझे तुम्हारी सहायता की बड़ी आवश्यकता है इसलिये यह पत्र पाते ही पल की देर न लगाना और धूमकेतू के साथ तुरन्त चले आना।

तुम्हारा पिता 'रावण'

नारान्तक—ओह ! दो राजकुमारों का इतना साहस कि किसी का भी भय न खायें और निडर होकर लंका पर आक्रमण करने चले आवें। अच्छा मैं अभी जाता हूं और उनको ठिकाने लगाता हूं :—

कौन हैं जो आ गये हैं तंग अपनी जान से।
ना समझ बाजी लड़ा बैठे हैं अपने प्राण से ॥
मौत से टकराएगा तो नाश होता जायगा।
सामने जो आयगा भूमि पै सोता जायगा ॥

(मन्त्री से) अच्छा मन्त्री जी ! सेना को कूच की आज्ञा सुना दी जाय और हमारी सवारी भी सजा दी जाय। हथियार और रसद आदि का ठीक-ठीक प्रबन्ध किया जाय और प्रात: काल ही कूच बोल दिया जाय !

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज ! [मन्त्री का जाना, परदा गिरना]

दृश्य सातवां

(रामादल की छावनी)

राम—विभीषण जी! आज तो दक्षिण की ओर से बादल सा गरजता हुआ आ रहा है और बड़ा ही भयंकर अन्धकार छा रहा है! न जाने क्या कारण है?

विभीषण—महाराज! ऐसा प्रतीत होता है कि किसी राजा की सेना चढ़ी आ रही है क्योंकि बीच-बीच में बिगुल और रणभेरी भी सुनी जा रही है!

राम—सम्भव है ऐसा ही हो!

दूत—(आकर) महाराज की जय हो! रावण का पुत्र नारान्तक दलबल सहित बढ़ा आ रहा है, ज्ञात हुआ है कि रावण का दूत उसे बुला कर ला रहा है।

राम—क्या रावण का कोई पुत्र नारान्तक भी है!

विभीषण—हां महाराज! यह आजकल बहबाबलपुर का राजा और बड़ा पराक्रमी योद्धा है!

राम—अच्छा तो हनुमान जी! तुम लक्ष्मण सहित चले जाओ और मार्ग में ही रोक कर उस का अहंकार मिटाओ।

हनुमान—जैसी आज्ञा प्रभो!

[हनुमान, लक्ष्मण आदि का जाना, परदा गिरना]

दृश्य आठवां

(रास्ता)

नारान्तक—(हनुमान को आते देख कर) धूमकेतु! यह कौन है जो सामने से अकड़ता हुआ आ रहा है: मानो कोई युद्ध विजय करके आपे में नहीं समा रहा है।

धूमकेतु—महाराज! यह हनुमान नामक वानर बड़ा ही वीर और

पराक्रमी है। इसी ने एक बार लंका को जलाया था और अहिरावण को मार कर दोनों भाइयों को बचाया था !

नारान्तक—चलो ! तो अच्छा ही हुआ। पहले मुहूर्त में ही शिकार मिला ! :—

चढ़ रहा है जो इसे सारा नशा खिल जायगा,
बैर का रावण के बदला आज ही मिल जायगा।

हनुमान—(नारान्तक का आगा रोक कर) ठहर ! ओ नारान्तक ! कहाँ जाता है ? हमारी आज्ञा के बिना ही किधर पांव बढ़ाता है :—

आ गया मरने को तू भी खिंच के अपने पाप से !
कर यहां दो हाथ पहले; पीछे मिलना बाप से !

नारान्तक—आ ! आ ! मैं भी यही चाहता था कि पहले तुम्हें ही देखता जाऊं, पिता से मिलने पर कोई तो शुभ सूचना सुनाऊं। अच्छा हुआ कि पहले तू ही आ गया, मुहूर्त तो खाली न गया :—

सुन चुका हूं मैं अभी सब से अहंकारी है तू।
देखना मुझ को यही है कितना बलकारी है तू ॥

हनुमान—अच्छा तो सम्भल ! और अच्छी तरह देख हमारा बल।

[बहुत देर तक युद्ध होना; नारान्तक का गिरना]

हनुमान—चल दूर हो पापी ! इतना किस लिये उछल रहा था ? क्या इसी बल पर आगे से निकल रहा था ?

नारान्तक—(उठ कर) अरे पाजी ! इतना किस लिये उछल रहा था अब बच कर कहां जाता है, देखता हूं कि तुझे कौन बचाता है ?

लक्ष्मण—बस-बस इतनी बातें क्यों बनाता है ? यदि वीर है तो पराक्रम क्यों नहीं दिखाता है ?

नारान्तक—अरे मूर्ख :—

सोच ले दुनिया से तेरा आबो दाना उठ गया।
जिन्दगी के दिन गये सुख का जमाना उठ गया॥

लक्ष्मण—तो क्या तुझे भी लड़ना आता है? जो ऐसी बातें बनाता है? :—

जान से एक एक की बदला उतारा जायगा।
यह समझ ले वंश का ही वंश मारा जायगा॥

नारान्तक—ओह! इतना मुंहफट! इतना बोचाल! देखने में सीधा और आदत का चांडाल! :—

चाहता है जी तेरा जाने को यम के धाम को?
छोड़ जायेगा यहां रोता बिलकता राम को॥

लक्ष्मण—यह तो समय ही बतायगा कि यम के धाम कौन जायगा।

नारान्तक—अच्छा तो आगे बढ़ और सावधान होकर लड़।

[बहुत समय तक युद्ध होना किसी का न हारना]

नारान्तक—देखो! अब संध्या का समय हो गया है और सूर्य भी अस्ताचल को जा रहा है। वीर लोग रात्रि में युद्ध नहीं किया करते :

लक्ष्मण—अच्छा तो जा! अब विश्राम कर! प्रातःकाल फिर देखा जायगा कि तू कितना पराक्रम दिखलायगा?

[सब का जाना, परदा गिरना]

दृश्य नौवां

(रावण दरबार)

धूमकेतु—(आकर) महाराज की जय हो! नारान्तक जी आ गये हैं।

रावण—(मन्त्री से) अच्छा मन्त्री जी! तुम जल्दी जाओ और उसे आदर सहित ले आओ!

मन्त्री—जैसी आज्ञा महाराज!

[जाना, नारान्तक का आना]

नारान्तक—पिता जी प्रणाम।

रावण—(नरान्तक को गले लगा कर) जीवित रहो पुत्र। लोक में कीर्ति प्राप्त करो। कहो कुशल तो है ?

नारान्तक—हां पिता जी ! सब प्रकार से कुशल है केवल यहां के समाचार का दुख है।

रावण—हां बेटा ! कालनेमि, कुम्भकर्ण, मेघनाद, अहिरावण आदि हजारों योद्धा मारे जा चुके हैं। और लाखों स्त्रियों के सुहाग उजाड़ जा चुके हैं। अब लंका में कौन योद्धा है केवल एक तुम्हारा ही भरोसा है।

नारान्तक—तो चिन्ता ही क्या है ? मैं अकेला ही सबको ठिकाने लगा दूंगा और अन्याय का बदला चुका दूंगा।

रावण—धन्य हो पुत्र ! तुम धन्य हो! निस्सन्देह तुम सच्चे वीर हो।

नारान्तक—हा पिता जी ! आप सन्देह त्याग दीजिए और प्रातः मेरा युद्ध देखिये। मैं प्रण करके कहता हूं कि कल को पृथ्वी वानर रहित करके दोनों भाइयों को आपके सामने पकड़ लाऊंगा, तब ही आपका पुत्र कहलाऊंगा।

रावण—क्यों नहीं ! जिस को तुम जैसी सन्तान है उस का दुनिया में कैसे न सम्मान हो। अच्छा अब विश्राम करो और प्रातःकाल यही काम करो। वाह-वाह ! अब जी ठण्डा हुआ :—

सुबह होगी और बजेगा जीत का डंका मेरी;
तीन लोकों में उजागर होगी फिर लंका मेरी।

[परदा गिरना]

दृश्य दसवां

(युद्ध भूमि)

नारान्तक—ओ कायरो ! अब कहां जा छिपे हो ? आज तो नारान्तक सारा ही झगड़ा मिटायेगा। देखता हूं कि मेरे सामने कौन आयगा।

अंगद—(आकर) तो क्या ? तू अब भी बचकर चला जायगा ? ओ दुष्ट; रावण को बुला तेरी लाश उठाकर ले जायगा :—

खैर थी जब तक तुझे रावण ने बुलवाया न था।
जी रहा था जब तलक तू सामने आया न था।।

नारान्तक—अब तो सामने आ गया; अब हो अपना पराक्रम दिखा। अरे नीच। ऐसी बातें न बना वीरों के नाम को बट्टा न लगा।

हो चुकी है दुष्ट तेरी जिन्दगानी हो चुकी।
तेरा जीवन हो चुका तेरी जवानी हो चुकी।।

अंगद—अच्छा अब आगे बढ़ और वीरों की तरह लड़।

[युद्ध होना, अंगद का मूर्छित होकर गिर जाना]

हनुमान—(आगे बढ़ कर) बस-बस ओ चांडाल। आपे से बाहर न हो ले अब जीवन से हाथ धो : -

बात तो करता है बढ़ बढ़ कर बहुत अभिमान से।
जीत कर दिखला जरा संग्राम तू हनुमान से।।

नारान्तक—(व्यंग से) ओहो ? आप फिर आ गये ? लंका को जलाने वाले और अहिरावण को मौत की नींद सुलाने वाले फिर आ गये ? आइये ? आज तुम्हें उस वीरता का पुरस्कार देता हूं। राम को पीछे देखूंगा पहले तुम्हारी ही खबर लेता हूं :—

कायरों को जीत कर बलवान बन बैठा है तू।
आज देखूंगा कि क्या हनुमान बन बैठा है तू।।

हनुमान—आ ? ओ अधर्मी आ। मैं तेरे ही जैसे पापियों को खोज-२ कर मारता हूं और ऐसे ही दुष्ट राक्षसों को मृत्यु के घाट उतारता हूं :—

आज दिखलाऊंगा तुझ को वीर की क्या चाल है।
देख यह मुष्टिक निशाचर आज तेरा काल है।।

नारान्तक—ओ चांडाल ? मुझे यह मुष्टिक क्या दिखाता है; जीवन से रूस कर अपनी ही मौत को बुलाता है :—

इस तरह उड़कर न चल आपे से या बाहर न हो।
देख तेरी राह में सोया हुआ अजगर न हो।।

हनुमान—अजगर के बच्चे ? तु मुझे क्या बतायेगा ? पहले आपे को तो सम्भाल ? देख फूलों की सेज समझ कर अग्नि में पांव न डाल :—

देख ओ नादान अपने प्राण का घातक न बन।
सो रहा है शेर इसको छेड़ मत बालक न बन।।

नारान्तक—शेर और गीदड़ का सारा पता अभी हुआ जाता है। आगे बढ़कर आ पीछे क्यों हटता जाता है ? :—

हाथ करतब के दिखा और छोड़ इस तकरार को।
वार अपना भी चला और झेल मेरे वार को।

[युद्ध होना, हनुमान का मूछित हो जाना]

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर) बस बस ओ अन्यायी। अब जीवन की आशा छोड़ दे :—

फूलता है किस लिये अभिमान में आता है क्यों ?
भूलकर अपनी असल सिर पर चढ़ा जाता है क्यों।।
तू तो है क्या चीज जब योद्धा महा जाते रहे।
देख ले दुनियां से कैसे सूरमा जाते रहे।।

नारान्तक—जा ओ बच्चे जा। कल तो भाग्य से बच गया था आज तो मेरे सामने न आ। कहीं ऐसा न हो कि मुझे बालघात का पाप लग जाये और संसार मेरे नाम पर कलंक लगाये :—

क्यों बढ़ाता है अभी से कालयम से मेल तू।
भूलकर आया कहां कुछ जिन्दगी से खेल तू।।

लक्ष्मण—ओ दुष्ट। यह बालक ही तेरा नशा उतारेगा याद रख कि मेघनाद की तरह तुझे भी मारेगा।

नारान्तक—अच्छा ? यदि तू आप ही मरना चाहता है तो मैं क्या करूं ? चल तुझे भी नरक की आग में धरूं।

[युद्ध होना, लक्ष्मण का मूछित होना]

नारान्तक—(इधर उधर देखकर) बस ! ओ मुरदारो दिखा चुके वीरता ? आओ, आज सभी आकर अपने-अपने पराक्रम दिखाओ। (फिर देखकर) कोई नहीं। सब भाग गये। इन के मरते ही सारे भाग गये। चलो झगड़ा मिटा। अब सामने आने का साहस न करेंगे।

[नारान्तक का जाना, परदा गिरना]

दृश्य ग्यारहवां

(रामादल की छावनी)

सुग्रीव—महाराज ! क्या बताऊं ? आज तो नारान्तक ने अनर्थ कर डाला हमारा सारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ कर डाला।

लक्ष्मण—सचमुच भ्राता जी ? यदि वह कुछ दिन और इसी प्रकार लड़ता जायगा तो हमारे वीरों का साहस बिछड़ता जायगा।

राम—ओहो ? इतना कठोर है ?

हनुमान—कुछ न पूछिये महाराज ? युद्ध कला में वह इतना प्रवीण है कि उस पर विजय पाना असम्भव सा जान पड़ता है, अन्यायो चारों ओर से सचेत होकर लड़ता है।

अंगद—हां प्रभो ! मेरे ऊपर तो दुष्ट ने ऐसा शस्त्र चलाया कि मुझे बहुत समय तक बेसुध बनाया।

लक्ष्मण—और मेरी छाती पर भी गदा का एक ऐसा भयंकर वार किया कि मुझे मूर्छित कर दिया !

राम—तो फिर अब क्या करना होगा।

हनुमान—क्या बतावें महाराज ! नारान्तक तो कुछ निराला ही वीर है, उससे युद्ध करना बहुत ही टेढ़ी खीर है !

राम—अच्छा तो कल मैं ही उससे युद्ध करूंगा।

जाम्बवन्त—हां महाराज ! उस दुष्ट का जल्दी ही संहार कर दीजिये और वानर सेना की शान्ति का उपाय कीजिये। नहीं तो वह

सब को साहस हीन कर देगा, और सेना को निराशा से भर देगा।

[नारद मुनि का गाते हुए प्रवेश]

नारद— गाना

सब के नारायण रखवारे !

जाके और भरोसो नहीं ताके आप सहारे।

गणिका, व्याध, अजामिल, केवट नीच पतित हत्यारे।

करुणाकर तुम करुणा करके भवसागर ते तारे॥

भक्त ध्रुव ने याद कियो जब कारज सकल सवारे।

दुःखित हृदय प्रहलाद पुकारो पल में संकट टारे॥

राम—(नारद को देखकर और खड़े होकर) आह नारद जी ! नमस्कार आइये ! पधारिये !

नारद—नमस्कार भगवन ! कहिये ! इतनी रात्रि गये तक क्या विचार हो रहा है ?

राम —क्या बताऐं नारद जी ! कई दिन से युद्ध हो रहा है, परन्तु रावण का पुत्र नारान्तक मरने में नहीं आता; न जाने दुष्ट कितना कठोर है।

नारद—हां भगवन ! वह इस प्रकार कदापि न मरेगा ?

राम —क्यों ? क्या कारण है नारद जी ?

नारद—महाराज ! उसे ब्रह्मा जी का वरदान है इसलिये वह केवल एक ही उपाय से मर सकता है !

राम—वह क्या उपाय है नारद जी ?

नारद —सुनिये भगवन ! एक समय रावण के राज्य में बहत्तर कोटि राक्षस उत्पन्न हुए तो उसने अपने गुरू शुक्राचार्य को बुला कर उनके जन्म का शगुन पूछा ? शुक्राचार्य ने कहा कि इस लग्न के बालक मूलों मे उत्पन्न हुए हैं। यदि वे घर में रहेंगे तो अपने-अपने पिताओं का नाश कर देंगे ! यह सुनते ही रावण ने उन सब को समुद्र में डलवा दिया ! परन्तु वे बालक वट-

वृक्ष के सहारे पलने लगे। बड़े होने पर उन सभों ने ब्रह्मा जी का तप किया और ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर उन्हें बहबाबलपुर में बसा दिया तथा रावण के पुत्र नारान्तक को उन का राजा बना दिया ! ब्रह्मा जी ने यह भी वरदान दिया कि तू ब्रह्मांड में किसी से भी न हार सकेगा, केवल सुग्रीव का पुत्र दधिबल ही तुझे मार सकेगा।

राम—ओहो ! यह भेद है ?

नारद—हां प्रभो ! अब किसी को भेज कर दधिबल को बुलवाइये और इस कठोर राक्षस का विध्वस कराइये ?

राम—परन्तु नारद जी ! दधिबल रहता कहां है ?

नारद—महाराज। वह धौलागिरि पर आप का भजन कर रहा है।

राम—अच्छा वीर हनुमान जी ! आप धौलागिरि पर चले जाइये और दधिबल को लेकर शीघ्र ही आइये।

हनुमान—जैसी आज्ञा प्रभो ! (जाना)

नारद—अच्छा भगवान। अब आज्ञा दीजिये और आप भी विश्राम कीजिये।

राम—अच्छा मुनिराज ! धन्यवाद !

[नारद का गाते हुए जाना, परदा गिरना]

दृश्य बारहवां

(धौलागिरि)

हनुमान—(आकर और चारों ओर देखकर) हैं ! यहां तो कोई भी नहीं। चारों ओर सन्नाटा छा रहा है। दधिबल को कहां ढूंढू। (आवाज सुन कर) अहा। यह मधुर स्वर कहां से आ रहा है ? प्रतीत होता है कि कोई [illegible]म-नाम गा रहा है। (आगे बढ़ कर) सम्भव है यह दधि[illegible] ही हो ? (ध्यान से गाने का स्वर सुनना)

दधिबल—

गाना

प्रभु तुम शोक हरण भय भंजन।

करुणाकर अब करुणा करके काटो जग के बन्धन ॥ प्रभु तुम···

अवध नगर, कौशल के राजा पावन दशरथ-नन्दन ।
जगत सहायक सब सुख दायक दुख भंजन मनरंजन । प्रभु तुम···
मरण-समय सिर पर चढ़ आया ना ढूंढा सुख-साधन ।
'कुशल' सहज ही बीता जाता, सारा निषफल जीवन । प्रभु तुम···

हनुमान—यह ध्वनि तो इसी गुफा से आ रही है, चलूं इसी की ओर चलूं । (आगे बढ़ना)

दधिबल—(गुफा से निकल कर) ये शंकाएं भी कैसी विचित्र होती हैं कि भजन में भी बाधा डाल देती हैं; और आज तो समय के पहले ही व्यापने लगी । (हनुमान को देखकर) कौन है भाई ?

हनुमान—जय श्री राम !

दधिबल—जय श्री राम । कौन है ? अर्द्ध रात्रि के समय यहां क्या काम है ?

हनुमान—भक्त दधिबल । मैं तुम्हारे पिता सुग्रीव का मन्त्री हनुमान हूं ।

दधिबल—(आश्चर्य से) हनुमान ? कहो अंजनीकुमार । कैसे आना हुआ ?

हनुमान—भाई । तुम्हारी तपस्या सफल हुई । प्रभु राम चन्द्र जी ने तुम्हें याद किया है ।

दधिबल—(प्रसन्न होकर) प्रभु ने याद किया है ? सच !

हनुमान—हां भाई ! तुम्हें इसी समय साथ चलना होगा !

दधिबल—अहो भाग्य; प्रभु के दर्शनों के लिये जो तपस्या कर रहा था आज वह पूर्ण हुई । मेरे लिये इस से बढ़कर सुन्दर अवसर और क्या हो सकता है ? चलिये महाराज !

[दोनों का जाना, परदा गिरना]

दृश्य तेरहवां

(रामादल की छावनी)

विभीषण—वह देखिये महाराज! हनुमान दधिबल सहित आ रहे हैं।

हनुमान—(आकर) महाराज नमस्कार !

दधिबल—(चरणों में गिर कर) जय हो ! कृपासिन्ध भगवान आप की जय हो !

राम—(दधिबल को छाती से लगाकर) चिरंजीव रहो पुत्र ! कहो कुशल से तो हो !

दधिबल—महाराज ! जिनको आपके चरणों का आधार है उनको कोई बाधा में कैसे डाल सकता है ! (सुग्रीव के चरणों में गिर कर) पिता जी प्रणाम !

सुग्रीव—जीवित रहो पुत्र ! कहो अच्छी तरह तो हो ?

दधिबल—हां पिता जी ! प्रभु का अनुग्रह और आप का आशीर्वाद है !

सुग्रीव—प्यारे पुत्र ! तुम जानते ही होगे कि आजकल नारान्तक से युद्ध चल रहा है और वह ब्रह्मा जी के वरदान के कारण तुम्हारे द्वारा ही मारा जा सकता है !

दधिबल—हाँ पिता जी ! जब हम गुरु के यहां शिक्षा पा रहे थे तब ब्रह्मा जी ने उसे यही वरदान दिया था।

सुग्रीव—अच्छा तो प्रातःकाल तुम उससे लड़ने चले जाओ और अधर्मी का वध करके प्रभु की चिन्ता मिटाओ।

दधिबल—ऐसा ही होगा पिता जी ! प्रभु के लिये मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं।

[परदा गिरना]

दृश्य चौदहवां

(युद्ध भूमि)

नारान्तक—(गरज कर) आओ ! हे सिंह के शिकारों अपनी-अपनी गुफाओं से निकल कर आओ। जो कल के युद्ध से बच गये थे वे आज परलोक की हवा खाओ ! :—

जी चुके हो बहुत अब प्राणों की ममता छोड दो।
नाश का दिन आ गया जीने की आशा छोड़ दो॥

दधिबल—(आकर) ओहो ! मित्र नारान्तक ! कहो आनन्द से तो हो ?

नारान्तक—कौन दधिबल । कहो ? तुम यहां कहां ?

दधिबल—मैंने सुना है कि रावण का पक्ष लेकर तुम भी भगवान से बैर करने चले हो । हे भाई ! भगवान के शत्रु का कहो कुशल नहीं :—

राम की महिमा को तुम ने भाई जाना ही नहीं ।
उनके शत्रु का कहीं कोई ठिकाना ही नहीं ।।

नारान्तक—दधिबल ! हम शत्रु से प्रीत नहीं किया करते कुल के बैरी को कभी मान नहीं दिया करते । यह रीति तुम्हीं ने निकाली है कि अपने चचा बाली के शत्रु को आबरू बेच डाली है :—

कुल कलंकी आज तक ऐसा कोई देखा नहीं ।
तुम ही ऐसे हो जिन्हें कुल मान की परवा नहीं ।।

दधिबल—अरे मूर्ख ! तेरी नीति कुल का मान नहीं कुल का नाश करने वाली नीति है । कहीं अधर्म की जय होते हुए भी देखी है ?

पाप के पथ पर कहीं विश्राम की छाया नहीं ।
धर्म के बैरी की तीनों लोक में रक्षा नहीं ।।
राख पर लंका की; आशाओं को रोने से बचा।
जो बचा सकता है कुल का नाश होने से बचा ।।

नारान्तक—चल ! चल ! ओ डरपोक वानर यहां से टल । तू मुझे सचाई का मार्ग दिखाता है; या अपनी ही तरह कुलघातक और विश्वासघाती बनाना चाहता है :—

जिसने अपने बाप का अच्छा बुरा देखा नहीं ।
बाप का शत्रु है ऐसा पुत्र वह बेटा नहीं ।।

दधिबल—नारान्तक । गुरु भाई होने के नाते मैं तुझे एक बार फिर समझाता हूं कि तू राम से बैर न बढ़ा । अपने और पिता के वैभव को धूल मे न मिला :—

कह रहा हूं फिर तुझे, अभिमान में अन्धा न बन।
ओ अधर्मी अपने कुल के खून का प्यासा न बन ॥

नारान्तक—बस-बस ओ दुष्ट ! मैं समझ गया कि तू मेरी नरमी से उलटी शिक्षा लेगा और मेरे हाथों को अवश्य कष्ट देगा। अच्छा, ले सम्भल ! :—

इस परम शिक्षा का तेरी फल चखाता हूं तुझे।
देख अब भूमि की शैया पर सुलाता हूं तुझे !

दधिबल—अच्छा ! यदि तेरी इच्छा है तो आ ! शिक्षा के द्वारा नहीं मानता तो संग्राम के द्वारा अपने कुकर्मों का फल पा !

कर्म का हीना भी है बुद्धि का हीना ही नहीं।
चल अधर्मी अब तुझे दुनिया में जीना ही नहीं॥

[दोनों में युद्ध होना; नारान्तक का मारा जाना]

राम—धन्य हो भक्त दधिबल ! तुम धन्य हो ! तुमने सचमुच बड़ी वीरता का काम किया और मेरी चिन्ता का हर लिया। अब तुम्हें जो अच्छा लगे कोई वर मांग लो !

दधिबल—हे नाथ ! संसार के सकल पदार्थ नाशवान हैं; इनके मोह में फंसने वाले जीव महान अज्ञान हैं; प्रभो ! मुझे इन के बन्धन से छुड़ा दीजिये और अपनी निर्मल भक्ति दीजिये।

राम—एवमस्तु !

[परदा गिरना]

दृश्य पन्द्रहवां

(अशोक वाटिका)

सीता—

गाना

विरहा विरहन का सोने न दे

स्वामी बिना मोहे सृष्टि अंधेरी; दुखिया को दुःखों ने घेरी;
प्रेमअनल मोहे रोने न दे—विरहा……
रावण पापी दुष्ट कुकर्मी-दारुण दुख देता है अधर्मी।
प्राण तजूं तो खोने न दे। विरहा……

आह ! प्राण नाथ ! क्या अभी तक मेरे पापों का अन्त नहीं आया ? क्या आज तक मैंने अपने कुकर्मों का फल नहीं पाया? आओ ! हे संकट मोचन ! अब तो मेरी सहायता को आओ! अब तो दासी को इस कठोर बन्धन से छुड़ाओ :—

जी रही हूं नाथ मैं केवल सहारे आप के।
कब तलक दर्शन मिलेंगे प्राण प्यारे आपके ?

[रावण का प्रवेश]

रावण—कहो सीते ! क्या विचार है ?

सीता—(मुंह फेर कर) दूर हो पापी ! जानकी तेरी सूरत से बेजार है।

रावण—ओह ! इतनी कठोर ! यौवन की देवी इतनी कठोर ! सीते मैं तेरे सामने पल्ला पसारता हूं ! तुझ से प्रेम की भीख मांगता हूं ! दया कर ! कुछ तो दया कर:—

द्वार पर आये भिखारी को महारानी न फेर।
निर्दयी बनकर मेरी आशाओं पर पानी न फेर ॥

सीता—रावण ! तू मुझे चैन क्यों नहीं लेने देता है ? ओ दुष्ट ! इतने पापों का बोझ किस लिए सिर पर लेता है ?:—

ज्ञान का भंडार होकर बेसमझ रावण न बन।
देख अपने आप अपने नाश का कारण न बन ॥

रावण—बावली ! मैं तुझे इतनी बार समझा चुका, ऊंच-नीच के सारे मार्ग दिखा चुका, परन्तु तेरी समझ में कुछ भी न आया तूने मेरे वैभव को अब तक भी धूल ही बताया मैं फिर कहता हूं :—

जानकी रावण के दुर्लभ प्यार पर ठोकर न मार !
तीन लोकों के अतुल भण्डार पर ठोकर न मार ॥

सीता—अरे दुष्ट ! इतना नीच काम न कर ! वासना को प्रेम कह कर सच्चे प्रेम को बदनाम न कर :—

प्यार क्या जाने, अधर्मी काम में अन्धा है तू।
वासनाओं में फंसा है धर्म को भूला है तू ॥

रावण—(हंसकर) धर्म ! धर्म किस वस्तु का नाम है ? केवल पाखं-डियों का रचा हुआ एक जाल है :—

रख लिया है मूर्खों ने धर्म इक धोखे का नाम।
धर्म कहती है जिसे, है मन के बहलावे का नाम।

सीता—ठीक है ! तेरे जैसा पापी धर्म-अधर्म को क्या पहचानता है ? हीरे का मूल्य तो कोई जौहरी ही जानता है :—

नीच पामर के लिए सुरताल पोखर एक है।
नासमझ के वास्ते लाल और पत्थर एक है ।।

रावण—बस ! ओ हठ की हठीला। अब और अधिक न बढ़। मूर्खों की तरह सिर पर न चढ़ :—

मान ले कहना मेरा अब मत बढ़ा तकरार देख।
अन्यथा गरदन पै तेरी होगी यह तलवार देख ।।

सीता—मूर्ख ! तलवार का भय उनको होता है, जो मरने से डरते हैं। पतिव्रता स्त्रियां तो सदा अपने प्राणों से खेला करती हैं।

चाहे जो अन्याय कर धुन मेरी जा सकती नहीं।
शक्तियां संसार की पथ से हटा सकती नहीं ।।

रावण—क्या करूं ! मजबूर हूं। अभी अवधि में कुछ दिन और बाकी हैं। नहीं तो सारी हठ देख लेता। जितना तू टेढ़ी चल रही है उतनी ही सीधी बना देता। [रावण का जाना]

सीता—(स्वयं) देख रहे हो स्वामी ! यह दुष्ट किस तरह रहा है; कटु वचन कह-कह कर मेरा मर्म दुखा रहा है :—

पाप हो जब इस तरह फिर किस तरह सन्तोष हो ?
सुन रहे हो आप, फिर किस वास्ते खामोश हो ?

गाना— कौन सुने अब विपत कहानी ?

स्वामी मो से रूठ गये हैं—अब दिन मोरे कठिन भये हैं।
दर्शन मो को होवत नाही-ना जानूं क्या ठानी ।।
कौन सुने······

जो मोहे बस मरना होता—काहे को दुख भरना होता।
जब विरहा काटे ना कटता-खो देती जिन्दगानी ।।

[परदा गिरता है] कौन सुने······

दृश्य सोलहवां

(रावण दरबार)

रावण—वाह रे बली नारान्तक ! कल तूने कैसा पराक्रम दिखाया कि लक्ष्मण, हनुमान, अंगद आदि सभी को मूर्छित बनाया। क्यों नहीं आखिर तो रावण का पुत्र है :—

है मुझे निश्चय करेगा सिद्ध मेरा काम तू।
विश्व में फैलायगा रावण का इक दिन नाम तू।।

मन्त्री यथार्थ है महाराज ! नारान्तक से ऐसी ही आशा है।

[दूत का प्रवेश]

दूत—(घबराये हुए) महाराज !

रावण—क्यों ? क्या समाचार है ?

दूत—(डरते-डरते) महाराज ! नारान्तक भी परलोक सिधार गया !

रावण—परलोक सिधार गया ! झूठ बकता है।

दूत—नहीं पृथ्वी नाथ ! सत्य कह रहा हूं।

रावण—तो आखिर उसे किसने मारा ?

दूत—सुग्रीव के पुत्र दधिबल ने।

रावण—अरे मूर्ख दधिबल यहां कहाँ था ?

दूत—महाराज। उसे हनुमान जाकर धौलागिरि से ले आया और उसने उसे प्रातःकाल ही सुरपुर पहुंचाया।

रावण—हाँ, अब विश्वास हो गया कि निस्सन्देह मेरा भाग्य सो गया ? अफसोस :—

हो चुका था खात्मा इक इक दिलावर का मेरे।
बुझ गया है आखरी दीपक भी अब घर का मेरे।।

मन्त्री—शान्त। महाराज, शान्त।

रावण—चुप हो। (आवेश में) सावधान हो जा। हे शत्रुओं का नाश करने वाली चन्द्रहास। सावधान हो जा। फड़क जाओ। हे कैलाश को हिलाने वाली भुजाओ। फड़क जाओ, बस अब नहीं रहा जाता शत्रुओं की विजय का समाचार बार-बार नहीं सुना जाता :—

क्रोध ने अन्धा किया है आज मेरे ज्ञान को।
अब नहीं बैठूंगा मैं आराम से इक आन को।।
जान की बाजी लगाकर अब समर में जाऊंगा।
आज शत्रु का जगत से नाश करके आऊंगा।।

[जाना, परदा गिरता है]

दृश्य सत्रहवां

[रावण यज्ञ कर रहा है, वानर भ्रष्ट करने की चेष्टा कर रहे हैं]

(रावण की यज्ञ-शाला)

एक वानर—यह देखो। कैसा भक्त बना बैठा है ? मानो इसके समान संसार में कोई दूसरा तपस्वी ही नहीं।

दूसरा—सारे कुल का नाश कराके अब दुष्ट को परमार्थ की सूझी है।

अंगद—(रावण से) क्यों रे निर्लज्ज। लाखों पाप करके अब बगुला भक्त बन कर बैठा है। क्या अपने कुकर्मों का प्रायश्चित करना चाहता है ? (अंगद का लात मारना)

हनुमान—अरे ! यह इस प्रकार नहीं मानेगा। चलो मन्दोदरी को पकड़ कर लाओ और इसके सामने उसके मस्तक पर कालिमा का टीका लगाओ।

अंगद—हां-हां, ठीक है। चलो चलो।

[मन्दोदरी को घसीट कर लाना]

स्त्रियां—बचाओ ! हे प्राण नाथ ! बचाओ।

रावण—(क्रोध में खड़े होकर) अरे दुष्टो, इतना अत्याचार मेरे सामने मेरी पत्नी के साथ यह दुर्व्यवहार ?

तुम समझते हो कि यह अपमान भी सह जाऊंगा।
चीर कर छाती सभी का खून पी रह जाऊंगा।।

[रावण का वानरों के पीछे दौड़ना; अंगद, हनुमान आदि का यज्ञ-विध्वंस करना और भाग जाना]

रावण—कहां जा सकते हो दुष्टों ? मेरे हाथ से बचकर कहां जा सकते हो ? यदि पाताल में भी जाओगे तो भी बचने नहीं पाओगे! :—

खींच लाऊंगा तुम्हें भूमि का सीना फाड़ कर।
मार डालूंगा मसल कर सिर, कलेजा फाड़ कर।।
[यज्ञ को विध्वंस हुआ देखकर और निराश होकर]
आ ! यह कैसा अपशकुन ? नीच मेरा अन्तिम यज्ञ भी बिगाड़ गये। अब क्या होगा ? विजय की आशा बहुत कम रह गई:—
आज आशाओं के सारे पुष्प ही कुम्हला गये।
सब दिशाओं में निराशाओं के घन मंडरा गये।।
(बाजों का शोर सुनकर) होने दो ! इन अपशकुनों को भी होने दो ! वह सुनो ! शत्रुओं के बाजे बज रहे हैं। बजाओ तुम भी रण-भेरी बजाओ ! मेरी चतुरंगिनी सेना का सजाओ परवाह ही क्या है ? एक-एक को देख लूंगा :—
बढ़ता चलूंगा जीत का झंडा लिये हुए।
गाता चलूंगा मौत का फंदा लिये हुए।।
[जाना, परदा गिरता है]

दृश्य अठारहवां

(युद्ध भूमि)

रावण—उठ जाग, हे रणचण्डी ! अपना विनाशकारी खप्पर लिये हुए उठ जाग ! खोल दे ! ओ यमराज ! आज नरक का द्वार खोल दे। भैरव ! तू सावधान हो जा ! पिशाचिनी ! तू रक्त चाटने वाला मुंह खोल ! कालिका ! तू मुण्डों की माला बना:—
सिर पै सिर कट-कट गिरेंगे लाश होगी लाश पर।
रक्त के नाले बहेंगे देखना आकाश पर।।
सेनापति—(सामने की ओर संकेत करके) वह देखिये महाराज ! जटा-जूट बांधे और हाथों में धनुष-बाण उठाये राम इसी ओर आ रहा है, मानो कोई भयंकर युद्ध विजय करने जा रहा है।
रावण—हा ! मैं भी इसी को खोज रहा था (राम की ओर) आ ! ओ

तपस्वी ! आ, आज मैं तेरे खून से सारे सम्बन्धियों की मौत का बदला लूंगा, तूने जितने अन्याय किये हैं उन सब का पूरा-पूरा दण्ड दूंगा। आगे बढ़ और देख :—

किस तरह होती है जीवन से निराशा देख ले।
आज अपनी दुष्टता का भी तमाशा देख ले।।
भागकर छिपने से तेरी जान बच सकती नहीं।
आ बचाये जो तुझ ऐसी कोई शक्ति नहीं।।

राम—(आगे बढ़कर) रावण ! इतनी भूल न कर; यदि किसी से भी नहीं तो भाग्य के चक्र से तो डर :—

नाश होने मं तू अपने को बचा सकता नहीं।
जान ले रावण! कि औरों को मिटा सकता नहीं।।

रावण—मिटा सकता नहीं ? भूल जा, हे राम ! उस हवा को भूल जा ! आज मैं नाश का भी विनाश कर दूंगा, सारी समर-भूमि को लाशों से भर दूंगा :—

तोड़ दूंगा चक्र नभ का, भाग्य का झुठलाऊंगा।
चाहे कुछ भी हो विजय करके तुझे दिखलाऊंगा।।

राम—विजय ? क्या पापों से विजय होती है ? क्या अन्याय और दुराचारों से विजय होती है ?

देख रावण ध्यान से और खोल आंखें न्याय की।
न्याय की जय और पराजय है सदा अन्याय की।।

रावण—अरे अज्ञान ! तू मेरी शक्ति को नहीं पहचानता है, क्या मुझे भी साधारण मनुष्य जानता है :—

देव; दानवदल; दनुज—दातार कहते है मुझे।
यम, वरुण, अग्नि, पवन—सरदार कहते हैं मुझे।।
विश्व-ज्ञानी, ज्ञान का भण्डार कहते हैं मुझे।
लाक के गुणवान गुण-अवतार कहते हैं मुझे।।
बज रहा है मेरा डका स्वर्ग और पाताल में।
गूंजता है नाम मेरा शङ्ख और घड़ियाल में।।

राम—हां ! यह मैं सब कुछ जानता हूं, और तेरी बड़ाई को महान मानता हूं; परन्तु देख रावण, अहंकार सारे वैभव को धूल में मिला देता है, दुष्कर्म और पापाचार शक्ति की जड़ों पर कुल्हाड़ा चला देता है। क्या तू नहीं जानता कि :—

वीर, पण्डित, तेजधारी, राव और राजा गये।
काल के पापी उदर में सैंकड़ों योद्धा गये।।
जग-विजेता, धीर और बलवान कोई भी नहीं।
कर्मयोगी, सन्त और गुणवान कोई भी नहीं।।

रावण—तो क्या तू मुझे ज्ञान सिखाता है ? पण्डितों जैसी बातें बना कर अपने प्राण बचाना चाहता है ? अरे मूर्ख ! यह तो देख कि मैंने देवताओं और दिग्पालों की मर्यादा बिगाड़ दी है, सारे विश्व को विजय करके आकाश पर ध्वजा गाड़ दी है बड़े-बड़े महिपाल मेरी आज्ञा पालते हैं,स्वर्ग के देवता मेरी सेवा करके अपना पेट पालते हैं :—

कुबेर और दिक्पाल, दानव बिचारे।
महा तुच्छ सेवक हैं लंका के सारे।।
दिखाते हैं प्रकाश चाँद और तारे।
पवन साफ करता है कूचे हमारे।।
खड़ा रोज यम मेरे पहरे पै होता।
वरुण नालियों को हमारी है धोता।।

राम—ठीक है ! परन्तु रावण अब वे दिन जा चुके हैं, तेरे पाप कर्म अब तेरे सामने आ चुके हैं और विनाश के देवता तेरी गरदन दबा चुके हैं :—

मिट गया वैभव का जादू अब तो बस अंधेर है।
जान ले मिटने में तेरे बस पलों का देर है।।

रावण—क्या बोलता है ? अरे तपस्वी ! शब्दों में विष क्यों घोलता है ? देख लेना ! तू आज भी मेरी वीरता का चमत्कार देख लेना :—

युद्ध में तलवार के जौहर दिखाता जाऊंगा।
देखना संग्राम में बिजली गिराता जाऊंगा।।

आग की भट्टी बनूंगा और जलाता जाऊंगा ।
पीस कर सुरमा करूंगा और उड़ाता जाऊंगा।।
हो चुकी बस आज तक ही जय तुम्हारी हो चुकी।
याद रखो अब विजय चेरी हमारी हो चुकी ।।

राम—अच्छा ! यदि तुझे अपनी विजय का इतना ही विश्वास है तो आगे बढ़ और देख कि विजय लक्ष्मी किस के पास है ।

रावण—हां-हां ! आगे आ ! और अपना सारा पराक्रम दिखा ।

[युद्ध होना और वानर सेना में भगदड़ पड़ना]

आकाशवाणी—जल्दी कीजिये ! महाराज ! इस पापी का वध जल्दी कीजिये । वानर भयभीत होकर भागे जा रहे हैं और स्वर्ग के देवता बहुत घबरा रहे हैं ।

विभीषण—(घबराये हुये) महाराज ! अनर्थ हो गया ! जिधर देखो उधर रावण ही लड़ते हुए नजर आ रहे हैं।

राम—यह सब राक्षसी माया है विभीषण । लो मैं इसका नाश किये देता हूं ! (राम का माया-भेदी वाण छोड़ना)

विभीषण—बस महाराज ! अब इसे अधिक खेल न खिलाइये जल्दी ही सुरपुर पहुंचाइये !

राम—क्या करूं भाई ! इस दुष्ट के जितने सिर काटे जाते हैं उतने ही और उत्पन्न हो जाते हैं ।

विभीषण—हां महाराज ! इसने कई बार अपने सीस काट-काट कर शिवजी पर चढ़ाए हैं, और आज एक-एक के बदले अनेक पाये हैं ।

राम—तो फिर क्या करना चाहिये ?

विभीषण—सुनिये प्रभो !

इस तरह यह मर नहीं सकता किसी हथियार से ।
तीर से, बरछी से, भाला, ढाल, और तलवार से ।।
नाभि में इसकी है अमृत-कुण्ड जाना चाहिये ।
यह मरेगा तब उसे पहिले सुखाना चाहिये ।।

राम—ओहो ! यह भेद है ! अच्छा ! अब अग्निवाण द्वारा इस कुंड

को ही सुखाता हूं और वानरों तथा देवताओं का सन्ताप मिटाता हूं।

[राम द्वारा अग्निबाण मारना, रावण का गिरना, देवताओं का विमानों पर चढ़कर फूल बरसाना और स्तुति गाना]

सब—जय ! सियावर रामचन्द्र की जय !

राम—अच्छा हनुमान जी ! अब आप जाकर जानकी को विजय की सूचना पहुंचाइये और अपने साथ ले आइये !

हनुमान—जैसी आज्ञा प्रभो ! (जाना)

राम—(लक्ष्मण से) भाई ! कहने को तो रावण हमारा शत्रु है परन्तु राजनीति में परम गुरु है। इसलिये बैरभाव को भूल कर उसके पास जाओ और उसके अनुभव से लाभ उठाओ।

लक्ष्मण—जैसी आज्ञा भगवन ! (रावण के पास जाकर) लंकेश ! हमारी-तुम्हारी जो शत्रुता थी अब सारी समाप्त हो गई। इस समय उन पिछली बातों का ध्यान न लाओ और कृपा करके हमें अपना अनुभव बताओ। (रावण चुप रहता है) ओहो! बोलता भी नहीं। अभी तक वही अहंकार भरा हुआ है। (राम के पास जाकर) महाराज ! वह तो आंखें भी नहीं खोलता, मुंह से भी नहीं बोलता। मैंने उसके सिर पर खड़ा होकर कई बार पुकारा परन्तु उसने फूटे मुंह से एक शब्द भी न उचारा।

राम—वाह ! नीति का उल्लघंन करके नीति का उपदेश कैसे पा सकते हो ? गुरु का निरादर करके ज्ञान लाभ कैसे उठा सकते हो ? जाओ और चरणों की ओर खड़े होकर पुकारो !

लक्ष्मण—बहुत अच्छा प्रभो। (रावण के चरणों की ओर खड़ा होकर) महात्मन, मेरी प्राथना स्वीकार कीजिये और हमें कोई उत्तम शिक्षा दीजिये।

रावण—वीर लक्ष्मण ! तुम स्वयं अपने ज्ञान से जगत का कल्याण करते हो किन्तु मेरा अनुभव पूछ कर मेरा सम्मान करते हो। अच्छा तो सुनो :—

गाना (तर्ज—लहद में रोशनी…)

सिखाना ज्ञान तुमको दीप सूरज को दिखाना है।
तुम्हारी ज्ञान शक्ति को तो वेदों ने बखाना है॥
न सुनना सीख अपनों की न देना ध्यान नीति पर।
यह कुल-सम्मान खोना है, धरम की जड़ कटाना है॥
समझना बल अधिक अपना सदा अभिमान में रहना।
यह अपने आप पैरों पर कुल्हाड़ी का चलाना है॥
बुरा है छोड़ देना काम सारा आज का कल पर।
भंवर में नाश के खुद अपनी नौका को गिराना है॥
न लाना ध्यान में शत्रु को अपने जानकर छोटा।
यह अपने रास्ते में आप ही कांटे बिछाना है॥
कुशल जग-सम्पदा को मान में अपनी समझ लेना।
अधर्मी बन के मानवता की मर्यादा मिटाना है॥

लक्ष्मण—धन्य ! ज्ञान के पुंज रावण ! तुम्हें धन्य !

रावण—अच्छा लक्ष्मण ! अब बोला नहीं जाता, प्राण पखेरू उड़ना चाहते हैं। अच्छा विदा।…… (मरना)

राम—आहा ! यह आसार संसार भी क्या है कि इतना महान पराक्रमी भी भूमि पर सो रहा है :—

क्या भरोसा तुच्छ जीवन का, है जल का बुलबुला।
सार है संसार का आया यहां बस चल दिया॥

विभीषण—(रोकर) हाय भाई ! यह तुमने अपने अभिमान का फल पाया। देख लो ! ऐस विजेता और महारथी का भी अन्त आया।

राम—विभीषण जी ? सन्तोष से काम लो। रावण का अन्तिम दाह सस्कार करो।

विभीषण—जैसी आज्ञा प्रभो ?

सीता—(आकर और राम के चरणों में गिरकर) स्वामी ? प्राणनाथ।

राम—(उठाकर और गले लगाकर) प्राण बल्लभे ? सीते ?

[दृश्य परिवर्तन पर राम के राज-तिलक का दृश्य। टेबल पर ड्राप]

क्रियेटिव पब्लिकेशन, 4422, नई सड़क, दिल्ली-6, फोन: 23261030